कवि कालिदास कृत

उत्तर कालामृत

(पूर्व कालामृत का उत्तरार्द्ध)

व्याख्याकार :
ज्योतिर्विद् जगन्नाथ भसीन

ज्योतिष साहित्य में अचरज पूर्ण
प्रामाणिक एवं प्राचीन ग्रन्थ

उत्तर कालामृत

(UTTARA KALAMRITA)

ग्रंथकार : **कवि कालिदास**

व्याख्याकार : ज्योतिर्विद् जगन्नाथ भसीन
(भूतपूर्व प्रधान, स्वामी रामतीर्थ मिशन, दिल्ली)

1. चुने हुए ज्योतिष योग, 2. ज्योतिष और रोग, 3. व्यवसाय का चुनाव और आपकी आर्थिक स्थिति 4. रत्न परिचय, 5. फलित सूत्र, 6. चन्द्रकला नाड़ी 7. गोचर विचार, 8. नक्षत्र फल दर्पण 9. सप्तऋषि नाड़ी (अंग्रेजी), 10. प्रश्न-मार्ग 11. दशाफल रहस्य आदि ज्योतिष ग्रंथों के प्रणेता।

डी.पी.बी. पब्लिकेशन्स
110 चावड़ी बाजार, चौक बड़शाहबुल्ला, दिल्ली-6
फो. : 23273220, 23251630, 09811648916-17
Whatsapp No. 9811648915 E-mail-dpb.publications@yahoo.com
Website-dpbpublications.com

प्रकाशक :

रंजन पब्लिकेशन्स

16, अंसारी रोड, दरियागंज,

नई दिल्ली-110002

फोन : 23278835, 23282998

संस्करण : 2019

मूल्य : 250/=

मुद्रक : हर्ष प्रिंटर दिल्ली

प्रकाशकीय

उत्तर कालामृत का यह संशोधित, परिवर्तित व परिवर्धित संस्करण नूतन आकार-प्रकार व मनोरम साज-सज्जा के साथ अपने विज्ञ पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करते हुए हमें अपार हर्ष का अनुभव हो रहा है।

पाठकों ने जिस उत्साह के साथ पूर्व संस्करण को अपनाया व समस्त भारत के ज्योतिर्विदों, विशेषतया दक्षिण भारतीयों, ने हमारे इस प्रयत्न की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की, उसी से उत्साहित होकर हमने इसे अधिक उपादेय व ग्राह्य बनाकर प्रस्तुत करने का साहस किया है। स्व० ज्योतिर्विद श्री जगन्नाथ भसीन महोदय ने इसे अपनी सरल व बोधगम्य भाषा शैली में सर्व प्रथम हिन्दी पाठकों के लिए प्रस्तुत किया था। 'गच्छतः स्खलनं क्वापि' न्याय से पूर्व संस्करण में मुद्रण सम्बन्धी कुछ भूलों की ओर हमारे उदार चेता पाठकों ने हमारा ध्यान आकृष्ट किया था। उनकी इस उदारता के प्रति हम कृतार्थता प्रकट करते हैं तथा उनके संकेतों का पूर्ण आदर करते हुए इसे पुनः उन्हीं को समर्पित कर रहे हैं।

हमें पूर्ण आशा व विश्वास है कि इस नूतन संस्करण से विद्वान् पाठक अवश्य ही प्रसन्नता का अनुभव करेंगे और पहले की भांति हमारा उत्साह बढ़ाएंगे।

—प्रकाशक

दो शब्द

"उत्तर कालामृत" ज्योतिष जगत् का एक प्रसिद्ध एवं सर्वमान्य ग्रंथ है। इस मौलिक ग्रंथ का प्रचार अभी तक दक्षिण भारत में अधिकतर रहा है। यह बड़ा हर्ष का विषय है कि ज्योतिष प्रेमियों के लिए निरन्तर उच्च स्तर के प्रकाशन द्वारा सेवारत उत्साही प्रकाशक नें इसके अनुवाद द्वारा प्रचार का उत्तर भारत में सराहनीय प्रयत्न किया है।

इस प्रयत्न के फलस्वरूप हमें पूर्ण विश्वास है कि ज्योतिष के उन समस्त रहस्यों से—जैसे कि धन की स्थिति, सन्तान-विचार, पत्नी कैसी ? मन्त्रीपद योग, वर्ष फलविधि, स्त्री धनी अथवा साधारण, जन्मपत्री न हो तो प्रश्न तथा उनके उत्तर, घड़ी के बिना भी सही प्रश्न लग्न की प्राप्ति, शनि की सामर्थ्य आदि विषय जो इस पुस्तक की विशेषताय हैं—अब समस्त देशवासी लाभान्वित हो सकेंगे।

ज्योतिष के विद्यार्थियों के लिए यह पुस्तक एक निधि से कम मूल्य नहीं रखती, क्योंकि इस पुस्तक में "भावों" और "ग्रहों" के कारकत्व के सम्बन्ध में जिन बातों की सूची दी गयी है वह इतनी विस्तृत है कि ऐसी सूची आपको अन्य किसी ग्रन्थ में, चाहे वह उत्तर भारत का हो अथवा दक्षिण भारत का, प्राप्त न हो सकेगी।

इतना ही नहीं, ज्योतिष के मौलिक सिद्धान्तों पर भी इस पुस्तक में आपको नूतन, उपयोगी सामग्री उपलब्ध होगी। "विपरीत राजयोग" पाराशरीय राजयोगों का विस्तार, नष्ट जातक, शुक्र की द्वादश तथा षष्ठ स्थिति आदि अनेक ऐसे विषय हैं जिन पर सम्भवतया आपको पहली बार प्रकाश की उपलब्धि होगी।

ज्योतिष साहित्य में निस्संदेह यह एक उत्तम वृद्धि है। हम आशा करते हैं कि ज्योतिष प्रेमी इस ग्रंथ को आदरपूर्वक अपनायेंगे।

जगन्नाथ भसीन

एक दृष्टि में

गर्भस्थ शिशु का गणित द्वारा स्त्रीपुल्लिंग ज्ञान,
ग्रहों की वक्री, उच्च, परमोच्च स्थितियाँ,
आयुर्दाय खण्ड, कितने वर्ष का जीवन है ?
राशि तथा ग्रहों के योग से शुभाशुभ फल,
धन की स्थिति, सन्तान विचार, पत्नी कैसी ?
शुक्र अनिष्ट स्थान (द्वादश) में भी शुभकारी
आरूढ़ और पद से समस्याओं का निर्णय,
बारह भावों में से किससे क्या-क्या विचारें,
नौ ग्रहों का कारकत्व महत्त्वपूर्ण,
मन्त्री पद योग, अनेक प्रकार के रोग,
स्त्री धनी अथवा साधारण; मृत्यु कैसे ?,
ग्रहों की भुक्ति जानने की विधि, वर्षफल,
राहु-केतु की दशा का विशद वर्णन,
विंशोत्तरी दशा-वर्णन, विविध ग्रहों की दशा,
जन्म-पत्री न हो तो प्रश्न तथा उनके उत्तर,
घड़ी के बिना भी सही लग्न की प्राप्ति,
नष्ट जन्म-पत्र रचना, जन्म-समय ।
(मूक प्रश्न) प्रश्न किस सम्बन्ध में, वस्तु किधर गई ?
कार्य बनेगा या नहीं ? यदि बनेगा तो कब तक
चन्द्र की स्थिति के फल, अमृत घटी, विविध फल
विवाह, गोद, गृह-प्रवेश, यात्रा आदि निर्णय
शनि का सामर्थ्य आदि विषय सरल एवं रोचक रूप में ।

विषय सूची

प्रथम काण्ड

1. जन्म काल लक्षण खण्ड— 9-16

मंगलाचरण, इष्टसाधन, नक्षत्र शुद्धि, मान्दिगुलिक साधन, सूतिका गृह, पिता की स्थिति व दीपादि ज्ञान।

2. बलसाधन खण्ड— 16-40

फलादेश-विशेष पद्धति, ग्रह की मैत्री का ज्ञान, ग्रह वर्गमूल, त्रिकोणादि ज्ञान वक्री ग्रह की विशेषता, ग्रहों के परमोच्चांश, होरा-द्रेष्काण-सप्तमांशादि ज्ञान, सप्तवर्गबल स्थानबल, कालबल, चेष्टाबल, दृग्बल, निसर्गबल, षड्बलैक्य ज्ञान।

3. आयुर्दाय खण्ड— 41-53

अंशायु साधन, तच्छोधन, लग्नायुर्दाय, द्रेष्काण से भूत, वर्तमान भविष्य का ज्ञान, ग्रहयोगों से आयु जानना, अल्पायु, दीर्घायु के योग।

4. ग्रहभावफल खण्ड 53-94

राजयोग, राजयोग भंग, नवमेश से विशेष राजयोग, विशेष विचार, इस योग का विस्तार, भाव फल का नाश, लग्नद्रेष्काण से राजयोग, चन्द्रमा से राजयोग, बृहस्पति-शुक्र-राहु की विशेष शक्ति, भावेश की स्थिति का फल, भाव-भावेश-कारक से फल ज्ञान एक सिद्धान्त, पापीग्रह स्वगृह का रक्षक, **षष्ठ-अष्टम-द्वादश में बुध-गुरु-शुक्र शुभ**, ग्रहों का विशेष बलाबल, विशेष ग्रहों का विशेष भावों में फल, शुभाशुभ ग्रह विवेक, भावेश कारक सम्बन्ध निर्णायक तथ्य छादकादि ग्रहों का ज्ञान, विपरीत राजयोग, **निर्बल पापी योगप्रद**, भाव संज्ञा ग्रहों का विशेष स्वभाव, चन्द्राधियोग, नवमेश से सम्पत्ति, त्रिकोणेश से सम्पत्ति, जन्म समय भेद से राजयोग, **चरादि राशि व छादकादि ग्रहों से फलादेश अनूठी प्रणाली**, योगकारक ग्रहों के अंश विशेष निर्णायक, चन्द्रमा की दृष्टि से योग फल में वृद्धि, **आठ पदों से फल**, बुध शनि मंगल व पद, पद से स्त्री विचार, भाइयों की संख्या, आत्मकारक से युति का फल, आत्मकारक से भावों का विचार, आत्मकारक पद में उच्चस्थ ग्रह कुष्ठ कारक।

5. कारकत्व खण्ड— 95-138

द्वादश भावों का विशेष कारकत्व, सूर्यादिग्रहों का कारकत्व, राहु व केतु का विशेष कारकत्व, मंत्री पद, रोगों का विशेष विचार, स्त्री की आकृति प्रकृति, मरण का प्रकार।

6. दशाफल खण्ड— 139-166

ग्रहावस्था, पूर्वकृत कर्मों का फल व दशा, विशोत्तरी ज्ञान, भक्त भोग्य ज्ञान, अन्तर्दशा साधन, सूर्यादि ग्रहों की दशा का फल, राहु केतु की दशा भी शुभ, राहु केतु योग कारक व महामारक, त्रिषडाय में स्थिति भोग देने वाली, इनकी उच्चादि राशियां, दशेश अन्तर्दशेश-सम्बन्ध महत्त्वपूर्ण, भावेश व दशाफल, दशानाथ कारक मारक हो तो फल, गुरु शुक्र की दशा की विशेषता, शनि शुक्र की शा एक विचित्र नियम, निर्बल शनि व शुक्र की दशा योगकारक, सूर्य शनि की दशान्तर्दशा में विशेष, गुरु मंगल की दशान्त र्दशा, अन्य अन्तर्दशाएं, वर्षफल विधि, वर्ष दशा में भुक्त व भोग्य, वर्ष में गोचर व दशा का समन्वय, वर्ष में सब ग्रहों की दशा का फल, लग्न की दशा का फल।

7. प्रश्न खण्ड— 166-177

जातक व प्रश्न की समानता, इष्ट लग्न निर्णय, प्रश्न पूछने की रीति, नष्ट जातक, ध्रुवाकं से प्रश्न लग्न व नवांश, जन्मकालीन गुरु, मूक प्रश्न, फल की मात्रा व दिशा, नवांशों से दिशा निर्धारण, आरूढ़ लग्न से प्रश्न निर्णय, प्रश्न-कालिक चन्द्र व उससे फलादेश, खोई वस्तु का प्रश्न, मुष्टि प्रश्न, लग्नेश व कार्येश का सम्बन्ध।

8. प्रकीर्ण खण्ड : विविध फल— 178-206

गर्भाधान का उचित समय, कैसी स्त्री से विवाह, जन्म नक्षत्र का विशेष फल, गण्ड नक्षत्रों में रजोदर्शन, दवा बनाने व खाने का मुहूर्त, दत्तक पुत्र, विवाहांग कृत्यों में सौभाग्यवती स्त्रियों का महत्त्व, निमन्त्रण पत्र कब लिखें, विवाहादि में कूर्मवास, गृह कर्णिका चक्र, वृषभ-कलश-सेवक चक्र, पशु खरीदने पर चक्र शुद्धि, अश्व चक्र, गज चक्र, पालकी छत्र-मंच-खट्वा धनुष-रथ चक्र विचार, घूर्णा (कोल्हू) चक्र हल-नौका-दीपिका-कूप-वापी चक्र, स्तम्भ-द्वार-अग्नि चक्र, पेटिका चक्र, ग्राम चक्र, उपनयन चक्र, निधि (खजाना) चक्र, विवाह चक्र।

द्वितीय काण्ड

कर्मकाण्ड खण्ड 207-256

विवाह का समय व कन्या का चुनाव, सपिण्डता, गोत्र प्रवर शुद्धि व उसका अपवाद, सहोदरों का विवाह एक कुल में नहीं, सौतेले माता-पिता व सपिण्डता, देश भेद से सपिण्डता, मामा की लड़की से विवाह निषेध, ऐसा होने पर प्रायश्चित, विवाह के अयोग्य कन्याएं, लड़की के घर पर भोजन निषेध, एक घर में दो सालिग्रामों की पूजा नहीं, पितृ श्राद्ध के साथ माता का श्राद्ध आवश्यक, तीन ज्येष्ठ विचार, बारह प्रकार के पुत्र, दत्तक पुत्र की विधि, श्राद्ध के कुछ विशेष नियम, भूमि व गृह दान के नियम, विधवा व भिक्षु के आचार, दौहित्र के अधिकार उपनयन, संस्कार के विशेष नियम, पुनर्विवाह नियम, श्रावणी व उपनयन, महाशिवरात्रि-एकादशी-जन्माष्टमी-अनन्त चतुर्दशी-ऋषि पंचमी-नरकचतुर्दशी विचार, सूर्य ग्रहण व श्राद्ध, विवाह व श्राद्ध में सूतक होने पर अधिमास का फल, संक्रांतियों की शुभ घड़ियां, भोजन के नियम व मुद्राएं, श्राद्ध में स्थाली पाक, गर्भावस्था में निषिद्ध कार्य, तीर्थों पर विशेष आचार, ऋतु स्नाता स्त्री के लिए विशेष, स्त्रीसंगम-लघुशंका व भोजनोपरान्त शुद्धि, पवित्री धारण, श्राद्ध में गायत्री जप, पिण्डदान के निषिद्ध दिन, द्वादश भावों का विशेष फल, त्रिकोणेश व केन्द्रेश के नियम, राहु केतु के विशेष फल, शनि का विशेष फल, केन्द्रेश की दशा अशुभ, पाप ग्रह, की दशा भी शुभ, राहु केतु की दशा में महान् सुख; लग्नों के कारक मारक ग्रह-फलादेश के कतिपय विशेष सूत्र, जारज योग, वह्निनिपात योग ।

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ प्रथम काण्ड ॥

जन्म-काल लक्षण खण्ड

:१: जन्मकाल : जन्मकालीन शुद्ध नक्षत्र आदि : गणना के आधार पर जातक का स्त्री-पुरुष लिंग-ज्ञान : माता-पिता की जन्मकालीन उपस्थिति का ग्रह आदि गणना से ज्ञान : प्रसूति-गृह की परिस्थिति का अनुमान ।

मंगलाचरण :—

श्रीमद्वक्त्रचतुष्टयाच्युतहरस्वर्णायकाद्यैः सुरैः
कार्यारम्भविधौ समर्चितपदद्वन्द्वं द्विपेन्द्राननम् ।
पाशाद्यायुधलड्डुकप्रविलसद्धस्तैश्चतुर्भिर्युतं
श्रीमद्विक्रमसूर्यपालनपरं वन्दे भवानीसुतम् ॥ १ ॥

प्रत्येक शुभ कार्य के आरम्भ में जिनके चरणयुगलों की सम्यक् पूजा ब्रह्मा, विष्णु, महेश तथा इन्द्र आदि देवता भी करते हैं, जिनके करचतुष्टय में पाश आदि शस्त्र तथा लड्डू शोभायमान हो रहे हैं, जो सूर्यवत् प्रतापी राजा विक्रमादित्य का पालन करने वाले हैं, ऐसे भवानीसुत गजानन भगवान् गणेश को मैं प्रणाम करता हूं ।

कामेशस्य सुवामभागनिलयां भक्ताखिलेष्टार्थदां
शङ्खं चक्रमथाभयं च वरदं हस्तैर्दधानां शिवाम् ।
सिंहस्थां शशिखण्डमौलिलसितां देवीं त्रिनेत्रोज्ज्वलां
श्रीमद्विक्रमसूर्यपालनपरां वन्दे महाकालिकाम् ॥ २ ॥

कामदेव पर विजयी शिव जी के बाईं ओर विराजने वाली, भक्त-जनों को समस्त वांछित फल प्रदान करने वाली, अपने हाथों में शंख चक्र तथा अभय एवं वरद मुद्रा को लिए हुए, सिंह की सवारी करने वाली, कल्याणकारिणी देवी, जो चन्द्र चूडामणि भगवान् शिव से शोभायमान हो रही हैं, जिनके तीन नेत्र तीव्र रूप से प्रकाशित हो रहे हैं और सदा सर्वदा श्रीमद्विक्रमादित्य जैसे प्रतापी राजा की पालना कर रही हैं, ऐसी महाकाली को मैं प्रणाम करता हूं।

प्रागेवाद्यदले समस्तमुदितं संज्ञादिकं विस्तराद्
ज्ञेयं जातकपद्धतिं बुधमुदेऽथ प्राश्निकं च क्रमात् ।
स्पष्टं सूक्ष्मतरं त्रिकालफलदं शार्दूलवृत्तिञ्चितं
सम्पद्वश्यकरं प्रवच्मि बहुधा कालामृते तूत्तरे ।। ३ ।।

पूर्वार्द्ध में (अर्थात् पूर्वकालामृत में) ज्योतिष विषयक संज्ञाओं आदि के सम्बन्ध में विस्तारपूर्वक पहले ही कहा जा चुका है। इस उत्तरार्द्ध में (अर्थात् उत्तरकालामृत में) विद्वानों की प्रसन्नतार्थ जातक शास्त्र तथा प्रश्नशास्त्र की पद्धति के विषय में अधिक स्पष्ट और सूक्ष्म रूप से भूत, भविष्यत् तथा वर्तमान में फलकारी तथा धन संपत्तिकारी विवरण 'शार्दूलविक्रीडित' छन्द में अब कहता हूं—

इष्ट कालादि का साधन :—

नाड्याद्यो जनुषि स्फुटश्च समयः शङ्कोश्च यन्त्रादिभिः
साध्योऽर्हनिशमत्र सायनरवेः स्यादिष्टकालादपि ।
खेटान् दृग्गणितैक्यजान् स्फुटतरान् राश्यादिकान् साधयेद्
भावान् सन्धियुतान् गुरोस्तु कृपया साह्लादचित्तः सुधीः ।। ४ ।।

मनुष्य आदि का जन्म समय शंकु की छाया से अथवा अन्य (घड़ी आदि) यन्त्रों से ठीक-ठीक निश्चय करना चाहिए। जन्मकालीन दिन-मान तथा रात्रिमान भी ज्ञात करना चाहिए। इसी प्रकार सायन रवि तथा इष्ट काल की सहायता से लग्न स्पष्ट करना चाहिए। तदनन्तर गुरु की कृपा से ग्रहों को इस रीति से गणित द्वारा स्पष्ट करें कि ग्रह उस राशि आदि स्थान पर प्रत्यक्ष दिखाई दें। इसी प्रकार बुद्धिमान् ज्योतिषी प्रसन्नचित्त होकर, संधि सहित भाव स्पष्ट आदि को साधें।

नाड्यश्चैव विनाडिकाः कृतगुणाः सूर्योदयानन्दहृच्
छिष्टं दस्रमघासुरात्रिनवके स्याज्जन्मभं दस्रतः ।
यद्वापीष्टघटिस्तदा विघटिका स्वात्त्वाश्विहृच्छेषतो,
बाणेलाः खगुणाश्च बाणानिगमाः षष्टिश्च बाणाद्रयः ॥ ५ ॥

शुद्धास्ता विघटोः क्रमान्नरवधूपुंस्त्र्यादिभेदः स्मृतो
मान्दिराशिनवांशयोर्जननभाच्चन्द्रर्क्षतो वा वदेत् ।
तत्तद्राशिवशाच्च सप्तमगृहात्तत्त्रिकोणाच्च वा
जन्म स्यान्नवमांशराशिपवशाद्वीर्याधिकात्तद्वदेत् ॥ ६ ॥

(क) नक्षत्र शुद्धि—इष्ट काल की घड़ियों तथा पलों को चार (४) से गुणा करो, फल को नौ (९) से भाग दो। शेष को अश्विनी, मघा अथवा मूल से (जिन से आगे नक्षत्र पड़ता हो) गिनो तो जन्म-नक्षत्र निकल आएगा।

मान लीजिए, किसी व्यक्ति का जन्म ७-८-१९०८ को इष्ट घटि ५८.१६ पर हुआ। अतः $\frac{(५८-१६) \times ४}{९}$ शेष बचे ८ $\frac{४}{६०}$ नक्षत्र।

अतः व्यक्ति का जन्म नवम नक्षत्र आश्लेषा, ज्येष्ठा अथवा रेवती में होगा।

(ख) स्त्री-पुरुष जन्म-शुद्धि—इष्ट घटि पलों के पल बनाओ। उनको २२५ पर विभक्त करो। शेष यदि ० से १५ तक हो तो जन्म पुरुष का, यदि १५ से अधिक ४५ तक हो तो स्त्री का, ४५ से ऊपर परन्तु ९० तक हो तो पुनः पुरुष का, यदि ९० से ऊपर १५० तक हो तो स्त्री का तथा १५० से ऊपर २२५ तक हो तो पुनः पुरुष का जन्म समझना चाहिए।

इष्ट यदि घटि ५८—१६ हो तो ५८ × ६० + १६ = ३४९६ ÷ २२५, शेष १२१, अतः जन्म स्त्री का होगा।

(ग) **लग्न-शुद्धि**—मान्दि तथा चन्द्र की अधिष्ठित राशि को तथा इनकी नवांश राशियों को निकालो। मनुष्य का जन्म मान्दि अधिष्ठित तथा चन्द्राधिष्ठित राशि में होगा। अथवा इन दो राशियों से सप्तम, पंचम अथवा नवम राशि वाले लग्न में होगा। यदि इन दो राशियों की अपेक्षा मान्दि की नवांश राशि अथवा चन्द्र की नवांश राशि अधिक बलवान हो तो बली नवांश राशि में अथवा उससे सप्तम, पञ्चम अथवा नवम में जन्म-लग्न होता है।

यहाँ इष्ट घटी पलों से जन्म-नक्षत्र, जन्म-लग्न व स्त्री-पुरुष के जन्म को जानने का प्रकार बताया गया है। प्राणपद आदि के द्वारा भी स्त्री-पुरुष जन्म जाना जा सकता है। सभी सत्ताईस नक्षत्रों को ६-६ के समूहों में बाँट लेना चाहिए। अश्विनी से श्लेषा तक प्रथम खण्ड, मघा से ज्येष्ठा तक द्वितीय खण्ड व मूल से रेवती तक तृतीय ख ड माना जाता है। इष्ट को ४ से गुणा कर ६ का भाग देने पर जो शेष बचे वही जन्म-नक्षत्र होगा। इससे इष्ट काल की शुद्धता को परखा जाएगा। यदि इस पद्धति से भी वही जन्म नक्षत्र आए जो आपने जन्म चन्द्र की राशि के आधार पर निकाला है तो इष्ट काल को शुद्ध समझें, अन्यथा इष्ट में कुछ पल घटाने या बढ़ाने चाहिएं। इसी प्रकार बताए गए प्रकार से जन्म-लग्न की शुद्धता भी परख लेनी चाहिए।

मान्दि व गुलिक का साधन :—

चारुः खारि जटा वयो नट तनू रूनं द्युमानहतं
खाङ्गाप्तं रविवासरादिघटिकास्तत्कालभे मन्दजः
रात्रेर्मानमहः प्रमाणमहिहृत्खण्डप्रमाणं भवे-
दर्काद्याशातिवासरान्तदिवसे वारेश्वरात् खण्डपाः ॥ ७ ॥

रविवार आदि दिनों में अपने दिनमान को क्रमशः चारु (३६), खारि (२२), जटा (१८), वयो (१४), नट (१०), तनु (६) तथा रून (२) से गुणा करो, फल को खाङ्ग अर्थात् ३० से भाग दो। उत्तर में जो घड़ी, पल आयें उनको इष्ट मानकर लग्न साधो। जो लग्न निकले वही मान्दि का स्पष्ट होगा। दिनमान अथवा रात्रिमान का अष्टमांश प्रत्येक ग्रह की बेला होती है। दिन का जन्म हो तो दिनमान के प्रथम सात भागों के स्वामी रविवार आदि में क्रमशः सूर्य, चन्द्र मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि होते हैं।

यहाँ पर चारु खारि आदि शब्दों का अर्थ 'कटपयादि' के आधार पर लगाया गया है।

अन्त्यांशो हि निरीश्वरस्तु गुलिकः शन्यंशकस्तन्निशो
वारेशादिह पञ्चमादित अयं खण्डान्वभेंशे भवेत।
स्यातां मन्दसु तावुभावतिखलावित्येवमूचे मुनि-
र्माण्डव्यः किल यत्र तौ निवसतस्तत्रैव हानिप्रदौ ॥ ८ ॥

अष्टम भाग स्वामिहीन होता है। दिन में शनि का भाग गुलिक कहलाता है। रात्रि का जन्म हो तो रात्रि के सात भागों के स्वामी उपरोक्त क्रम से होंगे; परन्तु प्रथम भाग का स्वामी जन्मवार से पांचवें वार के स्वामी से आरम्भ होगा। यहां भी शनि का भाग गुलिक समझा जाएगा, परन्तु गुलिक शनि के भाग का अन्तिम छोर होगा। शनि के ये दोनों बेटे अर्थात् 'गुलिक' तथा 'मान्दि' माण्डव्य ऋषि के मत में अति दुष्ट स्वभाव वाले हैं। जहाँ भी स्थित होते हैं उस स्थान को हानि पहुंचाते हैं। प्राचीन ग्रन्थों में कहीं-कहीं पर मान्दि व गुलिक को एक ही माना गया है। बहुमत इसी पक्ष में है। परन्तु ग्रन्थकार ने यहां माण्डव्य ऋषि के मत को आधार मान कर और द्विवचन के प्रयोग से संकेतित कर इन्हें दो ही माना है। अतः मान्दि के लिए इष्टकाल की घड़ियों में जन्मवारानुसार बताए गए अंकों से गुणा कर लेना चाहिए तथा गुणनफल को ३० से भाग देकर प्राप्त घड़ी पलों के आधार पर लग्न साधन की तरह मान्दि के राशि, अंश, कला, विकला का साधन करना चाहिए।

गुलिक के विषय में ध्यान रखिए कि जन्मवार में शनि का खण्ड गुलिक कहलाता है। इसके लिए दिनमान के आठ बराबर भाग कर लेने चाहिएं। प्रत्येक भाग का अधिपति जन्मवार से गिन कर जाना जाएगा। जो भाग शनि का हो वही गुलिक है। रात्रि में रात्रिमान के आठ भाग करके जन्मवार के पाँचवें वार से गिनकर शनि के खण्ड को ज्ञात कीजिए, वही शनि खण्ड गुलिक होगा। सरल प्रकार यह है कि जिस वार को जन्म हो उस दिन के दिनमान या रात्रिमान को आठ से भाग दीजिए। वह आठवाँ हिस्सा एक खण्ड कहलाएगा। दिन में प्रथम खण्ड का अधिपति वारेश व रात्रि में प्रथम खण्ड का अधिपति वारेश से पाँचवाँ ग्रह होता है। अब इस एक खण्डमान को एक स्थान पर लिख लीजिए। फिर जन्मवार से गिनकर देखिए कि शनि किस नम्बर पर आता है। यथा रविवार को सातवें नम्बर पर, मंगलवार को पाँचवें नम्बर पर, बुधवार को चौथे नम्बर पर इत्यादि। रात में जन्मवार से पाँचवें ग्रह से गिनती कीजिए। जो भी नम्बर शनि का आए, उससे पूर्वोक्त खण्डमान को गुणा कीजिए। जो गुणनफल होगा वह गुलिक का इष्ट होगा। इस इष्ट काल से लग्न साधन करें तो गुलिक स्पष्ट लग्न या गुलिक का स्पष्ट मान ज्ञात हो जाएगा। उदाहरणार्थ, मंगलवार को गुलिक जानना है। दिन में जन्म है। दिनमान २८ घड़ी

३२ पल है। इसलिये २८.३२/८ = ३ घड़ी ३४ पल एक खण्ड है। मंगल से शनि पाँचवें नम्बर पर है। अतः ३.३४ × ५ = १७/५० गुलिक का इष्ट है। इससे लग्न साधन की तरह गुलिक निकाल लीजिए।

लग्न से सूतिकागृह ज्ञान :—

कर्काजालिवणिग्घटेषु जननं चेत्प्राग्गृहे स्याच्छिशोः
सिंहे वा मकरेऽपि वा यदि भवेद्याम्ये वृषे पश्चिमे।
कन्याचापनृयुग्भषेषु जननं चेत्स्यादुदीच्यां दिशी-
त्येवं लग्ननवांशयोर्बलवशात्तत्तद्गृहं त्वादिशेद् ॥ ९ ॥

यदि कर्क, मेष, वृश्चिक, तुला अथवा कुम्भ में जन्म हो तो सूतिका-गृह पूर्व की ओर, यदि सिंह अथवा मकर में हो तो दक्षिण की ओर, यदि वृषभ में हो तो पश्चिम दिशा में और यदि कन्या, धनु, मिथुन अथवा मीन में हो तो जातक का जन्म मकान के उत्तरी भाग में होगा। परन्तु यदि लग्न नवांश लग्न से अधिक बलवान् हो तो उस नवांश राशि के अनुसार ही सूतिका-गृह की स्थिति बतानी चाहिए। लग्न या नवांश में से जो बलवान् हो तदनुसार ही पूर्वोक्त प्रकार से सूतिकागृह की दिशा बतानी चाहिए। अर्थात् नवांश यदि कर्क, मेष आदि राशियों का हो तो पूर्व में; सिंह, मकर का नवांश हो तो दक्षिण दिशा में, वृष नवांश हो तो पश्चिम में और कन्या, धनु, मिथुन, मीन के नवांश में उत्तर में सूतिका-गृह समझना चाहिए।

जन्म समय पिता की स्थिति :—

लग्नं शीतकरे न पश्यति चरे ग्रामान्तरे च स्थिरे
स्वग्रामे द्वितनूदये यदि तदा मार्गे पितुः स्यात् स्थितिः
अर्के भाग्यगतेऽथवाऽष्टमगते त्वेतद्भवेदन्यथा
चेन्नैवं सहिते खलैर्यदि विधौ मातुः प्रसूतिः श्रमात् ॥ १० ॥

यदि लग्न को चन्द्र न देखता हो और सूर्य नवम अथवा अष्टम भाव में हो, यदि सूर्य चर राशि में हो तो पिता अन्य ग्रामादि में है। यदि स्थिर राशि में हो तो अपने ही ग्राम में है और यदि सूर्य द्विस्वभाव राशि में हो तो पिता मार्ग में स्थित है। ऐसा कहना चाहिए। चन्द्र यदि पापी ग्रहों के साथ हो तो माता को कष्ट से प्रसव हुआ समझना चाहिए।

चर स्थिरादि राशियों के ज्ञान के लिए ध्यान रखिए कि मेष, कर्क,

तुला, मकर चर राशियाँ हैं। वृष, सिंह, वृश्चिक, कुम्भ स्थिर राशियाँ हैं। मिथुन, कन्या, धनु, मोन द्विस्वभाव राशियाँ हैं। सूर्य पिता का कारक है। अत: पिताकारक सूर्य यदि चर राशि में होगा तो पिता भी कही यात्रा में होगा। द्विस्वभाव राशियों में होने पर मार्गगत तथा स्थिर राशि में होने से घर में ही होगा।

इसी प्रकार चन्द्रमा माता का कारक होने के कारण माता की स्थिति को बताता है। यदि चन्द्रमा क्रूर ग्रहों के साथ हो तो माता को प्रसव में कष्ट होता है। जितना अधिक पाप प्रभाव चन्द्रमा पर होगा, उतना ही अधिक कष्ट प्रसव में समझना चाहिए।

दीपक व तेल आदि का ज्ञान :—

लग्नेन्द्वन्तरगा: प्रसूतिगृहगा बाह्ये तु बाह्यं गता
श्चन्द्रात्तैलमथोदयादपि भवेद्वर्ती च दोपो रवे: ।
अर्क: शुक्रकुजागुमन्दशशिविज्जीवा दिगोशा: क्रमात्
केन्द्रस्थादिकवीर्यवत्खगदिशो द्वारं भवेदग्रत: ॥ ११ ॥

लग्न तथा चन्द्र के बीच में जितने ग्रह हों, प्रसूति-गृह में उतनी ही उपसूतिकाएँ होंगी। उसके बाहर जितने ग्रह हों उतनी स्त्रियाँ प्रसूति गृह से बाहर होंगी। चन्द्र से तैल का ज्ञान होता है, अर्थात् दीप में कितना तेल शेष है इसका अनुमान चन्द्र को अपनी राशि में जितना चलना शेष है इस बात से करना चाहिए। दीप की बत्ती का ज्ञान लग्न से और दीप का ज्ञान सूर्य से करना चाहिए। सूर्य पूर्व, शुक्र दक्षिण-पूर्व, मंगल दक्षिण, राहु दक्षिण-पश्चिम, शनि पश्चिम, चन्द्र पश्चिमोत्तर, बुध उत्तर, गुरु उत्तर-पूर्व दिशाओं के क्रमश: स्वामी हैं। केन्द्रस्थ ग्रहों में बलवान् ग्रह से और यदि केन्द्र में कोई भी ग्रह न हो तो सबसे बली केन्द्र की दिशा से सूतिका-गृह के द्वार का ज्ञान होता है।

जन्म-समय का लग्न बनाकर ज्योतिषी लोग यजमान की संतुष्टि के लिए और लग्न की शुद्धता को परखने के लिए इन वस्तुओं का अनुमान करते हैं। प्रसव-गृह में जितनी स्त्रियाँ सहायक के रूप में रहती हैं वे उप सूतिकाएँ कहलाती हैं। लग्न व चन्द्र के मध्यवर्ती ग्रहों की संख्या के आधार पर इनकी संख्या कहनी चाहिए। यहाँ ध्यान रखना चाहिए—यदि सभी ग्रह लग्न व चन्द्र के बीच में हों तो केवल पाँच या सात उप सूतिकाएं बतानी चाहिएं। यदि कोई ग्रह लग्न या चन्द्र के साथ

है तो देखिए कि लग्नस्थ ग्रह के अंश लग्न से अधिक हैं या कम ? यदि कम हैं तो मत गिनिए, अधिक अंश होने पर ही उनकी संख्या लीजिए। इसी प्रकार चन्द्रमा के कम अंश वाले ग्रह को तो गिनिए, परंतु अधिक अंश वाले को मत लीजिए।

चन्द्रमा के भोग्य व भुक्त अंशों के आधार पर दीपक में क्रमशः बचा हुआ व जला हुआ तेल जाना जा सकता है, परन्तु आजकल प्रायः बिजली होने से यह विचार असंगत हो जाता है। इसी तरह केन्द्रगत बली ग्रह की दिशा में सूतिका-गृह का द्वार बताना चाहिए। ▭

बल-साधन खण्ड

:२:

कुण्डली के भावों का फल कहने की विधि; ग्रहों की वक्री, उच्च, नीच, परमोच्च, परम नीच आदि स्थितियां; ग्रहों के स्थान, काल, अयन, चेष्टा, नत-उन्नत आदि बल; निसर्ग बल, दृष्टि बल, ग्रहों की परस्पर मित्रता-शत्रुता।

सर्वे द्वादशराशयः समुदिता लग्नादिषट्कं तनो-
र्याम्याङ्गं च तनोः स्त्रियस्तदितरे षट् चोत्तराङ्गं भवेत्।
लग्नं प्राणमगं शशिस्थभवनं देहस्तयोस्तत्फलं
भावाद्भावपतेश्च कारकवशात्तत्तत्फलं योजयेत् ॥ १ ॥

द्वादश राशियाँ पूर्व से उदय होती हैं। उनमें लग्न से सातवें भाव तक जातक का दायां भाग और उसकी स्त्री का बायाँ भाग होता है। इसी प्रकार सप्तम भाव से लग्न भाव तक जातक के शरीर का बायाँ भाग और उसकी स्त्री के शरीर का दायाँ भाग होता है। लग्न को प्राण रूप समझना चाहिए और चन्द्राधिष्ठित भाव को शरीर। इस प्रकार प्राण तथा शरीर रूप ही क्रमशः दोनों का फल है। कुण्डली के भावों का फल उन-उन भावों, उनके स्वामियों तथा उनके कारकों की शुभ-अशुभ स्थिति का विचार करके कहना चाहिए। जैसे पिता के

सम्बन्ध में समस्त विचार नवम भाव, नवमेश ग्रह तथा नवम भाव कारक सूर्य पर पड़ने वाले शुभ अथवा अशुभ प्रभावों के अनुसार कहेंगे।

इस संदर्भ में यह बता देना भी आवश्यक है कि ज्योतिष शास्त्र में तीन लग्न माने गए हैं—अर्थात् सूर्य, चन्द्र और लग्न। इनमें लग्न और चन्द्र लग्न विशेष रूप से विचारणीय हैं। जन्म कुण्डली में कभी-कभी तो ऐसा भी होता है कि फल लग्न को अपेक्षा यदि चन्द्र को लग्न मान कर कहा जाये तो अधिक ठीक बैठता है। यही कारण है कि चन्द्र लग्न को देह की उपमा दी गई है। देह के स्वास्थ्य के बिना न तो मन ही ठीक कार्य कर सकता है और न ही आत्मिक क्षेत्र में कुछ बन पाता है। लग्न के साथ-साथ चन्द्र लग्न भी विचारणीय है। इस विषय में 'देव-केरलकार' (चन्द्रकला नाडी) लिखते हैं—

चन्द्रलग्नं शरीरं स्यात् लग्नं स्यात् प्राणसंज्ञकम्।
ते उभे संपरीक्ष्यैव सर्वंनाडीफलं स्मृतम्॥

अर्थात् चन्द्र लग्न शरीर है और लग्न प्राण। इसीलिए सभी ज्योतिष शास्त्रों में इन दोनों के निरीक्षण-परीक्षण के बाद ही फल कहा गया है। चन्द्र लग्न के महत्त्व को दृष्टि में रखते हुए उत्तर भारत में जन्म-कुण्डली के साथ-साथ चन्द्र-कुण्डली के समावेश की प्रथा है।

इसके साथ ही फलित शास्त्र का मूलभूत सिद्धान्त है कि किसी भी भाव का फल देने में उस भाव का स्वामी, भाव का कारक ग्रह व स्वयं भाव मुख्य व निर्णायक भूमिका अदा करते हैं। अतः कुण्डलो की परीक्षा में इन तोनों से विचार करना आवश्यक है।

ग्रह-मैत्री ज्ञान—

चन्द्रेज्यावनिजा दिवाकरबुधौ सूर्येन्दुजीवास्ततः
शुक्रार्कौ रविचन्द्रभूमितनया ज्ञार्कौ ज्ञशुक्रौ क्रमात्।
मित्राण्युष्णकरात्ततस्तु रिपवो मन्दासुरेज्यौ ततः
शून्यं ज्ञो विधुरेव भार्गवबुधावादित्यचन्द्रौ ततः॥ २॥

सूर्यादित्रितयं क्रमाद्दिनकरादन्ये समाः स्युस्तत-
स्तत्कालाच्च निसर्गतश्च खचरा. कल्प्यास्त्वधोष्टादयः।

सूर्य ग्रह चन्द्र, गुरु तथा मंगल को मित्र समझता है। चन्द्र ग्रह सूर्य तथा बुध को, मंगल ग्रह सूर्य, चन्द्र तथा गुरु को, बुध ग्रह शुक्र और सूर्य को, गुरु ग्रह सूर्य, चन्द्र, मंगल को, शुक्र ग्रह बुध तथा शनि को और शनि ग्रह शुक्र तथा बुध को मित्र समझता है। सूर्य ग्रह शुक्र तथा शनि को अपना शत्रु समझता है। चन्द्र किसी को भी अपना शत्रु नहीं समझता। मंगल ग्रह बुध को, बुध ग्रह चन्द्र को, गुरु ग्रह शुक्र तथा बुध को, शुक्र ग्रह सूर्य तथा चन्द्र को और शनि ग्रह सूर्य चन्द्र तथा मंगल को अपना शत्रु समझता है। अन्य ग्रह परस्पर सम हैं। दो ग्रहों की तात्कालिक तथा नैसर्गिक मित्रता आदि से उनका परस्पर अधिमित्र आदि होना निश्चित करके फल कहना चाहिए।

टिप्पणी—ग्रहों की परस्पर शत्रुता-मित्रता देखने के लिए आचार्यों ने गुर दिया है। वह गुर है—

मूलत्रिकोणभवनात् चतुर्थपञ्चमधनव्ययाष्टगां स्वोच्चधर्मे च गता ग्रहास्तु तात्कालिकाः सुहृदः। (बृहज्जातक टीका, अध्याय २)।

अर्थात् प्रत्येक ग्रह अपने मूल त्रिकोण राशि से पंचम, द्वादश, द्वितीय, चतुर्थ, अष्टम तथा नवम राशियों के स्वामी को तथा अपने उच्च स्थान को मित्र समझता है। स्थिति यदि अन्यथा हो तो नहीं। मूलत्रिकोण राशियां सूर्य आदि की क्रमशः ५, २, १, ६, ९ ७, ११ हैं।

उदाहरण—जैसे यदि हमें यह ज्ञात करना हो कि गुरु किस-किस ग्रह से मित्रता आदि करता है तो हम गुरु की मूल त्रिकोण राशि धनु से अन्य ग्रहों की राशियों की स्थिति पर विचार करेंगे।

सूर्य राशि-५—सूर्य की सिंह राशि धनु से नवम पड़ती है और ९ का अंक श्लोक में उक्त है, अतः गुरु सूर्य को मित्र समझता है;

चन्द्र राशि-४—चन्द्र की कर्क राशि धनु से अष्टम है। अष्टम भाव श्लोक में उक्त है, अतः गुरु चन्द्र को मित्र समझता है।

इसी प्रकार सब ग्रहों के विषय में समझ लेना चाहिए। यहां पर

ग्रहों की निसर्ग अर्थात् स्वाभाविक मैत्री बताई गई है। तात्कालिक मैत्री के लिए ग्रह की अधिष्ठित राशि से तीन राशि आगे व तीन राशि पीछे तक स्थित ग्रह मित्र व शेष शत्रु होते हैं। इन दोनों के आधार पर ही पंचधा मैत्री जानी जाती है। जो ग्रह दोनों प्रकार से मित्र या शत्रु हो तो क्रमशः अधिमित्र व अधिशत्रु, एक प्रकार से सम व दूसरे प्रकार से मित्र या शत्रु हो तो वह क्रमशः मित्र व शत्रु ही रहता है। दोनों प्रकारों में एकत्र मित्र व अन्यत्र शत्रु होने पर सम माना जाता है।

निसर्ग मैत्री चक्र

ग्रह	मित्र	सम	शत्रु
सूर्य	गुरु, चन्द्र मंगल	बुध	शुक्र, शनि
चन्द्र	सूर्य बुध	शुक्र, मंगल, गुरु, शनि	—
मंगल	सूर्य चन्द्र, गुरु	शनि, शुक्र	बुध
बुध	सूर्य, शुक्र	गुरु, शनि, मंगल	चन्द्र
गुरु	सूर्य, चन्द्र, मंगल	शनि	बुध, शुक्र
शुक्र	शनि, बुध	मंगल, गुरु	सूर्य, चन्द्र
शनि	बुध, शुक्र	गुरु	सूर्य, चन्द्र, मंगल

ग्रहों के वर्ग व मूल त्रिकोणादि का ज्ञान—

भौमः शुक्रबुधेन्दुसूर्यगशिजाः शुक्रारजीवैनयो
मन्देज्याः क्रमशः क्रियादिगृहपाः स्यादाद्यवर्गो गृहम् ॥ ३ ॥
होरा तस्य दलं त्रिभागकमितं द्रेष्काणमित्यूचिरे
सप्तांशो नवमस्तथा रविलवास्त्रिंशांशको वर्गजाः।
सिंहोक्षाजवधूधनुर्धरघटा मूलत्रिकोणाभिधाः
कुम्भश्च क्रमशो रवेः क्रियवृषौ नक्राङ्गनाकर्कटाः ॥ ४ ॥

मेष से मीन तक के स्वामी क्रमशः मंगल, शुक्र, बुध, चन्द्र, सूर्य, बुध, शुक्र, मंगल, बहस्पति, शनैश्चर, बृहस्पति होते हैं। आदि वर्ग को भाव अथवा गृह कहते हैं। उसके आधे भाग को होरा, तृतीय भाग को द्रेष्काण। इसी प्रकार सप्तम भाग को सप्तमांश, नवम भाग को नवांश,

द्वादश भाग को द्वादशांश और तीसवें भाग को त्रिशांश कहते हैं। इन्हीं को सप्तवर्ग कहते हैं। ग्रह, होरा द्रेष्काण सप्तमांश, नवांश, द्वादशांश व त्रिशांश ये वर्गों के नाम हैं। इनमें से सप्तमांश को हटा दिया जाय तो ये षड्वर्ग कहलाते हैं। इन सातों में दशमांश, षोडशांश व षष्ट्यंश जोड़ देने पर दशवर्ग कहे जाते हैं।

मीनस्तौलिगृहं च तुङ्गभवनं तत्र स्थिते खेचरे
वीर्यं रूपमितं त्वथो त्रिचरणा मूलत्रिकोणे बलम्।
स्वक्षेत्रेऽर्द्धबलं स्वमित्रभवने पादं त्वधीष्टेऽर्द्धयु-
क्शत्रावष्टिमतं तदर्द्धमधिशत्रावष्टमांशः समे॥ ५॥

सूर्य से शनि तक ग्रहों की मूल त्रिकोण राशि सूर्य की सिंह, चन्द्र की वृषभ, मंगल की मेष, बुध की कन्या, गुरु की धनु, शुक्र की तुला और शनि की कुम्भ है। सूर्य की मेष, चन्द्र की वृषभ, मंगल की मकर, बुध की कन्या, गुरु की कर्क, शुक्र की मीन और शनि की तुला क्रमश: उच्च राशियां हैं। जब कोई ग्रह अपनी उच्च राशि में स्थित होता है तो उसका बल १ रूपा (रुपये में से रुपया अर्थात् पूर्ण) होता है। मूल त्रिकोण में स्थित उसी ग्रह का बल $3/4$ रूपा होता है। स्वक्षेत्र में स्थित उसी ग्रह का बल $\frac{१}{२}$ रूपा अपने मित्र की राशि में स्थित ग्रह का बल, $\frac{१}{४}$ रूपा, अपने अधिमित्र की राशि मे स्थित ग्रह का बल $\frac{३}{४}$ रूपा, अपने शत्रु की राशि में उसी का बल $\frac{१}{१६}$ रूपा, अपने अधिशत्रु की राशि में स्थित ग्रह का बल $\frac{१}{३२}$ रूपा होता है। अपने से सम की राशि में स्थित ग्रह का बल $\frac{1}{8}$ होता है।

अब संदेह हो रहा है कि वृष राशि में चन्द्रमा उच्चगत भी होता हैं व मूल त्रिकोणी भी। इसी तरह कन्या बुध का स्वगृह, उच्च व मूल-त्रिकोण तीनों ही है, तब कब इन्हें मूल त्रिकोण माना जाएगा या कब स्वगृही ?

इस संदर्भ में स्पष्ट कर दें कि वृष राशि के पहले तीन अंशों में स्थित चन्द्र उच्च का है और बाकी के २७ अंशों में अपने मूल त्रिकोण में। मंगल मेष के १२ अंश तक हो तो उसे मूल त्रिकोण स्थित समझेंगे

और उसके ऊपर उसे स्वगृही कहा जायेगा। बुध कन्या राशि के पहले १५ अंश तक कहीं हो तो उच्च कहलाएगा, १५ अंश से २० अंश में मूल-त्रिकोणस्थ और अन्तिम अंशों में स्वगृही होगा। सूर्य, गु , शुक्र और शनि क्रमशः सिंह, धनु, तुला और कुम्भ में जब पहले २० अंश तक हों तो मूल त्रिकोण और २१ से ३० अंश में हों तो स्वगृही कहलायेंगे।

वक्री ग्रह की विशेषता—

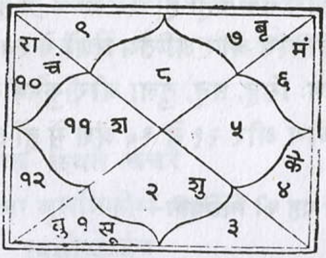
वक्री स्वोच्चबलः सवक्रसहिते मध्यं बलं तुङ्गभे
वक्री नीचबलः स्वनीचभवने वक्रीबलं तुङ्गजम्।
उच्चस्थेन युतोऽर्द्धवीर्यमिति चेन्नीचे तु शून्यं बलं
मित्रैः पापखगैः शुभै रिपुखगैर्युक्तोऽपि चार्द्धं बलम्॥ ६॥

वक्री ग्रह का बल उसके उच्च होने के समान समझना चाहिये। कोई ग्रह जब किसी वक्री ग्रह के साथ हो तो उसको ½ रूपा बल और मिल जाता है। यदि कोई ग्रह उच्च परन्तु वक्री हो ता उसको नीच (बल-शून्य) समझना चाहिये। ग्रह यदि नीच परन्तु वक्री हो तो अपनी उच्च राशि में होने जैसा बली होता है। उच्च ग्रह के साथ पड़ा हुआ ग्रह ½ रूपा बल पा जाता है, नोच ग्रह के साथ पड़ा हुआ ग्रह शून्य बल पाता है, कोई ग्रह जब वह किसी नैसर्गिक पापी परन्तु मित्र अथवा नैसर्गिक मित्र परन्तु पापी ग्रह के साथ पड़ा हो तो ½ रूपा बल पाता है।

इस तरह वक्री ग्रह के विषय में सावधानी से देखना चाहिए। शुभ ग्रहों के विषय में माना जाता है कि वे वक्री होने पर शुभ फल देने वाले व बली हो जाते हैं। **यही सिद्धान्त उत्तरकालामृत के प्रसिद्ध 'विपरीत राजयोग' का आधार** है। जो ग्रह नीचगत होकर अशुभ फल देने वाला प्रतीत होता हो, वही यदि वक्री हो तो अच्छा फल करेगा। इस योग के विषय में सैद्धान्तिक विवेचन आगे करेंगे। अभो उदाहरणों पर जरा

गौर कीजिए—

(१) यहाँ पंचम भाव पर मंगल की दृष्टि है तथा एक दूसरे पापी ग्रह की भी नवम दृष्टि है। पंचमेश स्वयं पंचम भाव का पुत्र कारक होता हुआ पंचम से अष्टम स्थान में शत्रु राशि में त्रिक भवन में सूर्य दृष्ट है। अतः



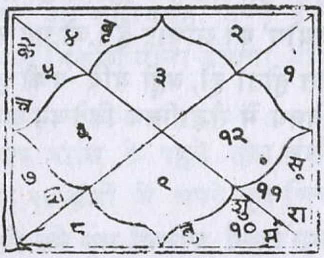
साधारण नियमों के अनुसार इस व्यक्ति को पुत्र का अभाव कहना चाहिये, परन्तु इसके दो पुत्र और एक कन्या विद्यमान हैं। स्पष्ट है कि जब तक गुरु बलवान् न हो पुत्र की प्राप्ति नहीं हो सकती। और गुरु है भी बलवान्, क्योंकि गुरु वक्री है। गुरु के वक्री होने से ही उसने पंचम भाव सम्बन्धी शुभ फल दिया।

(२) किस प्रकार एक नीच परन्तु वक्री ग्रह उच्च ग्रह का-सा शुभ फल करता है, इस बात का उदाहरण निम्नलिखित एक जनरल की कुण्डली



है। यहाँ शनि नीच राशि मेष में है परन्तु वक्री है। अतः वह उच्चता का फल दे रहा है। शनि चतुर्थाधिपति है तथा क्षेत्रादि का कारक भी, अतः जनरल के पास भूमि खेत आदि की पर्याप्त सम्पत्ति थी।

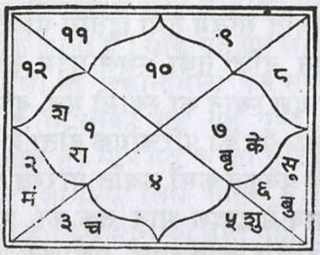
(३) दूसरी ओर एक उच्च ग्रह जब वक्री हो तो किस प्रकार हानि देता है इस बात का उदाहरण श्री मोरार जी देसाई की कुण्डली उपस्थित करती है। इस कुण्डली में गुरु जो कि स्वयं राज्यकृपा कारक है, दशमाधिपति बल्कि दशम से दशम अर्थात् सप्तमा-



धिपति भी है। अतः राज्य का बहुत अच्छा प्रतिनिधि है। वह गुरु उच्च

परन्तु वक्री है। अतः बार-बार राज्य से च्युति करवा रहा है। गुरु पर शनि तथा मंगल की दृष्टि भी इस तथ्य की द्योतक है।

(४) इसी प्रकार अशोक कुमार अभिनेता (Film Hero) की कुण्डली में भी नीच राशि का शनि वक्री है और इसलिए उच्चता का फल दे रहा है। शनि का चतुर्थ स्थान में स्थित होना और क्षेत्र कारक होना उसके बल द्वारा इस फिलम अभिनेता को पुष्कल भूमि-सम्पत्ति का मालिक बना रहा है।



इसी सिद्धान्त को आप विपरीत राजयोग की भूमिका समझ सकते हैं। अब यह बात स्पष्ट है कि ये सिद्धान्त अनुभव में बिल्कुल खरे उतरते हैं।

ग्रहों के परमोच्च अंश—

आशाग्न्यष्टकरास्तिथोषु भनखाः सूर्यात्लवास्तुङ्गजा-
स्तज्जामित्रगृहे लवा अपि तथा वीर्यं त्विदं राशिजम् ॥

सूर्य आदि ग्रह अपनी-अपनी उच्च राशियों के दसवें (१०), तृतीय (३), अठाईसवें (२८), पन्द्रहवें (१५), पाँचवें (५), सत्ताईसवें (२७) तथा बीसवें (२०) अंश में क्रमशः परम उच्चता को प्राप्त होते हैं। और यही ग्रह उस स्थान से सप्तम स्थान में उतने ही अंशों पर परम नीच राशि में कहे जाते हैं। यह ग्रहों का राशि से उत्पन्न होने वाला बल समझा जाता है।

सूर्य मेष के दसवें अंश में परम उच्च समझा जाएगा। इसी प्रकार चन्द्रमा वृषभ राशि के तीसरे अंश में परम उच्च समझा जायेगा। परम उच्चता के अंश शेष ग्रहों के इसी क्रमानुसार श्लोक में लिखे हैं।

कोई ग्रह किसी राशि अथवा नक्षत्र में क्यों उच्च होता है यह एक विचारणीय प्रश्न है। इस सम्बन्ध में विविध विद्वानों के विविध मत हैं। परन्तु हमारा मन्तव्य यह है कि क्योंकि ज्योतिष शास्त्र मूलतः वेद का अंश है, इसलिए इसकी मौलिक मान्यतायें वेद-सम्मत अर्थात् आध्यात्मिक पक्ष को लेकर होनी चाहियें। इसी आध्यात्मिक पक्ष को लेकर हम द्वादश स्थान को मोक्ष का स्थान निर्धारित करते हैं, क्योंकि मौलिक

नियम है कि किसी भाव से उसका व्यय (बारहवाँ) स्थान उसका मारक होता है। जैसे अष्टम और तृतीय स्थान से द्वादश स्थानों के स्वामी अर्थात् सप्तम तथा द्वितीय भावों के स्वामी मारक होते हैं। इसी प्रकार मन बुद्धि तथा स्थूल-सूक्ष्म कारण शरीर के द्योतक प्रथम भाव से द्वादश स्थान का स्वामो मन, बुद्धि, अहकार आदि का नाश करता हुआ मोक्ष पद का परिचायक होता है। इसी प्रकार समस्त कुण्डली का फल भी पूर्वकृत कर्मों अर्थात् प्रारब्ध फल का द्योतक है। इसी प्रकार प्रथम भाव से द्वादश भाव तक का क्रम एक आध्यात्मिक विकास क्रम है। (देखिये **'फलितसूत्र'**, प्रकाशक रंजन पब्लिकेशन, १६ अंसारी रोड, नई दिल्ली-२)। कहने का तात्पर्य यह है कि जब सब तरह से ज्योतिषशास्त्र आध्यात्मिकता को लेकर चलता है तो ग्रहों की उच्चता के विषय में भी उसकी मान्यता मूलतः आध्यात्मिक ही होनी चाहिये। अब आप जानते ही हैं कि सूर्य मेष राशि के दशम अंश पर उच्च माना गया है। मेष राशि का दशम अंश अश्विनो नक्षत्र में पड़ता है। अतः सूर्य अश्विनी नक्षत्र में उच्च होता है। अब प्रश्न है कि क्यों अन्य किसी नक्षत्र में सूर्य उच्च नहीं होता। इसका उत्तर यह है कि सूर्य आत्मा है जैसा कि वेद वाक्य है "सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च"। अर्थात् सूर्य स्थावर जंगम सब संसार की आत्मा है। 'यत्पिण्डे तद्ब्रह्मांडे' के नियमानुसार हमारा जीवात्मा भी सूर्य द्वारा ही प्रतिनिधित्व पाता है तो स्पष्ट है कि अश्विनी नक्षत्र क्योंकि केतु का नक्षत्र है और केतु मोक्ष कारक ग्रह है। इसीलिये सर्य को अश्विनो नक्षत्र में उच्च माना है। यहो बात आप चन्द्र के सम्बन्ध में भी विचार सकते हैं। जब चन्द्रमा (मन) वृषभ राशि के तृतीय अंश (कृत्तिका नक्षत्र) अर्थात् सूर्य के नक्षत्र में होता है तो उच्च माना जाता है।

हमने स्वोकार कर लिया कि मन जब सूय के नक्षत्र में होता है अर्थात् आत्मा को प्राप्त कर लेता है तो उसको परम पद अथवा उच्चता की प्राप्ति होती है। यही दशा अन्य ग्रहों को उच्चता की है। सूर्य जब मोक्ष द्योतक नक्षत्र अश्विनी में होता है तो पाप राशि मेष मे उसको स्थिति उसका कुछ बिगाड़ नहीं सकती। मन जब आत्मप्रद कृत्तिका नक्षत्र में होता हं तो वृषभ को भोगात्मक राशि उसको प्रलोभित नहीं कर सकतो। इसो प्रकार एक सच्चा सिपाहो मंगल शत्रु के घर (मकर राशि) में स्थित होकर भी अपनो प्रकृति अर्थात् चित्रा नक्षत्र (जो मंगल ही का नक्षत्र है) में सुस्थित रहता है। एक सिपाही से हम और

अधिक क्या आशा कर सकते हैं। ऊंची बुद्धि के लिये आवश्यक कि है वह बुद्धि (कन्या राशि) का प्रयोग करे परन्तु किसी की भावनाओं को ठेस न पहुंचाये। यही कारण है कि बुध भावात्मक चन्द्र के नक्षत्र 'हस्त' में उच्च होता है। गुरु एक आध्यात्मिक ज्ञानी है। यदि यह ग्रह भावात्मक वातावरण (कर्क राशि) में रहता हुआ भी एकान्तवास कर सके, शून्य की सी स्थिति प्राप्त कर सके जो कि निःसन्देह यह ग्रह पुष्य नक्षत्र (जो कि शून्यता द्योतक शनि का नक्षत्र है) में प्राप्त करता है तो इसने ज्ञान की स्थिति को प्राप्त कर लिया (ज्ञानी के लिये गीता में 'विविध देश सेवित्वं' कहा है)। शुक्र विलासी है। इसे ज्ञान की बात नहीं भाती। यदि यह ग्रह ज्ञान की राशि (मीन) में रहकर भी समुचित बुद्धि में (रेवती नक्षत्र जो कि बुध का नक्षत्र है उसमें) रह पाये तो यह शुक्र की परम साधना होगी।

शनि निर्धन है। यदि इसे विलास (तुला राशि शुक्र ग्रह) के वातावरण में रखा जाये और फिर भी वह ज्ञान की स्थिति (गुरु के नक्षत्र) में रह पाये तो यह उसकी उच्चतम साधना होगी। इस प्रकार ग्रह अपने गुण-स्वभावानुकूल उच्च मनोवैज्ञानिक स्थिति पाकर उच्च होते हैं।

होरा, द्रेष्काण, सप्तमांशादि का ज्ञान—

अर्केन्द्वोर्विषमेऽन्यथा समगृहे होरेऽथ द्रेष्काणके
लग्नेष्वङ्कगृहेश्वराश्चरगृहे भाग्येश्वरात्स्युः स्थिरे ॥ ७ ॥
पुत्रेशाच्च त एव तु द्वितनुभे सप्तांशकास्त्वोजभे
लग्नेशात्समभे तु सप्तमगृहाच्चाथो नवांशात्क्रमात्।
मेषे सिंहगृहे धनुष्यजनवांशस्त्वादिमस्तत्क्रमा-
न्मीनान्तं भवनाधिपाद्द्विलवेशास्त्रिंशदंशास्त्वथो ॥ ८ ॥

बाणेष्वष्टनगेष्वो विषमभे भौमार्किसूरीन्दुजाः
शुक्रो व्यत्ययतस्त एव समभे स्यात्सप्तवर्गस्त्वयम्।

विषम राशियों में राशि के पहले अर्धभाग अर्थात् १५ अंशों तक होरा का स्वामी सूर्य व द्वितीय अर्धभाग का स्वामी चन्द्र होता है। सम राशियों में पहले १५ अंशों का स्वामी चन्द्र व अगले १५ अंशों का स्वामी सूर्य होरेश होता है।

द्रेष्काण के लिए ध्यान रखिए कि चर राशि में १-५-९ राशियों

के द्रेष्काण होते हैं। यथा मेष में—मेष, सिंह, धनु के तीन द्रष्काण हैं। स्थिर राशि में ६-१-५ राशियाँ द्रेष्काण में क्रमशः होती हैं।

द्विस्वभाव राशियों में ५-९-१ राशियों के द्रेष्काण होते हैं। सप्तमांश के विषय में विषम राशियों में पहले सप्तम भाग का स्वामी उन्हीं राशियों का स्वामी होता है और सम राशियों में पहले सप्तम भाग का स्वामी उस राशि से सप्तम राशि का स्वामी होता है।

उदाहरण—मेष राशि विषम है। अतः इसमें पहले से लेकर सप्तम सप्तमांशों के स्वामी मेष से आरम्भ करके मंगल, शुक्र, बुध, चन्द्र, सूर्य, बुध तथा शुक्र होंगे। वृषभ राशि सम है। इस में प्रथम सप्तमांश के स्वामी वृषभ से सप्तम राशि अर्थात् वृश्चिक राशि का स्वामी मंगल होगा और द्वितीय धनु का गुरु, तृतीय मकर का शनि, चतुर्थ कुम्भ का शनि, पंचम मीन का गुरु, षष्ठ मेष का मंगल तथा सप्तम वृषभ का स्वामी शक्र होगा। ऐसे ही शेष विषम-सम राशियों के सप्तमांशों के स्वामी निकाले जायेंगे।

मेष, सिंह तथा धनु राशि प्रत्येक में प्रथम नवांश मेष राशि का होता है और द्वितीय वृषभ आदि मीन तक आगे चलते हैं। किसी राशि में द्वादशांश उसी राशि के स्वामी से प्रारम्भ होता है। विषम राशियों में ५, ५, ८, ७, ५ अंशों के स्वामी मंगल, शनि, गुरु, बुध तथा शुक्र क्रमशः होते हैं और सम राशियों में ५, ७, ८, ५, ५ अंशों के स्वामी क्रमशः शुक्र, बुध, गुरु, शनि तथा मंगल त्रिशांश भाग अर्थात् एक अंश के स्वामी होते हैं। इस प्रकार सप्तवर्ग निकाले जाते हैं।

नवांश निकालने का सरल प्रकार बता रहे हैं। प्रत्येक नवांश ३° २०′ के बराबर होता है। अर्थात् ३०° (१ राशि) का नौवां भाग (३° २०′) एक नवांश कहलाता है।

मान लीजिए सूर्य ग्रह का स्पष्ट किसी कुण्डली में ३-४-२० है। इसका अर्थ यह हुआ कि सूर्य चतुर्थ राशि के द्वितीय नवांश में है। गत राशि ३ को ९ से गुणा करो और उसमें नवांश संख्या २ जोड़ दो। ९×३+२=२९ फल को १२ से विभक्त किया, शेष ५ बचे तो सूर्य सिंह राशि के नवांश में समझा जायेगा। इसी प्रकार मान लो कि चन्द्र स्पष्ट ४-६-४७ है तो चन्द्र पांचवीं राशि के तीसरे नवांश में हुआ। अतः ९×४+३=३९÷१२, शेष ३, तो चन्द्र मिथुन नवांश में स्थित माना जाएगा।

सप्तवर्गों से बल जानना—

रूपाद्यं भवनोदितं शुभबलं प्राग्वद्विलिख्याथ त-
द्धोरादिष्वपि षट्सु तत्पतिवशाद्गेहोक्तवीर्यार्द्धकम् ॥ ९ ॥
संलिख्याथ समस्तवर्गजबलैक्यं सप्तवर्गोद्भवं
रूपाद्यं त्विदमेव वीर्यमुदितं खेटेषु सप्तस्वपि।
नीचात्तुङ्गलवान्तमुच्चबलतो नीचांशपर्यन्तगा
येंशास्ते खगजेन्दुभिः परिहृता रूपादिकं यत्फलम् ॥ १० ॥

आरोहे तु तदेव भूच्युतमिदं खेटेऽवरोहे भवे-
दौच्चं रूपदलांघ्रयो यदि खगे केन्द्रादिषु त्रिष्वपि।
युग्मर्क्षांशकयोः सिताम्बुधिभुवोः पादं बलं व्यत्यया-
दन्येषां प्रथमे नृणां हि खगयोस्तत्क्लोबयोर्मध्यमे ॥ ११ ॥

अन्ते पादमितं वधूव्रचरयोर्द्रेक्काणके स्याद्बलं
पञ्चानामपि योगतः समुदितं चाद्यं त्विदं स्थानजम्।

ज्ञेज्यौ लग्नगतौ निशाकरभृगूबन्धौ स्मरे त्वर्कजौ
भौमार्कौ दशमे तु दिग्बलमिदं प्रागादिदिक्षु स्मृतम् ॥ १२ ॥

एक कोष्ठक बनायें जिसके ऊपर सूर्य आदि ग्रह और बाईं ओर राशि, होरा द्रेष्काण आदि सात वर्ग लिखें। राशि के सामने उसका बल लिखें। होरा आदि सात वर्गों के सामने उस बल का आधा लिखें जो सूर्य आदि को होरा वर्गों में मिलता है। इस प्रकार प्रत्येक ग्रह का समस्त सप्तवर्गज बल निकल आयेगा।

जो ग्रह आरोही हो, अर्थात् अपनी उच्च राशि को प्राप्त करने जा रहा हो उसका रूपों में उच्च बल, उसके उन अंशों को, जो कि उसके नीच अंश से तात्कालिक अंश तक हों, १८० से विभक्त करने से प्राप्त होगा। जब ग्रह अवरोही हो, अर्थात् उच्च अंश से आगे निकल कर नीच अंश की ओर जा रहा हो तो एक और उपरोक्त बल का अन्तर ग्रह का उच्च बल होगा। जब कोई ग्रह केन्द्र, पणफर अथवा आपोक्लिम स्थान में हो तो उसको क्रमशः १, $\frac{१}{२}$ तथा $\frac{१}{४}$ रूपा बल प्राप्त होता है।

चन्द्र और शुक्र जब सम राशि में हों अथवा सम नवांश में, $\frac{१}{४}$ रूपा बल पाते हैं। इसके विपरीत अन्य ग्रह सूर्य, मंगल, बुध, गुरु तथा शनि जब विषम राशि अथवा विषम नवांश में हों तो $\frac{१}{४}$ रूपा बल पाते हैं।

जब पुरुष, स्त्री तथा नपुंसक ग्रह क्रमशः किसी राशि के प्रथम, मध्य तथा अन्तिम तृतीय भाग में होते हैं तो उनको ¼ रूपा बल मिलता है। इन पांच प्रकार के बलों का योग 'स्थान बल' कहलाता है जो कि षड्बल का पहला बल है।

बुध तथा गुरु लग्न अर्थात् पूर्व में बलवान् होते हैं। चन्द्र तथा शुक्र चतुर्थ भाव अर्थात् उत्तर में बलवान् होते हैं। शनि सप्तम भाव अर्थात् पश्चिम में बलवान् होता है। मंगल व सूर्य दशम स्थान (दक्षिण) में बली होते हैं।

षड्बल की सर्वत्र आवश्यकता होती है। षड्बल निम्नलिखित हैं—

(i) स्थान बल, (ii) दिग्बल, (iii) काल बल, (iv) चेष्टा बल, (v) निसर्ग बल, (vi) दृग्बल या दृष्टि बल।

स्थान बल क्या है? स्थान बल = उच्च बल + युग्मायुग्म बल + सप्तवर्गैक्य बल + केन्द्र बल + द्रेष्काण बल। अर्थात् ये पांचों मिलकर स्थान बल कहलाते हैं। इन श्लोकों में स्थान बल व दिग्बल का संकेत किया गया है।

इन बलों के साधन[1] का प्रकार श्रीपति पद्धित, केशवीयपद्धति आदि से जान लेना चाहिए। इनके विषय में यहां बताया गया है कि एक कोष्ठक बनाकर बाईं ओर गृह, होरा, द्रेष्काणादि सातों के नाम लिख लें। ऊपर ग्रहों के नाम लिख लें। सातों वर्गों का साधन कर उनकी कुण्डलियाँ लिखकर, पूर्वोक्त पंचधा मैत्री का साधन भी कर लेना चाहिए। अब एक-एक वर्ग के सामने ग्रह के नीचे इस प्रकार बल लिखिए—

स्वक्षेत्री ग्रह का बल—	०°	३०′	००″
अतिमित्र को राशि में—	०°	२२′	३०″
मित्र की राशि में—	०°	१५′	००″
सम की राशि में—	०°	७′	३०″
शत्रु की राशि में—	०°	३′	४५″
अतिशत्रु की राशि में—	०°	१′	५२/३०″

इस प्रकार सातों वर्गों की कुण्डलियों मे स्थित ग्रहों के बल को जोड़-

(1) हमारे यहाँ से प्रकाशित 'आयुर्निर्णय' का बलसाधानाधिकार देखें। वहाँ विषय को विस्तार से सोदाहरण समझाया गया है।

कर ६० से भाग देना चाहिए। लब्धि **'सप्तवर्गैक्य बल'** होती है।

उच्च बल के लिए ग्रह के स्पष्ट राश्यादि से जान लीजिए कि ग्रह 'आरोही' है या 'अवरोही'। ग्रह स्पष्ट से परम नीच तक की दूरी का १८०वाँ भाग उच्च बल होता है। ग्रह के स्पष्ट राश्यादि में से पूर्वोक्त नीचांश (परम नीच) को घटा लीजिए। शेष यदि ६ राशियों से अधिक हो तो उसे १२ राशियों में से घटाकर शेष को लीजिए। यदि पहले वाला शेष ६ राशियों से कम है तो उसे १२ राशियों में से घटाने की जरूरत नहीं होगी। इस क्रिया को 'षड्भाल्प' करना कहते हैं। इस प्रकार षड्भाल्प शेष की विकलाएँ बनाकर उसमें १०८०० का भाग दीजिए। लब्धि कला विकलात्मक **'उच्च बल'** होता है। श्लोक में 'रूपा' से बल नापा गया है। बात एक ही है। आप पाँच सेर अनाज को एक धड़ी भी कह सकते हैं। रूपा व कला आदि मापने व नापने की विधियाँ हैं। **केन्द्र बल** के बारे में समझिए। १,४,७,१० केन्द्र स्थान हैं। इनमें स्थित ग्रह का बल १ रूपा या १ अंश या ६० कला होता है। २,५ ८,११ स्थान पणफर कहलाते हैं। इनमें स्थित ग्रहों का बल $\frac{1}{2}$ रूपा या आधा अंश या ३० कला होता है। ३,६,९,१२ स्थान आपोक्लिम कहलाते हैं। इन स्थानों में स्थित ग्रह का बल $\frac{1}{4}$ रूपा या चौथाई अंश या १५ कला होता है।

इसके बाद श्लोकों में **युग्मायुग्म बल** बताया गया है। चन्द्र व शुक्र सम राशि में १५ कला बल पाते हैं। शेष ग्रह विषम राशि में १५ कला बल पाते हैं। यदि सम राशि या विषम राशि के नवांश में भी हों तो १५ कला बल और मिलेगा। अर्थात् दोनों जगह (कुण्डली व नवांश) में सम राशि या विषम राशि में पूर्वोक्त ग्रह हों तो ३० कला व एक जगह पर ही सम विषम राशि में हों तो १५ कला बल मिलेगा। अन्यथा शून्यबल होगा। इसके बाद **द्रेष्काण बल** बताया गया है। पुरुषग्रह—सूर्य, मंगल, गुरु जब प्रथम द्रेष्काण में हों; स्त्री ग्रह—शुक्र, चन्द्र तृतीय द्रेष्काण में हों; नपुंसक ग्रह—शनि, बुध द्वितीय द्रेष्काण में हों तो १५ कला बल मिलता है। अन्य द्रेष्काणों में हों तो शून्य बल मिलेगा। इन पाँचों के योग को **स्थान बल** कहते हैं।

इसके बाद षड्वर्गों के दूसरे बल अर्थात् **'दिग्बल'** को बताया गया है। जिन स्थानों में ग्रह को दिग्बली बताया गया है उनसे सप्तम स्थान में ग्रह दिग्बल शून्य होता है। बताये गए स्थानों में १ रूपा अर्थात् पूर्ण अर्थात् १ अंश अर्थात् ६० कला दिग्बल होगा।

यदि ग्रह इन भावों में न हों तो क्या करें। इसका समाधान अगले श्लोक में दिया जा रहा है।

तत्तत्सप्तमगे खगेन किमपि त्रैराशिकादन्तरे
तत्तद्वीर्यफलं स्वदिक्षु खचरस्तादृग्विधं कारयेत्।

जब उक्त स्थानों से ग्रह सप्तम भाव में होते हैं तो इनका यह 'दिग्बल' शून्य होता है। उक्त दो स्थितियों के बीच की स्थिति के लिये उनका बल त्रैराशिक के गणितसे निकाल लेना चाहिये। अपनी-अपनी दिशा में ग्रह अपने दिग्बलानुसार फल करते हैं।

यदि ग्रह पूर्वोक्त भावों में न हों तब त्रैराशिक विधि से उनका दिग्बल निकाला जाता है। इसके लिए निम्नलिखित विधि अपनाएं—

सूर्य तथा मंगल की राशियों में से चतुर्थ भाव को, गुरु तथा बुध की राशियों में से सप्तम भाव को, शुक्र तथा चन्द्र की राशियों में से दशम भाव को तथा शनि की राशि आदि में से लग्न भाव को निकालो। यदि शेष ६ राशि से अधिक हो तो उसे १२ राशि में से घटाओ। जो उत्तर आये उसकी कला बनाकर १०८०० से विभक्त करो, उत्तर रूपा में दिग्बल होगा।

काल बल साधन :—

शुक्ले यातदिनेषु सौम्य खचराः स्युर्वीर्यवन्तोऽशुभाः।
शेषेषु द्विगुणं विधोरसितके चेदन्यथा पक्षजम्॥ १३॥
मध्याह्ने रविरेव चास्तसमये मन्दो निशानायकः
प्राग्रात्रौ बलवान्निशार्द्धसमये शुक्रो निशान्ते कुजः।
ज्ञः प्रातः सततं बली सुरगुरुस्त्वेतत्त्वहोरात्रजं
नाड्याद्यं द्विगुणं नतं खरसुहृद्रूपाद्यमोजो भवेत्॥१४॥

यदि शुक्ल पक्ष में जन्म हो तो नैसर्गिक शुभ ग्रहों का पक्ष बल शुक्ल पक्ष की व्यतीत तिथियों के अनुपात से बढ़ता है। शुक्ल पक्ष में नैसर्गिक ग्रहों का बल बीतने वाली तिथियों की संख्या के अनुपात से बढ़ता है। कृष्ण पक्ष में उलटा क्रम होता है। चन्द्र के पक्ष बल को शुक्ल पक्ष में दुगना करो। यदि जन्म मध्याह्न का हो तो सूर्य को अहोरात्र का एक रूपा बल मिलता है। यदि सूर्यास्त के समय जन्म हो तो शनि को

एक रूपा पूर्ण अहोरात्र बल मिलता है। रात्रि के प्रथम तृतीय भाग में चन्द्र को, रात्रि के मध्य में हो तो यह बल शुक्र को प्राप्त है।

यदि जन्म रात्रि के अन्तिम भाग में हो तो यह बल मंगल को मिलता है। यदि जन्म दिन के प्रथम भाग में हो तो यह बल बुध को मिलता है। परन्तु गुरु को यह बल जन्म के प्रत्येक काल में मिलता है। नतकाल की घड़ियों को २ से गुणा कर ६० का भाग देने से नत बल होता है। यहाँ पर काल बल का साधन बताया जा रहा है। षड्वर्गों में यह तीसरा बल होता है। काल बल, कई प्रकार के बलों का सम्मिलित रूप होता है। इसमें नतोन्नत बल, पक्ष बल, अहोरात्र त्रिभाग बल, वर्षेशादि बल, इन चारों का ग्रहण होता है।

तद्रूपच्युतमुन्नतोत्थितबलं चन्द्रारमन्दा नते
सूर्यज्ञामरपूज्यदैत्यगुरवो वीर्यान्विताश्चोन्नते।
नाड्यः स्युर्नतसंज्ञको दिनदलान्निश्यर्द्धपर्यन्तगा-
स्तद्द्वात्रिदलात्तदा दिनदलं नाड्यादिकं चान्नतम्॥ १५॥
त्रिंशच्छुद्नतोन्नते च भवतस्तेऽन्ये क्रमात्कालजे
वीर्ये यन्त्रलवादिकं च गदितं वाद्ये दले विस्तरात्।
वर्षेशश्च स मासपो दिनपतिस्तत्कालहोरेश्वरो
वीर्याढ्याश्चरणोत्तरं समयजं योगश्चतुर्णां बलम्॥ १६॥
स्वेष्टास्ता घटिकाः करैर्विनिहता बाणैरवाप्तागताः
वारेशाद्रविशुक्रविद्विधुशनीज्यारास्तु होराधिपाः।
याम्ये चन्द्रशनी बुधस्तु सततं शेषास्तु सौम्यायने
पूर्वोक्तैश्चलकेन्द्रजैरिह लवैर्वक्री यदि स्याद् बलम्॥ १७

नत बल को १ में से घटाने पर उन्नत बल प्राप्त हो जाता है। चन्द्रमा, मंगल व शनि नत बली होकर एवं सूर्य, बुध, बृहस्पति व शुक्र उन्नत बली होकर सबल माने जाते हैं।

जन्म के समय वाले वार की मध्याह्न से लेकर आधी रात तक की घड़ियाँ नत कहलाती हैं। इसी प्रकार रात्रि के अर्धभाग से दिन में मध्याह्न तक की घड़ियां उन्नत कहलातो हैं।

नत तथा उन्नत काल को ३० से विभक्त करने पर क्रमशः रूपा में नत तथा उन्नत बल निकल आती है। यह उन्नत तथा नत बल काल बल का ही अंग है। शंकु आदि यन्त्रों का विस्तारपूर्वक वर्णन हम

'पूर्वकालामृत' पुस्तक में कर चुके हैं।

जन्म वर्ष का स्वामी, जन्म मास का स्वामी, जन्म दिन का स्वामी तथा जन्म होरा का स्वामी यदि बलवान हों तो क्रमशः $\frac{१}{४}$, $\frac{१}{२}$, $\frac{३}{४}$ तथा १ रूपा बल पाते हैं। चारों ग्रहों के उपरोक्त बल का योग भी काल बल का ही अंग है। इष्ट को २ से गुणा कर ५ का भाग देने से गत होरा (घंटे) निकल आयेंगे। सूर्यादि वारों में प्रथम होरा का स्वामी वार का स्वामी ही होता है। द्वितीय तथा अग्रिम होरा का स्वामी सूर्य, शुक्र, बुध, चन्द्र, शनि, गुरु तथा मंगल क्रम से निकल आता है। जैसे बुधवार को प्रथम होरा बुध की, द्वितीय चन्द्र की, तृतीय शनि की आदि।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट हो गया कि रविवार को २२वें होरा अर्थात् घंटे का स्वामी रवि, २३वें का शुक्र तथा २४वें का बुध होगा। २५वें घंटे अर्थात् दूसरे दिन के पहले घंटे (होरा) का स्वामी चन्द्र होगा। इसी प्रकार तीसरे दिन की प्रथम होरा का स्वामी मंगल, चतुर्थ दिन को प्रथम होरा का स्वामी बुध, पंचम दिन की प्रथम होरा का स्वामी गुरु, षष्ठ दिन की प्रथम होरा का स्वामी शुक्र तथा सप्तम दिन की प्रथम होरा का स्वामी शनि होगा। इस प्रकार हमने देखा कि सप्ताह के (सात वारों के) नाम उनके प्रथम होरा के स्वामी के नाम पर रखे गये हैं।

चन्द्र और शनि अपने दक्षिण अयन में बलवान् होते हैं। बुध दक्षिण अथवा उत्तर अयन में दोनों में बली होता है। शेष सूर्य, मंगल, गुरु, शुक्र अपने उत्तर अयन में बलवान् होते हैं। यह ग्रहों का अयन बल है। मंगल, बुध, गुरु तथा शुक्र, शनि जब वक्री हों तो बलवान् होते हैं।

जैसा पहले बताया है कि काल बल (पक्ष बल, नतोन्नत बल, अहोरात्रि त्रिभाग बल, वर्षेशादि बल) का साधन इन श्लोकों में बताया गया है। सर्वप्रथम पक्ष, बल के विषय में बताया गया है (श्लो. १३)। निसर्ग शुभ ग्रह (चन्द्र, बुध, गुरु, शुक्र) शुक्ल पक्ष में बलवान् होते हैं, यह सामान्य नियम है। परन्तु **पक्ष बल क्या है**। समझिए—सूर्य व चन्द्रमा के अंशात्मक अन्तर से प्रति पक्ष द्वितीया आदि तिथियाँ व शुक्ल पक्ष एवं कृष्ण पक्ष बनते हैं। शुक्ल पक्ष में ज्यों-ज्यों तिथियाँ बढ़ती हैं, अर्थात सूर्य व चन्द्रमा का अन्तर बढ़ता जाता है त्यों-त्यों शुभ ग्रहों का पक्ष बल अधिक व क्रूर ग्रहों का पक्ष बल कम होता जाता है। कृष्ण पक्ष में ज्यों-ज्यों तिथियाँ बढ़ती हैं अर्थात् सूर्य व चन्द्र की दूरी घटती जाती है वैसे-

वैसे ही क्रूर ग्रहों का बल बढ़ता है व शुभ ग्रहों का पक्ष बल घटता है। स्पष्ट कैसे करेंगे—

सूर्य स्पष्ट व चन्द्र स्पष्ट का अन्तर कर लीजिए। जितने अंशों का अन्तर हो उनमें ३ का भाग दीजिए तो लब्धि शुभ ग्रहों का पक्ष बल होगी। इस पक्ष बल को ६० कला में से घटा दीजिए तो अशुभ ग्रहों का पक्ष बल होगा। यहाँ बुध को पापयुक्त होने पर पापियों में व शुभयुक्त होने पर शुभ ग्रहों में समझिए। उदाहरण देखिए—

चन्द्र स्पष्ट— २ १०° २४′ ५०″
सूर्य स्पष्ट — १ ७° ३′ १०″
अन्तर— १ ३° २१′ ४०″ = ३३° २२′

३३° २२′ ÷ ३ = ०° ११′ ७″ शुभ ग्रहों का पक्ष बल हुआ। इसे १ अंश या ६० कला में से घटाया तो अशुभ ग्रहों का पक्ष बल ०° ४८′ ५३″ हुआ।

ध्यान रखिए— शक्ल पक्ष में चन्द्रमा के बल का दुगुना कर लेना चाहिए। अब **दिवारात्रि त्रिभागबल** या **अहोरात्रित्रिभाग बल** को समझिए। दिन में जन्म हो तो दिनमान को और रात्रि में जन्म हो तो रात्रिमान को उसे भाग देकर उसका तीसरा हिस्सा (त्रिभाग) जान लीजिए। अब देखिए कि जन्म किस भाग में पड़ा है। उस भाग में पड़ने वाले ग्रह को तो बल मिलेगा और शेष ग्रहों को यह बल नहीं मिलेगा।

दिन में त्रिभागेश	रात्रि में त्रिभागेश
१. बुध	१ सूर्य
२. सूर्य	२ शुक्र
३. शनि	३ मंगल

जिस त्रिभाग में जन्म होगा, उसी ग्रह को यह बल १ अंश अर्थात् ६० कला मिलेगा। बृहस्पति के विषय में यह ध्यान रखिए कि उसे हर हालत में १ अंश बल मिलेगा, चाहे जन्म किसी भी त्रिभाग में हो। इसके बाद **नतोन्नत बल** को देखिए। दशम भाव साधन के प्रसंग में नतकाल का साधन किया जाता है। नतकाल दो प्रकार का होता है—पूर्व नत व पश्चिम नत। नतकाल साधन के चार तरीके हैं—

(i) दिनार्ध (दिनमान का आधा) से पहले का जन्म हो तो—
दिनार्ध—इष्ट काल = पूर्व नत

(ii) दिनार्ध से बाद का जन्म हो तो—

दिनमान—इष्ट काल=शेष फल

दिनार्ध—शेष फल=पश्चिम नत

(iii) रात्रि अर्ध (रात्रिमान का आधा) से पूर्व का जन्म हो तो—

इष्टकाल—दिनमान=शेषफल

शेषफल+दिनार्ध=पश्चिम नत

(iv) रात्रि अर्ध के बाद जन्म हो तो—

६० घड़ी—इष्ट काल=शेष+दिनार्ध=पूर्वनत

इस प्रकार नतकाल का साधन कर लीजिए। अब नतकाल को २ से गुणा कर ६ का भाग दीजिए तो नतबल अर्थात् चन्द्रमा, मंगल व शनि का 'नतबल' आ जाएगा।

इस नतबल को ६० में से घटा दीजिए तो सूर्य, बुध, बृहस्पति व शुक्र का बल अर्थात् 'उन्नतबल' आ जाएगा।

उदाहरण के लिए नतकाल २४ घड़ी ३ पल है। इसे २ से गुणा किया तो २४.३ × २=४८.६। इसे ६ से भाग देने पर लब्धि ०° ४८′ ००″ नत बल है। इसे ६० कला में से घटाने पर ०° १२′ ००″ उन्नत बल होगा।

अब **वर्षेशादि बल** देखिए। वर्षेशादि का तात्पर्य वर्षपति, मासपति, दिनपति व होरापति से है। इन्हें कैसे जानें? ध्यान से देखिए, प्रक्रिया जरा लम्बी है। सबसे पहले कलियुगाद्यहर्गण निकालिए—

(i) जन्म शक वर्ष में ३१७९ जोड़िए तो योग फल कलियुग के गत वर्ष होंगे।

(ii) इन वर्षों को १२ से गुणा कर चैत्रादि गतमास (जन्म मास से पहले मास तक की संख्या) जोड़िए।

(iii) इस योग फल को ३ स्थानों पर रखिए। पहली जगह ७० से भाग दें व लब्धि को दूसरी जगह जोड़ दीजिए।

(iv) इस योगफल में ३३ का भाग दें और लब्धि को तीसरी जगह जोड़ दीजिए।

(v) इस योगफल को ३० से गुणा करें व इसमें गत तिथि जोड़ें।

(vi) अब इस योगफल को दो जगहों पर रख लीजिए।

(vii) एक जगह ११ से गुणा कर ७०३ का भाग दीजिए।

(viii) लब्धि को दूसरी जगह में रखी संख्या में से घटा लीजिए। यह कलियुगाद्यहर्गण होगा। इसी के आधार पर वर्षेशादि बल जाना जाएगा।

अब इस कलियुगाद्यहर्गण में से ३७३ घटाएँ। शेष में २५२० का भाग दें। जो शेष आए उसे दो जगहों पर लिख लें। एक जगह ३६० का भाग देकर दूसरी जगह ३० का भाग दें। दोनों जगहों की लब्धियों को क्रमशः तीन से व दो से गुणा कर लें और गुणनफल में १ जोड़ दें। इस योग फल में सात का भाग दें। पहले स्थान पर शेष **वर्षपति** व दूसरे स्थान पर शेष **मासपति** होगा।

जिस दिन जन्म हो वही वाराधिप ग्रह **वारेश** होता है। इस तरह तीन अधिपों को जानने के बाद केवल एक अर्थात् होरापति ज्ञात करना शेष रह जाता है। होरा का अर्थ है—एक घंटा। जन्म समय को संकेतित करने के दो तरीके हैं—सूर्योदयात् इष्टकाल व वारप्रवृत्ति से इष्टकाल। जिस प्रकार अक्षांश व देशान्तर भेद से सूर्योदय का समय सर्वत्र भिन्न होता है उसी तरह वारप्रवृत्ति अर्थात् वार के शुरू होने का समय भी भिन्न-भिन्न होता है। स्थूल रूप से सूर्योदय (स्थानीय) से ही वार प्रवृत्ति मानी जा सकती है। सूक्ष्म काल जानने के लिए चर घड़ी आदि से रेखादेश के अन्तर के अनुसार घटाना या बढ़ाना पड़ता है। ग्रन्थकार ने इसे स्पष्ट नहीं किया है। फिर भी स्थूल मान से काम चलाने में कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ता। इसके लिए सीधा तरीका है कि जन्म समय के घण्टे मिनटों में से स्थानीय सूर्योदय के घंटे मिनट घटाकर देखिए कि जन्म समय कौन-सा घण्टा अर्थात् होरा चल रही थी। इसके लिए जन्म समय अर्थात् इष्टकाल को २ से गुणा कर ५ का भाग दीजिए। जो शेष बचे वह गत होरा अर्थात् घंटे होंगे। अब वर्तमान घंटे का होराधिप जानने के लिए वार से आगे इस क्रम से गिनिए तो होरेश आ जाएगा।

क्रम इस प्रकार है—सूर्य, शुक्र, बुध, चन्द्र, शनि, गुरु, मंगल।

इस प्रकार वर्षेश, मासेश, दिनेश व होरेश जानिए। इन्हें चरणवृद्धि से अर्थात् क्रमशः १५ कला, ३० कला, ४५ कला व ६० कला बल दीजिए। यही वर्षेशादि बल है। इस प्रकार यहाँ तक काल बल का साधन बताया गया है।

बल साधन की जानकारी के लिए हमारे यहाँ से प्रकाशित 'आयुर्निर्णय' का बलसाधनाधिकार देखें।

चेष्टाबल व दृग्बल का साधन—

चेष्टाख्यं रुधिराद् द्वयोर्यदि युतिस्त्वेकांशके चेकभे,
चोदग्याम्यंगयोर्जयापविजयौ स्यादेव जेता बली ।
पूर्णं पश्यति भानुजस्त्रिदशमे चेत्पाददृष्ट्येतरे
जीवो धीनवमेऽर्द्धया तदितरे भौमश्चतुर्थेऽष्टमे ॥ १८ ॥

वक्री ग्रह का बल उसके शीघ्र केन्द्र के अंशों के अनुसार होता है। उस बल को चेष्टाबल कहते हैं। जब ग्रह एक ही राशि में एक ही अंश कला पर हों तो उनमें युद्ध समझा जाता है और तब उनमें से जो ग्रह उत्तर अयन में हो वह विजयी समझा जाता है।

शनि अपने स्थान से तृतीय तथा दशम को पूर्ण दृष्टि से और अन्य ग्रह अपने स्थान से तृतीय दशम को $\frac{1}{4}$दृष्टि से देखते हैं। अर्थात् प्रभावित करते हैं। गुरु पंचम नवम को पूर्ण दृष्टि से देखता है।

सर्वे पादविहीनयाखिलदृशा पश्यन्ति सर्वेऽस्तभं
वित्ताय्व्ययवैरिणी न ददृशुः खेटस्थितस्थानतः ।
द्रष्ट्रा शोधितदृश्यकेन्द्रभवशात्तद्वत्फलं स्यादथो
भागेभ्यस्त्वनुपातलब्धकलिकास्वर्ण कतं दृग्भवेत् ॥ १९ ॥

सब, ग्रह अपने स्थान से पञ्चम नवम को अर्द्ध दृष्टि से देखते हैं। मंगल चतुर्थ तथा अष्टम पर पर्ण दृ‍ष्टि डालता है। अन्य ग्रह अपने स्थान से चतुर्थ तथा अष्टम पर $\frac{1}{4}$दृष्टि से देखते हैं। सभी ग्रह अपने स्थान से सप्तम भाव को पूर्ण दृष्टि से देखते हैं। अपने स्थान से द्वितीय, एकादश, द्वादश तथा षष्ठ स्थान को ग्रह नहीं देखता।

पाराशर ऋषि ने राहु और केतु की दृष्टिभाव को माना है और कहा है—

"सुतमदननवान्त्ये पूर्णदृष्टिस्तमस्य
युगलदशमगेहे चार्धदृष्टिं वदन्ति ॥

अर्थात् राहु की अपने स्थान से पंचम सप्तम तथा नवम भाव पर (गुरु की भांति) पूर्ण दृष्टि रहती है। अपने से द्वितीय तथा दशम भाव पर इसकी आधी दृष्टि होती है। क्योंकि राहु तथा केतु छाया ग्रह हैं इनका स्वभाव है कि ये जिस ग्रह से प्रभावित हों उस ग्रह का फल

मुख्यतया करते हैं। अतः यदि ये छाया ग्रह पापी ग्रहों से युक्त अथवा दृष्ट हों तो जिस भाव पर इनकी सप्तम, पंचम अथवा नवम दृष्टि पड़ रही होगी उस भाव पर उन क्रूर ग्रहों का भी प्रभाव समझा जाएगा जिनसे ये ग्रह प्रभावित होते हैं। उदाहरणार्थ यदि राहु और मंगल दोनों दशम में हों अथवा राहु दशम में और मंगल तृतीय, चतुर्थ अथवा सप्तम भाव में हो तो राहु की जो दृष्टि कुण्डली के द्वितीय, चतुर्थ तथा छठे भाव पर पड़ रही है उसमें मंगल का क्रूर स्वभाव भी सम्मिलित हुआ समझा जाएगा, मानो इन द्वितीय, चतुर्थ तथा छठे पर मंगल की भी दृष्टि है।

ग्रहों को बल प्रदान करने में अथवा निर्बल करने में एक और भी कारण है जिसका उल्लेख कर देना पाठकों के लिए हितकर होगा। जब कोई ग्रह अपनी दोनों राशियों से अनिष्ट स्थान पर स्थित होता है तो वह उन भावों के लिए भी जिनका वह स्वामी होता है अनिष्टकारी हो जाता है। इस सिद्धांत को **भावार्थ रत्नाकर** के रचयिता ने माना है। उदाहरणार्थ उन्होंने प्रथम अध्याय में लिखा है—

मेषे जातस्य हि गुरुर्लाभस्थानस्थितो भवेत्
गुरोर्दशायां सम्प्राप्तौ अवयोगो भवेद् ध्रुवम् (१।१३)

अर्थात् मेष लग्न का जन्म हो और गुरु लाभ स्थान में स्थित हो तो जब गुरु की दशा आए तो बुरे फल की प्राप्ति हो। अतः हम कह सकते हैं कि—

कन्या लग्न हो और मंगल दशम स्थान में हो तो क्योंकि मगल मेष से तृतीय और वृश्चिक से अष्टम अर्थात् अपनी दोनों राशियों से अनिष्ट स्थान में होता है, यह स्थिति अष्टम और तृतीय आयु स्थानों के लिए हानिकर सिद्ध होगी।

भावार्थ रत्नाकर ही का एक और श्लोक लें—

धनुर्लग्ने तु जातस्य पञ्चमस्थशनेर्दशा।
शुभप्रदा योगदेति वदन्ति विबुधोत्तमाः॥

अर्थात् यदि धनु लग्न हो और शनि पंचम भाव में स्थित हो तो शनि अपनी दशा में शुभ और योगप्रद सिद्ध होगा, ऐसा विद्वान् लोग कहते हैं। धनु वालों के लिए शनि द्वितीयेश और तृतीयेश बनता है। पाराशरीय नियमों के अनुसार शनि द्वितीयाधिपति होने के कारण

अपनी इतर राशि के भाव का फल करेगा। अर्थात् इसको तृतीय स्थान का फल करना चाहिए। तृतीय भाव बुरे भावों में गिना गया है। अतः तृतीयेश होने के नाते शनि को बुरा फल करना चाहिए; परन्तु 'भावार्थ रत्नाकरकार' का कहना है कि ऐसा शनि योग का उत्तम फल देता है। तो फिर समस्या को कैसे सुलझाया जाये। वह ऐसे कि ग्रह मुख्यतया अपनी मूल त्रिकोण राशि का फल करते हैं। शनि यहाँ यद्यपि तृतीय भाव ही का फल करेगा; परन्तु क्योंकि वह तृतीय भाव से तृतीय अर्थात् बुरी स्थिति में बैठा है, इसलिए वह तृतीय भाव के लिए बुरा फल करेगा। तृतीय भाव के लिए बुरा फल करने का अर्थ तो आप जानते ही हैं कि फल अच्छा होगा, क्योंकि बुरे भाव के स्वामी की बुरी स्थिति शुभ फलदायक होती है। परन्तु शुभ ग्रह की बुरी स्थिति अशुभ फल को देने वाली होती है। इस संदर्भ में मेष लग्न पर 'भावार्थ रत्नाकर' का १६वां श्लोक देखिये—

मेषे जातस्य भौमस्तु अष्टमस्थो न योगदः।
रविशुक्रसमायक्तः स्वल्पदश्च भविष्यति॥

अर्थात् मेष लग्न में जन्म हो तो अष्टम स्थान में स्थित मंगल योग का फल नहीं करता। कोई पूछे क्यों जब कि मंगल लग्नेशहै, उत्तर यही है कि यद्यपि मंगल को लग्न का फल करना है जहाँ पर कि इसकी मूल त्रिकोण राशि स्थित है; परन्तु क्योंकि मंगल अपनी इसमूल त्रिकोण राशि से अष्टम जा चुका है, यह लग्न के लिए बुरा फल देने वाला बन गया है। इस प्रकार ग्रहों के शुभाशुभ फल में उनकी अपनी राशियों से अच्छी बुरी स्थिति भी बहुत हद तक कारण है।

एवं क्रूरशुभेक्षणे च गणितात्संलिख्य कोष्ठद्वये
रूपाद्वा हि पृथक् पृथग्युतिभुवो स्यादन्तरं दृग्बलम्॥

दृश्य ग्रह को द्रष्टा ग्रह से घटाओ। उत्तर राशि आदि में दृष्टि का क्षेत्र होगा। इस क्षेत्र के अंशादिकों से दृष्ट ग्रह का दृग्बल ठीक-ठीक अनुपात के नियम से निकाला जा सकता है, जबकि पहले उस राशि का तथा उससे अग्रिम राशि का बल ज्ञात हो। यह दृग्बल शुभ अथवा अशुभ होगा। यदि दृष्ट ग्रह क्रमशः शुभ अथवा अशुभ हो तो किसी ग्रह पर पड़ने वाले शुभ तथा अशुभ दोनों प्रकार के दृष्टि के बलों का अन्तिम योग अथवा ऋणीबल (Algebraic Sum) उस ग्रह का अन्तिम

दृग्बल होगा।

चेष्टाबल का ज्ञान करने के लिए 'अयन बल' जानना आवश्यक है। सूर्य का अयन बल दो गुना कर लें, यही सूर्य का स्पष्ट **चेष्टा बल** है। शेष भौमादि ग्रहों के चेष्टा केन्द्र को षड्भाल्प करें। इस षड्भाल्प चेष्टा केन्द्र को २ से गुणा कर ६ का भाग दें तो शेष कला-विकलात्मक मध्यम चेष्टाबल होगा। चन्द्रमा का पक्ष बल ही मध्यम चेष्टाबल होता है। अब देखिए—

अयन बल + मध्यम चेष्टा बल = स्पष्ट चेष्टा बल।

इसकी विशेष जानकारी श्रीपति पद्धति, मुकुन्द पद्धति आदि से कर लें।[1] अब अन्तिम दृग्बल या दृष्टि-बल को देखिए। जो ग्रह देखे वह 'द्रष्टा' व जो देखा जा रहा हो वह 'दृश्य' ग्रह कहलाता है। इसबल को जानने के लिए ग्रहों का स्पष्ट होना बहुत आवश्यक है। जिस ग्रह की दृष्टि का बल जानना हो तो दृश्य में से द्रष्टा को घटाएं। घटाफल में जो राशि आए, उसके ध्रुवांकान्तर से घटाफल में प्राप्त अंशादिकों को गुणाकर ३० का भाग देना चाहिए। लब्धि को गत ध्रुवांक में से ऋण धन करके ४ का भाग देने से लब्धि दृष्टि होती है। तब शुभ ग्रहों के दृष्टि योग का चौथा हिस्सा पूर्वोक्त पाँच बलों में जोड़ें व पापग्रहों के दृष्टि योग का चौथा हिस्सा पंचबलों में से घटाएं। इसप्रकार षड्बलैक्य प्राप्त हो जाता है। शेष रहने वाली राशियों के ध्रुवांक इस प्रकार हैं—

शेषराशि संख्या	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
ध्रुवांक	०	१	३	२	०	४	३	२	१	०	०	०

निसर्ग बल या नैसर्गिक बल आगे बताया जा रहा है—

अर्केन्द्वासुरपूजितासुरगुरुज्ञारार्कजाः खेचरा-
स्ते स्युर्न्यूनबला यथोत्तरमिदं नैसर्गिकं स्याद्बलम्॥ २०॥
रूपं स्याद्द्युमणेरिलाधरलवोनं स्यात्परेषां क्रमात्
स्थानाशासमयस्वभावजबलैक्यं चेष्टिकेनान्वितम्।
दृग्वीर्येण सुसंस्कृतं यदि जयी खेटश्च रूपान्वितं
भङ्गश्चेद्रहितं रणे स्फुटतरं खेटस्य वीर्यं भवेत्॥ २१॥

---

१. बल-साधन की सरल व सुगम सोदाहरण व्याख्या—आयुर्निर्णय, बलसाधनाधिकार। मँगाने के लिए लिखें।

एवं प्रोक्तबलैक्यमत्र निखिलं रूपाद्यमक्षाल्पकं
चेद्धीनं हि बलं तता दर्शमितात्स्यान्मध्यमं तद्बलम् ।
तत्पश्चात्तु सुपूर्णवीर्यमिह तद्वीर्याधिक स्याच्छुभः
खेटस्तस्य दशाप्यतीव शुभदारोहाखिलेष्टार्थदा ॥२२॥
सा स्यान्मध्यमवीर्यखेचरदशाऽऽरोहाऽपि सौख्यायते
हीना स्यात्त्ववरोहिणी व्यसनदा वीर्योनखेटस्य वा ॥२२$\frac{1}{2}$॥

सूर्य १, चन्द्र ६/७, शुक्र ५/७, गुरु ४/७, बुध ३/७, मंगल २/७, तथा शनि १/७ रूपा नैसर्गिक बल रखता है। अब स्थान, दिक्, काल, निसर्ग तथा चेष्टाबलों का योग करना चाहिए।

उपरोक्त योग में ग्रह का संस्कार किया हुआ दृग्बल जोड़िए। यदि ग्रह युद्ध में विजयी हो (देखिए श्लोक १७) तो एक रूपा और बल उसको मिलता है। यदि उसमें पराजित हो तो एक रूपा बल घटा देना चाहिए। इस प्रकार ग्रह का षड्बल निकल आएगा। यदि यह षड्बल ५ रूपा से कम हो तो ग्रह निर्बल समझना चाहिए। यदि यह १० रूपा तक हो तो उसे मध्यमबली समझना चाहिए।

१० रूपा से अधिक जिस ग्रह का षड्बल हो, वह पूर्ण बली माना जाता है। वह ग्रह शुभ फलदाता होता है।

ऐसे ग्रहों की दशा बहुत शुभ, समस्त मनोरथों को पूर्ण करने वाली, आरोहिणी होती है। मध्यम बली ग्रह की दशा भी सुख देने वाली होती है। बलरहित ग्रह की दशा अवरोहिणी संज्ञक होती है। इस प्रकार की दशा में विपत्तियों का सामना करना पड़ता है अथवा आरोह-अवरोह शब्द का अर्थ इस प्रकार भी माना जा सकता है। आरोही ग्रह वह होता है जो अपने उच्च की ओर बढ़ रहा हो। अवरोही ग्रह वह है जो अपने उच्च से भ्रष्ट होकर नीच की ओर चल पड़ा हो। बली ग्रह यदि आरोही भी हो तो उसकी दशा मनोरथ पूर्ण करने वाली होगी। मध्यम बली ग्रह भी यदि आरोही हो तो दशा में सुख देगा। हीन बली व अवरोही ग्रह की दशा तो निश्चय से मुसीबतें खड़ी करने वाली होगी।

आयुर्दाय खण्ड

: ३ :

कितने वर्ष का जीवन है : भावी जन्म के
पाप-पुण्य का ज्ञान : अल्पायु योग :

अल्पायु योग के अपवाद

अंशायु ज्ञान—

दस्रात् खेचरभुक्तभं त्रिविहृतं त्याज्यं फलं शेषकं
वेदघ्नं खगमुक्तपादसहितं चांशायुषो वत्सराः।
खेटस्थैष्यपादान्तराद्दिनघटीमानात्तु मासादिकं
ह्यानीयाखिलखेचरेश्च तनुतः सर्वैक्यमब्दादिकम्॥ १॥

प्रत्येक ग्रह के नक्षत्र को अश्विनी से गिनो। भुक्त नक्षत्र संख्या को तीन से विभक्त करो। जो शेष बचे उसको ४ से गुणा करो और उसमें वह नक्षत्र पाद जोड़ो जो ग्रहाधिष्ठित नक्षत्र में गुजर चुके हैं। उत्तर वह नवांश संख्या होगी जो कि ग्रह मेष नवांश से चल चुका है। और यह उत्तर उस ग्रह के वर्ष होंगे। ग्रह जिस नक्षत्र पाद में है उसके मास, दिन आदि को ग्रह के नक्षत्र में गति द्वारा ज्ञात करो और उनको पूर्व आए वर्षों में युक्त करो तो ग्रहों के अंशायुर्दाय में दिए वर्ष आदि निकल आयेंगे। इस प्रकार ग्रहों तथा लग्न से प्राप्त वर्षों आदि को जोड़ो।

टिप्पणी—मान लीजिये कि किसी व्यक्ति के लग्न तथा ग्रहों का स्पष्ट निम्न प्रकार से है—

ग्रहादि	स्पष्ट		
	राशि	अंश	कला
लग्न	३	१०	१५
सूर्य	३	२२	१३
चन्द्र	७	२४	३४
मंगल	३	२७	५
बुध	३	६	१०
गुरु	३	२६	५४

ग्रहादि	स्पष्ट		
	राशि	अंश	कला
शुक्र	२	१५	६
शनि	११	१७	२२
राहु	२	२०	१३
केतु	८	१०	१३

अब समझिए कि अशांयु का साधन किस प्रकार किया जाएगा। ध्यान रखिए, हर एक ग्रह की अंशायु अलग-अलग निकाली जाएगी। जिस ग्रह की अंशायु निकालनी है उसी के स्पष्ट राश्यादि को रखिए। देखिए कि वह ग्रह किस नवांश में है। नवांश राशि के तुल्य वर्षों को लीजिए। शेष अंश कला आदि को देखिए। एक नवांश में ३ अंश व २० कला अर्थात् कुल २०० कलाएं होती हैं। नवांश की कितनी कलाएं बीत चुकी हैं, इसे देखिए और तदनुसार त्रैराशिक से मास दिन निकाल लीजिए। उक्त उदाहरण में सूर्य स्पष्ट ३. २२°. १३′. ००″ है। सूर्य मकर के नवांश में है। अतः मकर के १० वर्ष रख लिए। इस नवांश में सूर्य २ अंश १३ कला चल चुका है। कारण यह है कि पिछला नवांश २० अंश पर समाप्त हुआ है। अतः १३३ कला चल चुका है। देखिए—

२०० कला की आयु १ वर्ष

१ ,, ,, $\frac{१}{२००}$ वर्ष

१३३ ,, ,, $\frac{१ \times १३३}{२००}$ = ७ मास २९ दिन

अतः १० वर्ष ७ मास २९ दिन सूर्य की अंशायु या नवांशायु है। इसी तरह और ग्रहों की भी अंशायु लेनी चाहिए।

अंशायुर्दाय का शोधन—

स्वायुः स्वेन्दुकराग्निवेदशरषड्भागोनितं रिःफभा-
द्वामं षट्सु खले शुभे यदि दलोनं पापलग्नेऽखिलम्।
नीचारातिगृहे खगेऽस्तमयगे द्वित्रिद्विभागोनितं
द्व्यंशोनं हि पराभवे पुनरपि स्यादंशजायुस्त्विदम् ॥२॥

यदि सप्तम से लेकर द्वादश भाव तक कहीं पापी ग्रह हों तो द्वादश आदि में होने से क्रमशः ग्रह के दिए सारे वर्ष, उसके आधे, तीन भाग, चतुर्थ भाग, पञ्चम भाग तथा षष्ठ भाग घटा देने चाहियें। यदि शुभ ग्रह इन द्वादश से षष्ठ भावों में हों तो इनके दिए वर्षों में से उसका आधा घटाओ जो पापी ग्रह का घटाते। यदि लग्न में पापी ग्रह हो तो लग्न प्रदत्त सब वर्ष कम कर देने चाहिएं। ग्रह यदि नीच हो, शत्रु राशि में स्थित हो तो उस ग्रह प्रदत्त आयु में से क्रमशः उसका आधा तथा तृतीय भाग घटाना चाहिए। जब ग्रह सूर्य के साथ अस्त हो अथवा ग्रह युद्ध में पराजित हो तो उसके वर्षों का आधा कम कर देना चाहिए। अंशायुर्दाय निकालने की यही विधि है।

पहले श्लोक में बताई गई विधि से अंशायु के वर्षादि जानने के बाद आवश्यक है कि हम उसमें कुछ जरूरी संशोधन करें। ये ही संशोधन इस श्लोक में बताए गए हैं। इस श्लोक में जो प्रक्रिया बताई गई है वह आयुर्दाय के विषय में 'व्ययादिहरण' के नाम से प्रसिद्ध है। प्रथम से षष्ठ भाव तक दाहिना अर्ध भाग व सप्तम से द्वादश तक बायां अर्ध भाग कुण्डली में माना जाता है। इसे ही क्रमशः दक्षिणषट्क व वाम-षटक भी कहते हैं। इस वामषट्क में ग्रहों की स्थिति पर नवांशायु या अंशायु के वर्षों में से अर्थात् उस ग्रह के नवांशायु वर्षों में से निम्न-लिखित प्रकार से संशोधन कर लेना चाहिए, अर्थात् निर्दिष्ट भाव में ग्रह होने पर शुरू या पाप के अनुसार बताए भाव को पहले प्राप्त आयु में से घटा लेना चाहिए।

भाव ग्रह	पाप ग्रह	शुभ ग्रह
१२	$\frac{१}{१}$	$\frac{१}{२}$
११	$\frac{१}{२}$	$\frac{१}{४}$
१०	$\frac{१}{३}$	$\frac{१}{८}$

भाव ग्रह	पाप ग्रह	शुभ ग्रह
९	$\frac{१}{४}$	$\frac{१}{८}$
८	$\frac{१}{५}$	$\frac{१}{१०}$
७	$\frac{१}{६}$	$\frac{१}{१२}$

इस प्रसंग में ध्यान रखिए कि यहां सूर्य, मंगल व शनि ही केवल पाप हैं। शेष सब ग्रह प्रत्येक अवस्था में शुभ हैं। चाहे बुध पाप युक्त हो या चन्द्रमा क्षीण ही क्यों न हो, वह शुभ ही होगा। यदि एक स्थान में कई ग्रह हों तो सर्वाधिक बली का ही संशोधन कीजिए, सब ग्रहों का नहीं। यह **व्ययादिहरण** हुआ।

अब देखिए, लग्न में कोई पाप ग्रह है या नहीं ? यदि लग्न में पाप ग्रह होगा तो शोधन इस प्रकार करें—

१. लग्न में जितने नवांश बीत चुके हों उन्हें गुणक मानिए।

ग्रहों की आयु को गुण्य मानिए। अब दोनों के गुणन फल को १०८ से भाग दें। लब्धि को आयु में से कम कर लीजिए।

$$\frac{\text{लग्न व्यतीत नवांश क्रम संख्या} \times \text{नवांशायु}}{१०८} \times \text{हानि वर्षादि}$$

२. यदि लग्न में क्रूर ग्रह हो तो यह शोधन करें। यदि लग्न में क्रूर ग्रह न हो तो इस शोधन को न करें। इसे **'क्रूरोदयहरण'** कहते हैं। क्रूर अर्थात् क्रूर ग्रह उदय अर्थात् लग्न में हो तो किया जाने वाला हरण अर्थात् हानि। उक्त को हानि लग्न सहित सभी ग्रहों की नवांशायु के वर्षों में से अलग-अलग घटाना चाहिए।

३. यदि लग्न स्थित क्रूर ग्रह को शुभ ग्रह (एक या अधिक) देखते हों तो लब्धि का आधा ही घटाएं। यदि लग्न में कई क्रूर ग्रह हों तो भी एक बार ही शोधन होगा। यह तो प्रसिद्ध क्रूरोदयहरण बताया गया है। अब ग्रन्थकार ने श्लोक में बताया है कि लग्न में क्रूर ग्रह होने पर केवल लग्न की अंशायु का ही सारा हरण होगा। हमें यह मत मान्य नहीं है। क्रूर ग्रह केवल सूर्य, शनि व मंगल ही माने जायेंगे। एक बात और ध्यान में रखिए—यदि लग्न में क्रूर ग्रह स्वगृही हो तो यह हानि करना युक्तियुक्त नहीं है। ऐसा मत **केशवीय पद्धति** में बताया गया है,

जो हमें सही प्रतीत होता है।[1]

४. यदि कोई ग्रह परम नीच में हो तो उसके आयु वर्षों को आधा कर लीजिए। यदि ग्रह परम उच्च में है तो सम्पूर्ण आयु वर्ष लेंगे। यदि बीच में ग्रह हो तो अनुपात विधि अपनाएं।

५. यदि ग्रह शत्रु राशि में हो तो $\frac{1}{3}$ भाग घाट लें।

६. यदि ग्रह अस्त हो या युद्ध में पराजित हो तो आधा शोधन करें।

समान अंश व काल वाले दो ग्रहों में युद्ध होता है। युद्ध केवल तारा ग्रहों (मंगल से शनि तक) में ही होता है। इनमें से जो ग्रह शुद्ध किरणों वाला व ज्यादा चमकीला हो और उत्तर की ओर स्थित हो वह विजयी होता है तथा दूसरा पराजित।

लग्नायुर्दाय का विचार—

लग्ने भुक्तविनाडिका नवगुणास्तन्मानभक्ताः फलं
वर्षाणि स्वगुणैर्हरैरपि तथा तन्मासघस्रादिकम्।
लग्ने शोभनखेचरेक्षितयुते स्वस्वामियुक्तेक्षिते
तुङ्गे स्वामिनि राशिसम्मितसमाश्चेत्यूचुरेके बुधाः॥३॥

लग्नायुर्दाय के सम्बन्ध में लिखते हैं। लग्न राशि के स्वोदय मान म से जितनी घड़ी, पल, लग्न व्यतीत हो चुके हों उन घड़ी पलों को ९ से गुणा कर राशिमान की घड़ियों से भाग देने से जो उत्तर आये वह लग्न प्रदत्त आयु के वर्ष आदि होंगे। जब लग्न अपने स्वामी से युक्त होने अथवा दृष्ट होने अथवा शुभ ग्रह से युक्त अथवा दृष्ट होने अथवा लग्नेश के उच्च होने के कारण बलवान् हों तो लग्नेश स्थित राशि की संख्या के अनुसार लग्न के आयु के वर्ष होते हैं, ऐसा विद्वानों का विचार है।

लग्नायु साधन के विषय में एक सरल प्रकार बता रहे हैं। लग्न स्पष्ट लिख लिजिए। बीती हुई राशियों के बराबर संख्या वाले तो वर्ष हैं। शेष अंशादि से अनुपात द्वारा मासादिक जान लें। जैसे, लग्न स्पष्ट

१. आयु के सभी प्रकारों का सोदाहरण विवेचन—देखिये आयुर्निर्णय।

कर्क राशि के २ अंश पर है। तब मिथुन गतराशि तक ३ वर्ष हुए। २ अंशों की प्रक्रिया कैसे होगी, देखिए : ३० अंशों में १२ मास अर्थात् एक वर्ष होता है। अनुपात कीजिए—

३० अंशों की आयु १२ मास

१ ,, ,, $\frac{१२}{३०}$ मास

२ ,, ,, $\frac{१२}{३०}$ × २ = २४ दिन

अर्थात् १ अंश १२ दिनों के बराबर होता है। अतः लग्नायु में ३ वर्ष २४ दिन जोड़े जाएंगे।

लग्नायु के विषय में विवाद है। जो सरल प्रकार अंशायु निकालने की विधि में पहले बता चुके हैं उससे लग्नायु अर्थात् लग्न प्रदत्त आयु जान लीजिए। उस लग्नायु में उक्त ३ वर्ष २४ दिन भी जोड़ लें। यह स्पष्ट लग्नायु होगी। यह लग्नायु सभी आयु प्रकारों में ग्रहण की जाएगी। यदि निसर्गायु बना रहे हों तो सब ग्रहों की निसर्गायु म इसे जोड़ें। यदि पिण्डायु बना रहे हों तो इसे पिण्डायु में जोड़ें। यह लग्नायु पृथक् आयु प्रकार न होकर अन्य आयु प्रकारों का अंश है। लग्नायु में कितने वर्ष जोड़ने होंगे, इस विषय में एक मत तो ऊपर बताया जा चुका है। दूसरा मत भी प्रचलित है। लग्न के अंशों की कला बनाकर २०० से भाग दें तो लब्धि वर्षादिक को जोड़ें। दोनों प्रकारों से नतीजे अलग भी आ सकते हैं। अतः कोई एक प्रकार अपना लें। ग्रन्थकार पहले प्रकार को सम्भवतः महत्त्व देते हैं। क्योंकि श्लोक के अन्तिम चरणों में इसी मत को बताया गया है।

द्रेष्काण से त्रिकाल का फल—

प्राक्प्रत्यक्तनुभागतस्त्रिभिरपि द्रेक्काणकैस्तद्भपैः
प्राग्वद्वर्गजवीर्यमब्धिविहतं पुण्यं हि रूपादिकम्।
तद्वेदच्युतमत्र पापमिति तल्लेख्यं तयोरन्तरं
पुण्यं रूपचतुष्टयं यदि भवेन्मुक्तिर्ह्य सच्चेदसत् ॥४॥

लग्नगत द्रेष्काण, उससे पूर्व तथा आगामी, इन तीन द्रेष्काणों के स्वामियों का पूर्ववत् सप्तवर्ग का बल निकालो और उसको ४ से विभक्त करो, फल पुण्य 'रूपा' होंगे। उस पुण्य को चार में से घटाने पर पाप की मात्रा रूपा में निकल आयेगी। यदि पुण्य और पाप के रूपा के बल का अन्तर चार रूपा हो तो मनुष्य मुक्ति को प्राप्त होता है।

प्रागुक्ताच्छुभपापवर्गगणिताद्द्रेक्काणपैः साधिता
संख्या क्रूरभवा खनेत्रविधुभिर्गुण्या नगाप्ताः समाः।
शुद्धाः खाश्विसुधाकरैरपि भवेदायुर्हि जन्मत्रये
संवादार्थमिहैव तल्लघुतरं प्रोक्तं नवांशायुषः ॥५॥

उपरोक्त तीन द्रेष्काणों के सप्तवर्ग का बल निकालते समय जो पाप वर्गों से उत्पन्न बल है उसको पृथक्-पृथक् १२० से गुणा कर ७ से भाग दो। फल वर्ष होंगे। उनमें से १२० जितनी बार निकल सकें निकाल दो। शेष गत, वर्तमान तथा आगामी जन्म के आयु के वर्ष होंगे। नवांशायु विधि से लघु होने के कारण संवादार्थ आयुर्दाय की यह विधि लिखी है।

यहाँ द्रेष्काण के द्वारा पुण्य व पाप भाग जानने का विलक्षण प्रकार बताया जा रहा है। सप्तवर्ग बल निकालना बता चुके हैं। बल को ४ से भाग देने पर लब्धि 'पुण्य' होगी। पुण्य को चार में से घटाने पर 'पाप' होगी। इसी पाप पुण्य के आधार पर मनुष्य की सत् या असत् गति का अनुमान किया गया है।

अब इसी से एक सरल तरीका आयु जानने के लिए भी बता रहे हैं। लग्न में विद्यमान द्रेष्काण सहित अगले व पिछले द्रेष्काणों के अधियों का बल जाना जा सकता है। इनमें से जो पाप भाग श्लोक ४ में बताया गया, उसे १२० से गुणा करें। फिर गुणन फल को ७ से भाग दें। लब्धि वर्ष है। यदि लब्धि १२० से अधिक है, तो उसमें से जितने बार १२० घट सकता हो, घटा लें। शेष आयु के वर्ष माने जाएंगे। यह आयु साधन का प्रकार अंशायुर्दाय से सरल है, अतः सुविधार्थ यहाँ बताया गया है।

ग्रहयोगों से आयु का ज्ञान—

केन्द्रे कोणगृहे स्थिताः कविगुरुज्ञाः पूर्णमायुर्भवे-
न्मध्यायुष्यमथो धने च सहजे लाभे दिशन्ति स्थिताः ।
षष्ठे चाष्टमभे व्ययाख्यभवने स्वल्पायुरन्ये खलाः
केन्द्राष्टव्ययकोणगा न शुभदा जातस्य पुंसः सदा ॥६॥

शुक्र, गुरु तथा बुध यदि केन्द्र या त्रिकोण में स्थित हों तो पूर्ण; द्वितीय, तृतीय अथवा एकादश भाव में हों तो मध्यम तथा षष्ठ, अष्टम अथवा द्वादश भाव में हों तो अल्पायु देते हैं। पापी ग्रह केन्द्र त्रिकोण, अष्टम तथा द्वादश भाव में आयु के सम्बन्ध में शुभ फल नहीं देते।

श्लोक के अन्तिम भाग से लगता है कि पापी ग्रह ग्रन्थ कर्त्ता की सम्मति में द्वितीय, तृतीय षष्ठ तथा एकादश भाव में आयु के सम्बन्ध में शुभ होते हैं। हमारी सम्मति में द्वितीय भाव में स्थित पापी ग्रह प्रायः आयु की हानि करता है। क्योंकि इसकी दृष्टि आयु स्थान अष्टम पर पड़ती है। हाँ, शनि की द्वितीय स्थान में स्थिति अपवाद हो सकती है क्योंकि शनि आयुष्यकारक है।

लग्नेशे न निरीक्षिते सति तथा केन्द्रत्रिकोणस्थितै-
र्लग्नेशस्थितराशिनेतरि पुनर्लग्ने न दृष्ट शुभैः।
अल्पायुःसुतदारबुद्धिरहितो जातो भवेदन्यथा
दीर्घायुर्बहुभाग्यवान् धनमतिर्नित्यं भवेत्कीर्तिमान् ॥७॥

यदि केन्द्र तथा त्रिकोण में स्थित शुभ (और इसी लिये बलवान्) ग्रहों द्वारा लग्नाधिपति दृष्ट न हो और जब लग्न अथवा लग्नेशाधिष्ठित राशि का स्वामी शुभ ग्रहों से दृष्ट न हो तो मनुष्य की आयु अल्प होती है। वह पुत्र, स्त्री तथा बुद्धि से रहित होता है। और यदि इसके विरुद्ध हो तो मनुष्य दीर्घायु तथा महान् भाग्य वाला, सुबुद्धि तथा महा-यश युक्त होता है।

रन्ध्राधीशनिरीक्षिते स्फुटतरे लग्नेऽब्जलग्नेऽथवा।
जन्मेन्द्वष्टमलग्नपे रविभुवा भूजेन वा वीक्षिते ॥
लग्नेशादि न वीक्षितं शुभकरैः खेटैर्भवेज्जातको।
मार्कण्डेयसमायुरप्यतितरामल्पायुषश्चास्पदः ॥८॥

यदि लग्न अथवा चन्द्र लग्न अष्टमेश से दृष्ट हो, अथवा लग्न से अथवा चन्द्र लग्न से अष्टमेश को शनि अथवा मंगल देखता हो तथा

लग्नेश, चन्द्राधिष्ठित राशि का स्वामी अथवा लग्नेशाधिष्ठित राशि का स्वामी यदि शुभ ग्रहों द्वारा दृष्ट न हो तो जातक चाहे मार्कण्डेय ही क्यों न हो, बहुत अल्प आयु को प्राप्त होता है।

'आयु' का निर्णय एक परम आवश्यक विषय है। सब बातों से पहले इसी बात का निर्णय ज्योतिषी को करना उचित है। क्योंकि यदि किसी की आयु ही नहीं है तो राजयोग आदि का सुख सब व्यर्थ हो जाते हैं।

शास्त्रों के अवलोकन से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि आयु को दीर्घ अथवा स्वल्प करने वाले निम्नलिखित अंग हैं—

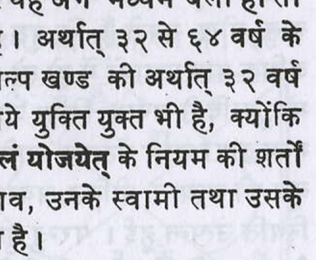
(क) लग्न तथा लग्नेश (ग) तृतीय तथा तृतीयेश

(ख) अष्टम तथा अष्टमेश (घ) आयुष्य कारक शनि

यदि उपरोक्त अंग बहुत बलवान हों तो मनुष्य की आयु दीर्घ अर्थात् ६४ वर्ष से ऊपर की होती है। यदि यह अंग मध्यम बली हों तो मनुष्य की आयु मध्यम खण्ड में पड़ती है। अर्थात् ३२ से ६४ वर्ष के बीच की होती है और यदि निर्बल हों तो अल्प खण्ड की अर्थात् ३२ वर्ष से कम होती है। उपरोक्त विवेचन इसलिये युक्ति युक्त भी है, क्योंकि **भावाद् भावपतेश्च कारकवशात् तत्तत् फलं योजयेत्** के नियम की शर्तों को पूर्ण करती है। क्योंकि इसमें आयु के भाव, उनके स्वामी तथा उसके कारक अर्थात् शनि का विवेचन सम्मिलित है।

इसी सिद्धान्त का अनुसरण करते हुए हम आगे की कुण्डली पर उदाहरण रूप में विचार करेंगे, जिनमें व्यक्तियों की स्वल्प आयु रही है। यह कुण्डली एक लड़के की है जिसकी मृत्यु ६ वर्ष की आयु में पेट के अकस्मात् कष्ट के कारण हो गई।

इस कुण्डली में लग्नाधिपति मंगल तथा अष्टमाधिपति बुध पर पूर्ण चन्द्र की दृष्टि है और लग्न पर उच्च गुरु की दृष्टि है। इन शुभ प्रभावों के होते हुए भी लड़का अधिक आयु न पा सका। इस लड़के की कुण्डली अरुण संहिता में पढ़ी गई थी जबकि इसकी आयु ३ अथवा ४ वर्ष की थी। उसमें लिखा था कि लड़के को ७ वर्ष की आयु में मृत्यु का

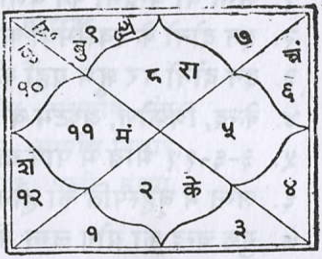


भय है। इसके पिता को चाहिये कि ६ वर्ष की आयु से पहले-पहले अमुक सूर्य बीज मन्त्र का जाप कर ले, नहीं तो मृत्यु अवश्य होगी। परन्तु खेद है कि पिता ने उक्त उपाय नहीं किया और लड़के की मृत्यु हो गई। अब प्रश्न यह है कि उपरोक्त शुभ योगों के रहते हुए भी बालक ने क्यों इतनी थोड़ी आयु पाई।

इसका उत्तर बुध की स्थिति है। बुध इस कुण्डली में अष्टमेश होने के कारण आयु का प्रतिनिधित्व करता है। यह तो आप जानते हैं कि प्रभाव ग्रहण करने में अन्य ग्रहों की अपेक्षा बुध का नम्बर पहला है। अत: बुध पर जो राहु और शनि का पाप मध्यत्व है और सूर्य की युति है उसके कारण बहुत पीड़ित हो रहा है। इसके अतिरिक्त बुध पर उसके शत्रु मंगल की भी युति है। इस प्रकार तीन-चार पाप प्रभावों में बुध पड़ा हुआ है। इन पाप प्रभावों का फल इतना अधिक हुआ कि बुध पर चन्द्र की दृष्टि का प्रभाव भी निष्फल रहा। इस कुण्डली से हम यह बात सीख सकते हैं कि बुध यदि अष्टमेश होकर तीन अथवा तीन से अधिक पाप प्रभावों में हो तो आयु को शीघ्र समाप्त करता है। हाँ, यदि मंत्र आदि से उपाय किया जाये और बुध पर पड़ने वाली शुभ दृष्टि से मन्त्र द्वारा लाभ उठाया जाये तो बात दूसरी है। आप कहेंगे, माना कि बुध की अत्यन्त पीड़ित अवस्था के कारण यह आयु सम्बन्धी अनिष्ट स्थिति उत्पन्न हुई। परन्तु गुरु की भी तो पूर्ण दृष्टि लग्न पर पड़ रही है। इस दृष्टि ने आयु को दीर्घ क्यों नहीं किया। आपका कहना बिल्कुल ठीक है, परन्तु गुरु तब सहायक हो जबकि गुरु में शक्ति हो। यहाँ गुरु नवम स्थान में होते हुए और उच्च राशि का होते हुए भी निर्बल है। यह हमारा निवेदन है। इसका कारण यह है कि गुरु स्वयं अत्यन्त पापदृष्ट है। देखिये, गुरु पर एक ऐसे शनि की दृष्टि पड़ रही है जोकि तृतीय स्थान में स्वक्षेत्री होने के कारण अति बलवान है। इतना ही नहीं, शनि एक ऐसी राशि का स्वामी है जिसमें सूर्य, मंगल तथा बुध तीन पाप ग्रह स्थित हैं। अत: शनि की दृष्टि में जहाँ इसका अपना क्रूरत्व सम्मिलित है, वहाँ इसमें सूर्य, मंगल आदि का पापत्व भी मिला हुआ है। इस प्रकार मानो गुरु पर चार पाप ग्रहों की दृष्टि है। इसके अतिरिक्त गुरु पर एक और ग्रह राहु की भी पञ्चम पूर्ण दृष्टि है। यही कारण है कि गुरु मोटी दृष्टि से बलवान् दिखाई देता हुआ भी वास्तव में निर्बल है और इस

लिये इसको लग्न पर दृष्टि लग्न को कोई लाभ नही पहुंचा रही। कहने का भाव यह है कि आयु होते हुए भी बुध के प्रबल पाप-प्रभावों में आने के कारण बालक को स्वल्प आयु की प्राप्ति हुई। एक दूसरी बात जिस की ओर हम पाठकों का ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं, यह है कि इस कुण्डली में लग्नाधिपति मंगल निर्बल है। मंगल की निर्बलता का पहला कारण तो यह है कि वह शत्रु राशि में है। दूसरा कारण यह है कि सूर्य के साथ है। तीसरा कारण यह है कि मंगल पर राहु तथा शनि का पाप मध्यत्व है। चतुर्थ कारण यह है कि स्थान विशेष के कारण भी मंगल को दुर्बलता की प्राप्ति होती है। मंगल को दशम स्थान में 'दिक्' बल की प्राप्ति होती है और दशम से सप्तम अर्थात् चतुर्थ भाव में मंगल 'दिक्' बल शून्य हो जाता है। मंगल के साथ बुध का योग केतु-अधिष्ठित राशि के स्वामी का योग होने के कारण एक पापी ग्रह का योग समझना चाहिये।

इस संदर्भ में एक और लड़के की कुण्डली का उदाहरण लें। इस बालक की मृत्यु १२ वर्ष की आयु में हो गई। यहां भी लग्नेश मंगल चतुर्थ भाव में दिक्बल से शून्य होकर शत्रु राशि में स्थित है उस पर राहु का केन्द्रीय प्रभाव भी है और इस पर किसी शुभ ग्रह की दृष्टि भी नहीं। यही मंगल क्योंकि चन्द्र



लग्न से अष्टमेश बनता है, अतः इसकी निर्बलता आयु के लिये और भी हानिकारक है। अष्टम भाव पर शनि का केन्द्रीय प्रभाव है और शनि मंगल अधिष्ठित राशि का स्वामी है। अतः शनि के प्रभाव में मंगल का प्रभाव भी सम्मिलित है। उसी मंगल अधिष्ठित राशि के स्वामी शनि की पूर्ण दृष्टि अष्टमाधिपति बुध पर भी रही है जो सूर्य के तथा केतु अधिष्ठित राशि के स्वामी शुक्र के साथ है। अतः बुध पर, अष्टम भाव पर, लग्नेश पर पाप प्रभाव है और केन्द्रों में पापी ग्रह विद्यमान हैं। केन्द्रों में पाप ग्रहों की स्थिति केन्द्रों को निर्बल करती है। यह सिद्धान्त सर्व-सम्मत है। यदि और विस्तृत दृष्टि से विचार करें तो बुध क्योंकि चन्द्र लग्न का स्वामी है, पाप प्रभाव में है, अतः चन्द्र लग्न निर्बल हो गया।

इसी प्रकार शनि की दृष्टि के कारण सूर्य लग्न भी निर्बल है। उधर सूर्य लग्न का स्वामी गुरु भी नीच राशि में स्थित है, सूर्य और मंगल के पाप मध्यत्व में है तथा केतु से दृष्ट है। इस प्रकार सब लग्न तथा उनके स्वामी निर्बल हैं। यहाँ भी अल्प आयु में मृत्यु का मुख्य कारण बुध का अष्टमेश रूप से पीड़ित होना है।

आयु के विचार के विषय में यहाँ संक्षेप में दीर्घायु व अल्पायु के योगों की बात की गई है। यहाँ पाठकों के लाभार्थ हम **प्रश्न मार्ग** में बताए गए कुछ खास योगों की ओर ध्यान आकृष्ट कराना चाहते हैं :—

१. लग्नेश यदि सूर्य का मित्र, सम या शत्रु हो तो क्रमशः दीर्घायु, मध्य व अल्प आयु होती है।
२. चन्द्र नवांश से ६४वें नवांश का स्वामी यदि चन्द्र नवांशेश का मित्र, सम या शत्रु हो तो क्रमशः दीर्घ, मध्य व अल्प आयु होती है।

इन परिस्थितियों में आयु वृद्धि को बल मिलता है—

१. लग्न या चन्द्रमा का बली होना।
२. इन दोनों के स्वामियों का शुभ ग्रहों के साथ होना।
३. इन दोनों पर शुभ ग्रहों की दृष्टि।
४. केन्द्र, त्रिकोण, अष्टम व द्वितीय भावों में शुभ ग्रह।
५. ३-६-११ भाव में पाप ग्रह।
६. लग्न में बृहस्पति का होना।
७. गुरु चन्द्र का योग लग्न में होना।
८. लग्नेश केन्द्रगत हो।
९. जन्म राशीश केन्द्र में हो।
१०. लग्नेश व राशीश का बलवान् होना।
११. लग्नेश व राशीश का एकादश स्थान में बैठना।

इन योगों में आयु को हानि पहुंचती है—

१. चन्द्र व लग्न की निर्बलता।
२. इन दोनों पर पाप दृष्टि।
३. लग्नेश व चन्द्रेश का अस्त होना।
४. इनकी ६-८-१२ भाव में स्थिति।
५. लग्नेश व चन्द्रेश की निर्बलता।

६. लग्न या चन्द्रमा का मृत्यु संज्ञक अंशों में होना। लग्न के मृत्यु भाग राशि क्रम से ये हैं—१, ६, २२, २१, २५, २, ४, २३, १८, २०, २४, १०।

७. मृत्यु भाग गत चन्द्र की केन्द्र या अष्टम में स्थिति। चन्द्र के मृत्यु भाग राशि क्रम से इस प्रकार हैं—

२६, १२, १३, २५, २४, ११, २६, १४, १३, २५, ५, १२।

८. चन्द्रमा की ६-८ स्थानों में ग्रह दृष्ट होकर स्थिति।

९. वक्री व पापी ग्रहों से दृष्ट शुभ ग्रहों की ६-८ भावों में स्थिति।

१०. केन्द्र, त्रिकोण व अष्टम में पाप ग्रहों का होना।

दोनों प्रकार के मिले जुले योगों की समन्वित स्थिति होने पर मध्यायु समझनी चाहिए।

ग्रहभाव फल खण्ड

: ४ :

राजयोग, विपरीत राजयोग, राजयोग भंग, चक्रवर्ती योग, भावों का फल, सम्पत्ति विचार, भाई कितने, सन्तान का अभाव, पत्नी संख्या, पत्नी कैसी होगी ?

राजयोगों का कथन—

स्वोच्चस्वर्क्षसुहृत्त्रिकोणगृहगाः केन्द्रोत्तमांशान्विताः
सौम्यैरीक्षितयुक्तमध्यमगताः मूलत्रिकोणाश्रिताः।
भावारोहणखेचराः शुभकराः केन्द्रत्रिकोणाधिपाः
सम्बन्धेन परस्परं सुयशसं कुर्वन्ति राजोत्तमम् ॥१॥

अपनी उच्च राशि में, अपनी राशि में, अपने मित्र की राशि में, त्रिकोण भाव में, केन्द्र में, वर्गोत्तमांश में, शुभ ग्रहों से दृष्ट, शुभ ग्रहों से युक्त, शुभ ग्रहों के मध्य में स्थित, अपनी मूल त्रिकोण राशि में, जो भाव मध्य के समीप हों, ऐसे सब ग्रह शुभ फल देते हैं। केन्द्र तथा त्रिकोण के

स्वामी यदि ग्रह दृष्टि, युति व्यत्यय आदि से परस्पर सम्बन्धित हों तो भी उत्तम यश और उत्तम राजयोग के करने वाले होते हैं।

राजयोग भंग—

नीचस्थाश्च पराजितास्त्वरिगताः पापेक्षिताक्रान्तयुङ्
मध्यस्थानगताश्च वक्रविकलस्वर्भानुसंसर्गगाः।
भावान्तस्थितखेचराश्च विबलाः षष्ठाष्टरिःफाधिपाः
केन्द्राधीश्वरकोणपेश्वरयुतास्तद्योगभङ्गप्रदाः ॥ २ ॥

नीच, ग्रह युद्ध में परास्त, शत्रु राशि में, पापी ग्रह से दृष्ट, पाप ग्रहयुक्त, पाप ग्रहों के मध्य स्थित, वक्री ग्रह के साथ स्थित, सूर्य से अस्त हुआ, राहु से युक्त, भाव संधि में स्थित ये सभी ग्रह निर्बल होते हैं। छठे, आठवें अथवा बारहवें भाव के स्वामी ग्रह केन्द्र तथा त्रिकोण के स्वामियों की युति से उत्पन्न शुभता को उनके साथ स्थित होकर भंग करने वाले होते हैं।

टिप्पणी—सूर्य के समीप जितने अंशों से ग्रहों के आने पर वे ग्रह अस्त हुए समझे जाते हैं वे इस प्रकार हैं—

ग्रहों का नाम	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	वक्री बुध	वक्री शुक्र
कालांश	१२	१७	१३	११	९	१५	१२	८

किसी भी भाव का फल विचार करते समय योगकारक ग्रहों को एक स्थान पर लिख लीजिए। फिर देखिए कि वे भावेश, भावकारक अथवा राजयोगादि बनाने वाले ग्रह नीचादि उक्त स्थितियों में तो नहीं हैं। यदि नीचास्तंगतादि होंगे तो उन ग्रहों का फल भग्न हो जाता है, अर्थात् वे ग्रह अपनी शुभ फलता को खो देते हैं।[1]

---

१. भावों के फल विचार की अनूठी विधियां—पढ़ें **भावमंजरी**

नवमेश दशमेश का सम्बन्ध और विशेष राजयोग—

भाग्ये कर्मणि तत्पती निवसतावेकत्र वा व्यत्यये
वान्योन्यर्क्षगतौ निरीक्षणयुतौ तौ राजयोगप्रदौ।
धीजायोदयबन्धुपैश्च सहितौ तत्तद्गृहे वा स्थितौ
सम्पत्सौख्यकरौ तयोर्निधनकल्लाभाधिपत्यं विना॥३॥

नवमेश नवम स्थान में और दशमेश दशम स्थान में हो।
नवमेश दशम में व दशमेश नवम स्थान में स्थित हो।
नवमेश दशमेश की राशि में और दशमेश नवमेश की राशि में हो।
यदि दोनों एक-दूसरे को पूर्ण दृष्टि से देख रहे हों।
इन स्थितियों में ये राजयोग कारक होते हैं।

यदि दशमेश व नवमेश ग्रह ५-७-१-४ भावों के स्वामी ग्रहों के साथ हों या इन उक्त स्थानों में स्थित हों तो मनुष्य को खूब सम्पत्ति व सुख का भोग कराते हैं।

इस योग का विचार करते समय ध्यान रखना चाहिए कि इन नवमेश व दशमेश ग्रहों की दूसरी राशि ग्यारहवें व आठवें भाव में न पड़ रही हो। यदि ऐसा होगा तो उक्त राजयोग का भंग हो जाएगा। जैसे दशम स्थान में मकर राशि होने पर ग्यारहवें भाव में कुम्भ होगी और दोनों का स्वामी शनि ही रहेगा। इसी तरह अष्टम नवम में भी विचार करना आवश्यक है। यदि नवमेश व दशमेश साथ ही अष्टम व एकादश भावों के भी अधिपति होंगे तो राजयोग नहीं बनेगा। यहाँ दशमेश व नवमेश के सम्बन्धों के आधार पर यह योग बताया गया है। अतः ग्रहों के परस्पर सम्बन्ध के विषय में बता रहे हैं—

महर्षि पाराशर ने चार प्रकार का सम्बन्ध माना है : क्षेत्र-सम्बन्ध, दृष्टि-सम्बन्ध, राशीश दृष्टि सम्बन्ध व युति-सम्बन्ध। समझिए—ग्रह यदि एक-दूसरे की राशि में स्थित हों तो पहला सम्बन्ध है। यदि दो ग्रह एक-दूसरे को पूर्णदृष्टि से देखते हों तो दूसरा सम्बन्ध है।

ग्रह जिस राशि में स्थित है, उस राशि का स्वामी यदि पूर्ण दृष्टि से उस ग्रह को देखे तो तीसरा सम्बन्ध है। यदि दो ग्रह एक ही राशि में स्थित हों तो चौथा सम्बन्ध होता है। ये चारों सम्बन्ध उत्तरोत्तर कमजोर होते जाते हैं। अर्थात् जिस क्रम से बताए गए हैं उस क्रम में

सर्वप्रथम प्रोक्त-सम्बन्ध सर्वाधिक बली है। उसके बाद क्रमशः इनकी शक्ति में न्यूनता आती जाती है।

परन्तु **फलदीपिकाकार** ने पाँच प्रकार का सम्बन्ध माना है, इनका कहना है—

राशौ स्थितिर्मिथो योगो दृष्टिकेन्द्रेषु संस्थितिः।
त्रिकोणे वा स्थितिः पञ्च प्रकारो बन्ध ईरितः॥

(अ० १५ श्लोक ३०)

ग्रहों की परस्पर केन्द्र में स्थिति तथा त्रिकोण स्थिति ये दो सम्बन्ध अधिक माने हैं। इनके अतिरिक्त एकत्र योग, राशि व्यत्यय, दृष्टि-सम्बन्ध—इस तरह कुल पाँच प्रकार के सम्बन्ध माने हैं।

उक्त योग का विशेष विचार—

लग्नाद्भाग्यपकर्मपौ यदि तथा तद्भाग्यकर्माधिपौ
मानाद्भाग्यपकर्मपौ वरसमस्वल्पाधिकाराः क्रमात्।
सम्बन्धत्रयसंस्थितौ च सबलावन्योन्यकेन्द्राश्रितौ
लग्नाधीश्वरराशिनायकयुतौ जातो धनी भूपतिः॥४॥

लग्न से नवमेश तथा दशमेश ग्रह यदि परस्पर युति, दृष्टि अथवा व्यत्यय (Exchange) द्वारा परस्पर सम्बन्धित हों और बलवान् होकर एक-दूसरे से केन्द्र (चतुर्थ, सप्तम, दशम) में स्थित हों अथवा लग्नेशाधिष्ठित राशि के स्वामी से युक्त हों तो जातक उत्तम दर्जे का धनी तथा राज्याधिकारी होता है। यदि लग्न से नवम भाव से नवमेश तथा दशमेश उपरोक्त प्रकार से बलवान् हों तो मध्य दर्जे का धनी तथा राज्याधिकारी होता है। यदि लग्न से दशम भाव से नवमेश तथा दशमेश उपरोक्त प्रकार से बलवान् हों तो मनुष्य साधारण धनी तथा राज्याधिकारी होता है।

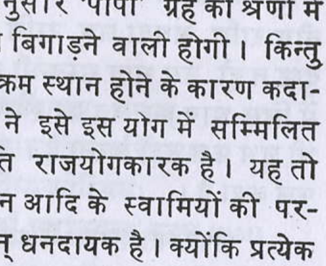
उत्तर कालामृत के प्रसिद्ध 'भावात् भावम्' के सिद्धान्त को यहाँ प्रयुक्त किया गया है। लग्न से नवमेश व दशमेश से तो उक्त योग होता है। साथ ही लग्न से नवम व दशम स्थानों से भी क्रमशः नवमेश व दशमेश ग्रहों के आधार पर बनने वाले राजयोग का उक्त पद्धति से विचार करना चाहिए।

उक्त योग का विस्तार—

राश्यंशोदयपाश्च राज्यशुभपौ धीभ्रातृबन्धवस्तपा-
श्चार्थायिक्षपती च तौ खगवराश्चैकत्र वान्योन्यभे ।
उक्तक्षेषु सुहृत्स्वभाच्चभवनेष्वन्योन्ययुक्तेक्षिता
वृद्धिं वाजिगजादिकान् सुखसुतान्द्रव्यं च दद्युः क्रमात् ॥५॥

यदि (i) चन्द्र लग्न का स्वामी, लग्न नवांश का स्वामी तथा लग्नेश आपस में, अथवा (ii) लग्न से नवम तथा दशम भावों के स्वामी आपस में अथवा (iii) पञ्चम, तृतीय, चतुर्थ तथा सप्तम भावों के स्वामी आपस में अथवा (iv) धनेश तथा लाभेश आपस में युति, दृष्टि अथवा व्यत्यय द्वारा सम्बन्धित हों और निज अथवा मित्र की अथवा उच्चराशि में स्थित हों तो क्रमश: (i) पदोन्नति (ii) हाथी-घोड़े आदि सुख और (iii) सन्तान तथा (iv) पदार्थों के देने वाले होते हैं।

उपरोक्त (iii) में कहा गया है कि पंचम, तृतीय, चतुर्थ भावों के स्वामी परस्पर 'सम्बन्धित' हों तो सुख आदि देते हैं। हमारा विचार है कि तृतीय भाव के स्वामी का समावेश उपयुक्त नहीं, क्योंकि तृतीय भाव का स्वामी पाराशरीय नियमों के अनुसार 'पापी' ग्रह की श्रेणी में आता है। उसको युति तो उलटा योग को बिगाड़ने वाली होगी। किन्तु तृतीय उपचय अर्थात् वृद्धि स्थान व पराक्रम स्थान होने के कारण कदाचित् पराशर के विरुद्ध जाकर ग्रन्थकार ने इसे इस योग में सम्मिलित किया है। नवमेश तथा दशमेश की युति राजयोगकारक है। यह तो अतीव प्रसिद्ध सत्य है। चन्द्रलग्न, सूर्यलग्न आदि के स्वामियों की परस्पर युति भी बहुत वांछनीय है और महान् धनदायक है। क्योंकि प्रत्येक लग्न धनदायक होता है। अत: धनद्योतक दो अंगों की परस्पर युति धन दे; यह उपयुक्त ही है। इसी 'सादृश्य' नियम का अनुसरण करते हुए लाभेश तथा धनेश की युति भी शुभ तथा धनदायक मानी गई है। इस युति का



उदाहरण यहाँ दिया है। यह एक लाखों रुपयों के मालिक की कुण्डली

है। इस कुण्डली में प्रत्येक ग्रह राजयोग बना रहा है। सूर्य पंचमेश (त्रिकोणेश) चन्द्र चतुर्थेश (केन्द्रेश) की युति योगप्रद है। गुरु अपनी राशि मीन को देखता हुआ अपनी इतर राशि को भी बल दे रहा है जिसके फलस्वरूप सूर्य तथा चन्द्र लग्न को और भी बल मिल रहा है। बुध दो अशुभ घरों अर्थात् तृतीय तथा षष्ठ का स्वामी हुआ एक अनिष्ट स्थान (अष्टम) में स्थिर होकर **विपरीत राजयोग बना रहा है।** और प्रस्तुत प्रकरण से सम्बन्धित बात कि लाभ तथा धनेश की युति केन्द्र स्थान में धनप्रद बन रही है। लग्नेश का धनेश लाभेश के साथ सम्मिलित हो जाना इस 'महा' धन योग को और भी अधिक बढ़ा रहा है क्योंकि लग्नेश भी धनेश तथा लाभेश की भाँति धनप्रद है।

भाव के फल का नाश—

नाशस्थानगतो दिवाकरकरैर्लुप्तस्तु यद्राशिपो
नीचारातिगतोऽथवा यदि भवेत्सौम्यैरयुक्तेक्षितः।
तद्भावस्य विनाशनं मुनिगणाः शंसन्ति सौम्यैर्युत-
श्चेत्तत्रापि फलप्रदो न हि तथा तन्वादिभानां क्रमात् ॥६॥

जिस भाव का स्वामी लग्न से अष्टम में हो, सूर्य द्वारा अस्त हो, नीच राशि अथवा शत्रु राशि में स्थित हो, शुभ ग्रहों से युक्त अथवा दृष्ट न हो, उस भाव सम्बन्धी बातों का नाश हो जाता है। ऐसी स्थिति में जिस भाव का वह ग्रह स्वामी हो यदि शुभ ग्रहों से युक्त भी हो तो भी शुभ फल नहीं करता है। इस प्रकार मुनियों ने लग्न आदि भावों का फल कहा है।

उपरोक्त श्लोक में ग्रहों के लग्न से अष्टम बैठने के अनिष्ट फल का कथन है। उक्त सिद्धान्त को हम अन्य सम्बन्धियों पर भी एक ही कुण्डली में लगा सकते हैं। जैसा कि हमने अपने ग्रन्थ **'होरा शतक'** में कहा है—

यस्य जन्मनि खेटस्तु केन्द्रे भावेऽथवा शुभे।
निजराशौ स्वाभावोच्चे स्वभावादष्टमो भवेत् ॥
तत्र दृष्टस्तु पापेन स्वभावेङ्गितमानवम्।
किञ्चित्तज्जीवनं दत्वा पुनस्तज्जीवनं हरेत् ॥

अर्थात् यदि कोई ग्रह अपनी ही राशि में अथवा अपनी उच्च राशि में तथा केन्द्र अथवा शुभ स्थान में स्थित हो, परन्तु निज स्थान से अष्टम में हो और पाप ग्रह से दृष्ट हो तो वह ग्रह जिस भाव का स्वामी होकर अष्टम स्थित हो, उस सम्बन्धी को जन्म देता है। परन्तु उस सम्बन्धी की आयु अल्प ही होती है। उदाहरण के लिए यदि तुला लग्न में जन्म हो और दशम भाव में बृहस्पति स्थित हो, सप्तम भाव में मंगल हो, तो लघु भ्राता का जीवन अल्प होता है, अर्थात् छोटा भाई उत्पन्न तो होता है परन्तु थोड़ी आयु पाता है। यहाँ गुरु केन्द्र में होने के कारण तथा उच्च राशि का होने के कारण तृतीयाधिपति रूप छोटा भाई तो देता है। परन्तु अपने इसी तृतीय स्थान से अष्टम होने के कारण तथा मंगल से दृष्ट होने के कारण उस भाई की आयु स्वल्प होती है।

इसी प्रकार कुम्भ लग्न में जन्म हो, मंगल दशम भाव में स्थित हो और अष्टम भाव में शनि स्थित हो तो भी छोटा भाई उत्पन्न तो होता है परन्तु अल्पायु वाला होता है। यहाँ भी मंगल की केन्द्र में स्वक्षेत्र में स्थिति लघु भ्राता को जन्म देती है। क्योंकि मंगल तृतीय से अष्टम होकर शनि की दृष्टि में जा बैठता है। अत: छोटे भाई को स्वल्प आयु मिलती है।

लग्न के द्रेष्काण से राजयोग—

लग्नस्यादिममध्यमान्तिमयुतो लग्नाधिनाथः क्रमात्
कुर्याद्दण्डपतिं च मण्डलपतिं ग्रामाधिपं तच्छिशुम्।
शुक्रार्येन्दुजवीक्षितश्च सहितश्चेत्सौम्यवर्गस्थितः
स्वोच्चे वाखिलभूमिपालकममुं भूपालवन्द्यं वरम् ॥७॥

लग्नाधिपति यदि लग्न में प्रथम द्रेष्काण में स्थित हो तो मनुष्य को न्यायाधीश बनाता है। यदि द्वितीय द्रेष्काण में हो तो प्रान्त में मुख्य और यदि तृतीय द्रेष्काण में हो तो ग्राम का मुखिया बनाता है। इस प्रकार का लग्न में स्थित लग्नेश यदि शुक्र, गुरु अथवा बुध से युक्त अथवा दृष्ट हो अथवा सौम्य वर्गों (होरा, द्रेष्काण सप्तांश; नवांश आदि) में स्थित हो अथवा उच्च होकर शुभ दृष्टि आदि से बलवान् हो तो मनुष्य को राजाओं का भी पूज्य राजा बनाता है।

चन्द्रमा के राजयोग—

स्वोच्चस्वर्क्षसुहृद्भगः पितृगृहे बन्धौ खभे सप्तमे
वीर्याढ्यो गुरुशुक्रवीक्षणयुतः पूर्णो विधुश्चेत्तदा ।
लग्नात्स्वास्पदगौ कुजार्कितनयौ चैवं स्थिते भोगवान्
सर्वज्ञः सुगुणाकरो जननुतः स स्याद्वदान्यो महान् ॥८॥

चन्द्रमा यदि अपनी उच्च राशि, निज राशि, मित्र राशि में सूर्य से दूर बलवान् होकर गुरु अथवा शुक्र से दृष्ट होकर नवम, चतुर्थ, दशम अथवा सप्तम भाव में स्थित हो और मंगल तथा शनि से द्वितीय अथवा दशम भाव में इसी प्रकार दृष्टि आदि से बलवान् हो तो मनुष्य भोगों से युक्त, सर्वज्ञ, उत्तम गुणों की खान, जन प्रिय, दानी तथा महान् व्यक्ति होता है।

दुष्ट स्थानेश बृहस्पति भी शुभदाता है— (शुक्र राहु का विशेष फल) :

देवाधीशपुरोहितस्य सहजान्त्याधीशतासन्ततं
रन्ध्राधीश्वरताष्टमस्थितिरपि स्याद्योगकृद्देहिनाम् ।
षष्ठस्थः शुभकृत्कविः स्मरगृहज्ञानाय मानस्थितो
राहुर्योगकरस्तृतीयनिलये केतुस्तु योगप्रदः ॥९॥

यदि गुरु तृतीय तथा द्वादश भावों का स्वामी हो अथवा अष्टमेश हो, अथवा अष्टम भाव में स्थित हो तो 'योग' कारी होता है। शुक्र षष्ठ स्थान हो तो शुभ फल करता है। सप्तम, चतुर्थ, नवम, एकादश तथा दशम भाव में स्थित राहु, योग (धन आदि) देता है। इसी प्रकार केतु तृतीय भाव में योगकारक होता है।

१. चन्द्रमा की जिस उत्तम स्थिति का श्लोक में वर्णन किया गया है वह यदि धन भोग आदि दे तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है क्योंकि बीसियों ऐसे प्रमुख योग हैं जो केवल चन्द्रमा के बली होने पर निर्भर करते हैं। चन्द्रमा लग्नवत है और इसीलिए इसका बलवान् होना धन देता ही है। परन्तु श्लोक में जो लिखा है कि मंगल द्वितीय भाव में तथा शनि दशम भाव में होकर बलवान् हो तो भी उपरोक्त फल की प्राप्ति होती है यह बात सिद्धान्त रूप में स्वीकार करना कठिन है। हाँ, किसी स्थिति विशेष में जब मंगल तथा शनि को शुभ आधिपत्य प्राप्त हो और फ़िर वे बली हों तो उक्त फल की प्राप्ति कही जा सकती है।

जैसे कर्क लग्न हो और मंगल द्वितीय भाव में सिंह राशि में गुरु दृष्ट हो तो मंगल और शनि राज योग कारक बन जाते हैं और इसीलिए शुभ दृष्ट होकर धन योग आदि प्रदान करते हैं।

शुक्र के षष्ठ स्थान में होने को 'भावार्थ रत्नाकर' कर्ता ने भी शुभ माना है। उनका कहना है कि—

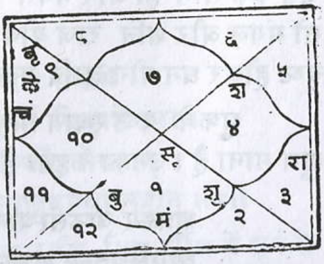
शुक्रस्य षष्ठसंस्थानं योगदं भवति ध्रुवम्।
व्ययस्थितस्य शुक्रस्य यथा योगं वदन्ति हि।।

—अ० १२ श्लोक ४

अर्थात् शुक्र का छठे स्थान में स्थित होना निश्चित रूप से ऐसा ही योगप्रद है जैसा कि इसका द्वादश स्थान में स्थित होना। षष्ठस्थ शुक्र के योगप्रद होने का कारण इस योगात्मक ग्रह को भोग स्थान (द्वादश) पर दृष्टि है। जिसके द्वारा दो भोगद्योतक अंगों (Factors) का परस्पर मेल होकर 'सादृश्य' के सिद्धान्तानुसार भोग अर्थात् धन की उत्पत्ति होती है। इसी प्रकार एक छाया ग्रह (राहु) का धन आदि का फल देना भी युक्तियुक्त ही है। केतु की तृतीय स्थिति शौर्य देगी और राहु के नवम भाव में आ जाने से राहु भाग्य का फल करेगा। गुरु के सम्बन्ध में भी गुरु की अष्टम भाव में स्थिति भोग (१२) धन (२) तथा सुख (४) की वृद्धि करने वाली होगी। गुरु जब अष्टमेश होगा तो या तो यह साथ ही पंचमेश होगा अथवा लाभेश, दोनों स्थितियों में धनकारक ग्रह का पंचमेश तथा लाभेश होना धन के लिए शुभप्रद होगा। परन्तु गुरु द्वादशेश तथा तृतीयेश (मकर लग्न) होकर भी शुभ-प्रद है यह हमको सर्वथा मान्य नहीं है, क्योंकि पाराशरीय नियमों के अनुसार गुरु द्वादशेश होने से तृतीय भाव का फल करेगा। और तृतीयेश होना अशुभ माना गया है। सम्भवतया गुरु ऐसी स्थिति में विशेषतया धन के सम्बन्ध में अनिष्टकारी न हो, क्योंकि तृतीय स्थान एक उपचय अर्थात् आय का स्थान है और धनकारक का एक आय भाव का स्वामी होना आय की वृद्धि करेगा।

२. केतु किस प्रकार तृतीय भाव में स्थित होकर 'शौर्य' देता है इसका उदाहरण हिटलर की कुण्डली है। यहाँ केतु तृतीय भाव में भी है। शुभ राशि में दो शुभ एवं बलवान् ग्रहों का साथ भी है, अतः

तृतीय भाव सम्बन्धो तथा निजकारकत्व सम्बन्धी गुण अर्थात् शौर्य देता है। स्मरण रहे, केतु कुजवत् फलकर्ता है। अतः शौर्य गुण की उपयुक्तता है।



३. यद्यपि यह बात स्पष्ट रूप से ग्रन्थों में नहीं लिखी गई, किन्तु गम्भीर अवलोकन से शास्त्रसम्मत तथा अनुभव सम्मत प्रतीत होती है कि चन्द्र जिस भाव से षष्ठ स्थान में स्थित हो उसके जीवन की हानि करता है। 'ज्योतिस्तत्त्वम्' में पं० मुकुन्द दवज्ञ लिखते हैं—

"दैत्यामात्ये सुन्दरीमन्दिरस्थे दोषानाथे द्वादशे दारहन्ता"

यदि दैत्यमन्त्री शुक्र स्त्रीभाव अर्थात् सप्तम भाव में स्थित हो और चन्द्र द्वादश स्थान में हो तो व्यक्ति की स्त्री अल्पायु पाती है। इसी सिद्धान्त की पुष्टि इस बात से होती है कि चन्द्र की दशम स्थान में स्थिति पुत्र नाश की द्योतक मानी गई है। जैसा कि चमत्कारचिन्तामणिकार ने कहा है—

सुखं बान्धवेभ्यः खगे धर्मकर्मा, समुद्राङ्गजे शन्नरेशादितोऽपि।
नवीनाङ्गना वैभवे सुप्रियत्वं, पुरा जातके सौख्यमल्पं करोति॥

—चन्द्रफल, श्लोक १०

अर्थात् जिस व्यक्ति के दशम स्थान में चन्द्र स्थित हो, वह धर्म, कर्म, (शुभ कर्म) करने वाला, राजा अथवा राज्य की ओर से सुख देने वाला, नवीन स्त्रियों द्वारा वैभव में प्रीति रखने वाला किन्तु धर्म, सन्तान से बहुत थोड़ा सुख पाने वाला होता है। क्योंकि चन्द्र पंचम भाव से छठा पड़ा जाता है।

भावेश की स्थिति का फल—

दुःस्थानान्निगतोऽरिनीचगृहगश्चास्तंगतो वाऽपि
यद्भावेशः शुभयोगदृष्टिरहितः क्रूरारियुक्तेक्षितः।
नीचार्यंशगतः पराजयहतश्चेत्पापिभिर्निद्युतिः
तद्भावस्य विनाशनं निगदितं लग्नादिभानां क्रमात्॥१०॥

यदि किसी भाव का स्वामी छठे, आठवें अथवा बारहवें भाव में हो, अपनी नीच राशि अथवा शत्रु राशि में हो, सूर्य के साथ होकर अस्त हो, शुभ ग्रहों की युति अथवा दृष्टि से हीन हो, शत्रु ग्रह से युक्त अथवा दृष्ट हो, अपने नीच अंश अथवा शत्रु अंश में हो, ग्रह युद्ध में पराजित होकर द्युतिहीन हो, तो उस लग्न आदि भाव का नाश कहा गया है।

यहां पर ध्यान रखना चाहिए कि षष्ठेश, अष्टमेश व द्वारशेश इस प्रकार कमजोर होकर भावनाशक होंगे तो वे अपने भाव अर्थात् रोग, मृत्यु व हानि का नाश करके शुभफल देने वाले हो जाएँगे। इस श्लोक में बताई गई पद्धति को सभी विद्वानों ने उपयोगी व सफल माना है।

यद्यद्भावपतिस्त्रिकोणग्रहगः केन्द्रत्रिलाभाश्रितो
मित्रोच्चस्वगृहांशगो बलवतोरेत्य स्थितः सौम्ययोः।
मध्ये तत्पतिषूच्चगेषु च शुभैर्युक्तेक्षितो वा ग्रह-
स्तत्तद्भावफलस्य वृद्धिमतुलां शीघ्रं करोति क्रमात् ॥११॥

जिस-जिस भाव का स्वामी त्रिकोणभाव में, केन्द्र में अथवा तृतीय या एकादश भाव में स्थित हो और जिस राशि अथवा नवांश में स्थित हो, वे यदि उसकी मित्र अथवा निज राशि हों, अथवा शुभ ग्रहों से युक्त अथवा दृष्ट हों तथा जिस केन्द्र त्रिकोण, तृतीय अथवा एकादश भाव में वह स्थित हो, उसका स्वामी भी उच्च हो तो शीघ्र ही अतुल सम्पति प्रदान करता है।

भाव, भावेश व भावकारक से फल जानना—

भावो भावपतिश्च कारकखगस्ते पापमध्यस्थिताः
पापैः शक्तिभिरन्विताश्च विबलाः सोम्यैरयुग्वीक्षिताः।
तेषां भाग्यसुखाष्टधीव्ययगताः पापास्तदंशर्क्षपाः
तद्भावे रिपुनीचमूढविजिताश्चेद् भावहानिं वदेत् ॥१२॥

यदि कोई भाव, उसका स्वामी तथा उसका कारक ग्रह पाप ग्रहों के मध्य में स्थित हो, प्रबल पापियों से युक्त हो, निर्बल हो; शुभ ग्रह न उनसे युक्त हों न उनको देखते हों, इन तीनों से नवम, चतुर्थ, अष्टम,

पंचम तथा द्वादश स्थानों में पाप ग्रह हों, भाव नवांश, भावेश नवांश तथा भाव कारक नवांश के स्वामी भी शत्रु राशि में, नीच राशि में अस्त अथवा युद्ध में पराजित हों तो उस भाव से सम्बन्धित वस्तुओं की हानि होती है।

प्रत्येक समस्या का समाधान भाव, भावेश तथा भाव के कारक के विचार द्वारा किया जाना चाहिए। यह बहुत मौलिक तथा व्यापक नियम है। इसी नियम की व्याख्या में भावप्रकाश में आया है कि—

भवन्ति भावभावेशकारका बलसंयुताः।
तदा पूर्णं फलं द्वाभ्याम् एकेनाल्प फलं वदेत् ॥

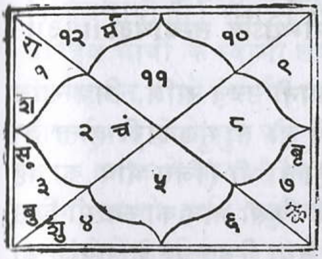
अर्थात् यदि भाव, भाव का स्वामी तथा भाव का कारक तीनों बलवान हों तब उस भाव का पूर्ण फल कहना चाहिए और यदि तीन में से दो बलवान हों तो आधा फल कहना चाहिये और यदि तीन में से केवल एक ही बलवान हो तो बहुत थोड़ा फल होता है।

जब कोई भाव, भावेश तथा भावकारक पाप प्रभाव से पीड़ित होता है तो भाव प्रदर्शित तथ्य की हानि होती है। इस सिद्धान्त का एक उत्तम उदाहरण ड्यूक ऑफ विंडसर (DUKE OF WINDSOR) की कुण्डली है। आपने सोच समझकर स्त्री-प्रेम में आकर ब्रिटेन के सिंहासन और ताज को लात मार दी थी। उनकी निम्नलिखित कुण्डली में राज्य का प्रतिनिधित्व करने वाले उक्त तीन अंगों अर्थात् दशम भाव, दशमेश मंगल तथा दशम भाव के कारक अर्थात् सूर्य पर आप यदि विचार करेंगे तो आप पावेंगे कि शनि का इन सब पर प्रभाव है। शनि दशम भाव को पूर्ण तृतीय दृष्टि से, दशमेश मङ्गल को पूर्ण सप्तम दृष्टि से देख रहा है। शनि लग्न का भी और चन्द्र लग्न का भी स्वामी है। अतः निज का पूर्ण प्रतिनिधि है। अतः शनि द्वारा राज्य का अर्थ निज द्वारा अर्थात् ड्यूक द्वारा जानबूझ कर किया हुआ त्याग (ABDICATION) समझा जाएगा।



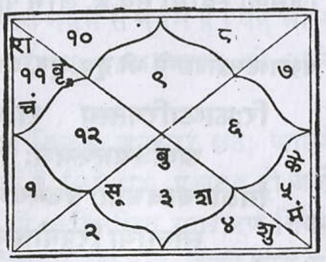
(५) जिस मौलिक सिद्धान्त का इस श्लोक में उल्लेख है, उसकी महत्ता और उपयोगिता पर जितना भी लिखा जावे उतना कम ही होगा इसी सिद्धान्त के अनुसार निम्नांकित कुण्डली का अध्ययन कीजिये।

यहाँ पंचम भाव और उसका स्वामी व कारक पापी ग्रहों के प्रभाव में है, सूर्य की युति है। शनि की तृतीय दृष्टि, मङ्गल की चतुर्थ दृष्टि तथा केतु की नवम दृष्टि है। जिससे भाव (पंचम) तथा भावाधिपति (पंचमेश) का सर्वथा नाश हो चुका। पंचम भाव का कारक अर्थात् पुत्रकारक 'बृहस्पति' भी केतु की युति, शत्रु राशि, शनि तथा मंगल की दृष्टि से पूर्णतया पीड़ित है।



इस प्रकार इस व्यक्ति के किसी संतान के न होने के कारण भाव, भावाधिपति तथा भावकारक का पीड़ित होना ही है जैसा कि श्लोक में वर्णित है। इस सिद्धांत को हम सर्वत्र उपयोग में ला सकते हैं। विवाहित जीवन में यदि कटुता तथा पृथकता आती है तो भी स्त्री अथवा पुरुष का सप्तम भाव, उस सप्तम भाव का स्वामी तथा उस सप्तम भाव का कारक अवश्य पृथकताजनक ग्रहों, शनि, राहु, सूर्य द्वादशेश के युति अथवा दृष्टि प्रभाव में होते हैं।

उदाहरण के लिए 'फलित सूत्र' के पृष्ठ ११३ से उद्धृत निम्नलिखित कुण्डली देखिए—यहाँ भी सप्तम भाव पर तीन पृथकताजनक प्रभाव हैं : अर्थात् सूर्य तथा शनि की युति और राहु की पंचम दृष्टि। सप्तमेश पर भी वही तीन पृथकताजनक प्रभाव हैं। रह गया स्त्रीकारक शुक्र। वह सूर्य, शनि तथा मंगल (द्वादशेश) से घिरा हुआ है। अतः भाव, भावेश तथा कारक तीनों के तीनों पृथकताजनक प्रभाव में पाए गए, जिसके परिणामस्वरूप इस जातक की विवाह के अनन्तर शीघ्र ही अपनी स्त्री से पृथकता हो गई।



पापी ग्रह भी अपने भाव का रक्षक —

स्वर्क्षोच्चादिसुहृत्त्रिकोणसहिते राश्यंशवर्गोत्तमे
सौम्यः सौख्यकरोऽथ पापखचरोऽप्येवंविधश्चेच्छुभः ।
यद्भेशस्थितभांशपा बलयुताश्चेत्तद्रूपो लाभकृ-
द्यस्यांशक्षंगतो बली हितखगः सौम्योऽपि तस्यार्थदः ॥१३॥

यदि कोई शुभ ग्रह अपनी राशि, अपनी उच्च राशि, मित्र राशि मूल त्रिकोण राशि अथवा वर्गोत्तमांश में हो तो सुखकारी होता है। यदि पापी ग्रह भी इस प्रकार से बलवान् हो तो भी (जिस भाव का वह स्वामी है उसके लिए) शुभकारी होता है। किसी भाव का स्वामी जिस भाव में स्थित है यदि उस भाव का स्वामी तथा स्थित ग्रह के नवांश का स्वामी बलवान हो तो भी उस स्थित ग्रह के आधिपत्य वाले भाव को लाभ पहुंचता है।

इसी प्रकार यदि किसी भावेश से उस भाव में जिसमें कि वह स्थित है अथवा स्थित भाव की नवांश राशि में यदि भावेश का मित्र ग्रह बलवान् होकर स्थित हो तो भी भावेश को उस भाव सम्बन्धी अर्थ की प्राप्ति होगी जिसका कि वह स्वामी है।

मान लीजिए कि किसी कर्क लग्न की कुण्डली में द्वितीयाधिपति सूर्य चतुर्थ भाव में तुला (नीच राशि) का होकर द्वितीय नवांश में स्थित है। अब यदि (१) सूर्याधिष्ठित राशि अर्थात् तुला राशि में सूर्य का मित्र चन्द्र प्रबल होकर अथवा तुला राशि में आए हुए द्वितीय नवांश की राशि वृश्चिक में यदि सूर्य का मित्र प्रबल गुरु स्थित हो तो धन भाव को जिसका स्वामी सूर्य है, लाभ पहुंचेगा अर्थात् व्यक्ति धनाढ्य होगा।

षष्ठाष्टमद्वादश में भी बुध, गुरु, शुक्र की शुभता—

रिःफाष्टारिगतस्य राशिरशुभस्तद्भेशयुग्दृष्टभं
भ्रष्टं स्यात्क्रमशः सितज्ञगुरवः स्युस्तेषु सौख्यप्रदाः ।
मित्रोच्चस्वभगाः षडन्त्यमृतिगा वा सौम्यदृष्टाः शुभा-
स्तन्नाथा रिपुनीचमूढविजिताश्चेत्तद् गृहस्थाः शुभाः ॥१४॥

जिस भाव का स्वामी, द्वादश, अष्टम अथवा षष्ठ भाव में चला जाए, उस भाव को हानि पहुंचती है। जिस भाव में द्वादशेश अष्टमेश

अथवा षष्ठेश बैठ जाये उसको तथा जिस भाव को यह देखे उसको हानि पहुंचती है। शुक्र द्वादश में, बुध अष्टम भाव में तथा गुरु छठे भाव में सुख प्रदान करते हैं। छठे, बारहवें तथा अष्टम में पड़े हुए ग्रह यदि अपने मित्र की अथवा अपनी उच्च राशि में स्थित हों तो (उन भावों के लिए जिनके कि वे स्वामी हों) शुभ फलदायक हो जाते हैं। यदि छठे, आठवें तथा बारहवें भावों के स्वामी शत्रु, नीच, अस्त अथवा युद्ध में परास्त हों तो जो ग्रह इन भावों (अर्थात् छठे, आठवें, बारहवें) में दूसरे घरों के स्वामी होकर आये हों वे शुभ फल करने वाले हो जाते हैं।

श्लोक में आया है कि द्वादश भाव का स्वामी जिस भाव में जाकर बठेगा उसको हानि पहुंचेगी। इस तथ्य का उदाहरण आगे दी गई कुण्डली में उपस्थित करते हैं—

वृश्चिक लग्न की यह कुण्डली एक क्लर्क की है जिसको गुरु की दशा में तथा शुक्र की अन्तर्दशा में राज्य की नौकरी छोड़नी पड़ी। शुक्र पर यदि आप विचार करेंगे तो देखेंगे कि यह न केवल द्वादश भाव का स्वामी है वरन् एक ऐसी तुला राशि का स्वामी है जिस में पृथक्ता-जनक दो पापी ग्रह शनि तथा

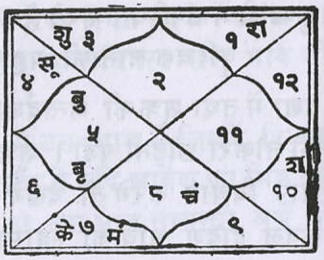


केतु भी पड़े हुए हैं। अतः शुक्र में द्वादशेश होने का पापत्व और भी बढ़ गया है। अतः शुक्र ने अपनी भुक्ति में गुरु को हानि पहुंचाई। गुरु की हानि का अर्थ राज्य से हानि है क्योंकि एक तो गुरु स्वयं राज्य कृपा-कारक है और इसीलिये पाप प्रभाव में आकर उस कृपा से वंचित रखेगा। दूसरे गुरु पंचमाधिपति भी है। पंचम भाव नवम से नवम है। यह भाग्य का भी प्रतिनिधित्व करता है। अतः राज्य द्वारा भाग्य की हानि स्पष्ट है।

उपरोक्त श्लोक का अन्तिम अंश जिसके अनुसार छठे, आठवें तथा द्वादश भाव में स्थित ग्रह उन भावों के लिये शुभ फलप्रद हो जाते हैं, जिनके कि वे स्वामी हों। श्लोक १३ में उल्लिखित साधारण नियम के विरुद्ध प्रतीत होता है क्योंकि वहाँ लिखा है कि यदि किसी भाव का स्वामी बलवान् हो तो उस भाव में स्थित ग्रह जिस भाव का स्वामी है उसको लाभ पहुंचाता है। इससे सूचित होता है कि यदि किसी भाव का

स्वामी निर्बल हो तो उस भाव में स्थित ग्रह जिस भाव का स्वामी हो वह भी निर्बल हो जाना चाहिये। अतः ऐसा लगता है कि जब किसी शुभ भाव का स्वामी त्रिक भाव में स्थित होता है तो वह मानो त्रिक भाव ही का स्वामी बन जाता है और इसलिए अशुभ फल देने को उद्यत हो जाता है। ऐसे अशुभ ग्रह का नीच, अस्त आदि स्थिति में होकर निर्बल होना, अथवा अशुभ अष्टम आदि के स्वामियों का निर्बल होना, मानो उस अशुभता का नाश कर देता है और अन्तिम रूप में व्यक्ति को शुभता प्राप्त होती है। यह एक ऐसा विषय है, जो पाठकों के अनुभव की अपेक्षा रखता है।

श्री सी० जे० कृष्णा स्वामी ने अपनी इंगलिश पुस्तक 'भारतीय ज्योतिष' के पृष्ठ १७५ पर इस कुण्डली का उदाहरण देते हुए लिखा है कि क्योंकि लग्नाधिपति षष्ठ स्थान में है और केवल शुभ प्रभाव में है, अतः निर्बल है। जिसके परिणाम स्वरूप ऋण आदि का कुण्डली में योग बना है। उनका भाव यह है कि यदि यही षष्ठस्थ लग्नेश पाप प्रभाव में होता तो लग्न को बल मिल जाता। अस्तु, विषय विवादास्पद तथा विचारणीय है।



ग्रहों का विशेष बलाबल—

बालो वृद्धखगोऽस्तगश्च विजितः पश्यन्नपश्यत्यसौ
शुक्लाशुक्लदिनैः शुभाशुभखगाः पूर्वामुखाद्युत्क्रमात्।
प्रत्यग्दृष्टियुतो दृढः सुरगुरुर्मन्दो ऋजुः शक्तिमान्
मूढस्थोऽपि भृगुः शनिश्च बलवान् भौमोऽरिगो वा बली ॥१५॥

बाल (छह अंश से कम अंशों में स्थित), वृद्ध (२५ से ३० अंशों में स्थित), अस्तंगत ग्रह, युद्ध में पराजित ग्रह की दृष्टि में से बल जाता रहता है (अर्थात् दृष्टि बल बहुत कम हो जाता है)। शुभ ग्रह शुक्ल पक्ष में पूर्व की ओर, पापी ग्रह कृष्ण पक्ष में पूर्व की ओर देखते हैं। इसी प्रकार कृष्ण पक्ष में शुभ ग्रह पश्चिम की ओर, पापी ग्रह पूर्व की ओर देखते हैं। बृहस्पति पश्चिम की ओर देखता हुआ दृढ़ अथवा बलवान् होता है। शनि मार्गी हो तो बलवान होता है, सूर्य के साथ होते हुए भी

शुक्र तथा शनि बलवान् रहते हैं। सम्भवतया इसका कारण यह हो कि सूर्य अपने दो शत्रुओं के साथ होने से स्वयं निर्बल हो जावेगा। अतः शनि तथा शुक्र को हानि नहीं पहुंच सकेगी। अस्तु, यह विषय विचारणीय है। मंगल शत्रु राशि में भी बली रहता है।

'शुभ ग्रह शुक्ल पक्ष में पूर्व की ओर देखते हैं' इत्यादि साधारण नियम है, कि शुक्ल पक्ष में शुभ ग्रह बलवान् हो जाते हैं। अतः वह लग्न को बलान्वित करते हैं, ऐसा ध्वनित होता है, क्योंकि लग्न पूर्व दिशा में ही होता है। बात बिल्कुल स्पष्ट है। शुभ ग्रह शुक्ल पक्ष में व अशुभ ग्रह कृष्ण पक्ष में पक्षबली होते हैं। पीछे बल साधन में स्पष्ट कर चुके हैं। दिग्बल भी इसी से सम्बन्धित हैं। शुभ ग्रह लग्न से षष्ठ तक व अशुभ ग्रह तदुपरान्त दिग्बल पाते हैं। बृहस्पति पश्चिम की ओर देखे एतदर्थं उसकी पूर्व अर्थात् लग्न में स्थिति होनी चाहिए तथा लग्न में वह दिग्बली होता है। देखें बलसाधन में श्लोक १२ से १७ तक।

मगल का शत्रु राशि में बली रहना मंगल की प्रकृति के अनुकूल हैं, क्योंकि मंगल एक क्षत्रिय ग्रह है जो अपना पूरा प्रभाव शत्रुओं से घिर जाने पर दिखला सकता है। इसका शनि की राशि में उच्च होना भी इसी बात का द्योतक है।

विशेष ग्रहों का विशेष भावों में फल—

केन्द्रे भ्रातृधनायधीनवमगाः षष्ठेऽपि सौम्याः शुभाः
क्रूराश्चोपचयस्थिता रविशनी धर्मस्थितौ ज्ञेऽष्टमे।
स्वोच्चस्वर्क्षसुरेज्यभस्थरविजो लग्नस्थितोऽपीष्टकृत्
शुक्रो द्वादशसंस्थितोऽपि शुभदो मन्दांशराशी विना ॥१६॥

शुभ ग्रह (गुरु आदि) केन्द्र, तृतीय, द्वितीय, एकादश, पञ्चम, नवम तथा छठे में भी शुभ फल करते हैं। पापीग्रह उपचय भावों (तृतीय षष्ठ, दशम, एकादश) में, शनि तथा सूर्य नवम भाव में, बुध अष्टम में, शनि यदि लग्न में भी अपनी उच्च राशि, निज राशि, अथवा गुरु की राशि में स्थित हो तो शुभ करता है। शुक्र यदि द्वादश स्थान में हो, परन्तु शनि की राशि अथवा नवांश में न हो तो शुभ फल देने वाला होता है।

(क) कहते हैं कि शुभ ग्रह तृतीय तथा षष्ठ स्थान में शुभ फल करते हैं। तृतीय में तो शुभ फल का होना इसलिए कि नवम भाव पर

शुभ दृष्टि पड़ती है जिससे भाग्य की दृष्टि एकादश स्थान पर भी पड़ कर लाभ को बढ़ायेगी। षष्ठ स्थान में शुक्र का शुभ होना हम पूर्व श्लोक में देख ही चुके हैं। षष्ठ में गुरु धन भाव को देखकर उसकी वृद्धि करेगा। अतः शुभ होगा।

(ख) पापी ग्रह उपचय भाव में शुभ फल करते हैं—का भाव यह है कि ये पापो ग्रह जिन शुभ भावों के स्वामी हों उनको लाभ पहुँचता है, क्योंकि एकादश में स्थिति ग्रहों को बल प्रदान करती है। बुध अष्टम भाव में इसलिए शुभ होगा कि वह धन भाव पर पूर्ण दृष्टि डालेगा, (परन्तु बुध अकेला अष्टम में हो, किसी पापी ग्रह के साथ न हो, शुभ के साथ चाहे हो)।

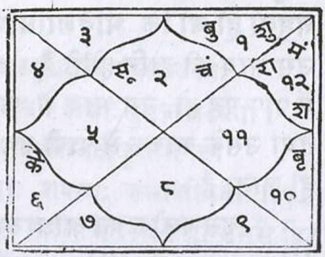
(ग) शनि के लिए साधारण नियम यह है कि वह सप्तम स्थान में पश्चिम दिक्बल को प्राप्त करता है। अतः उसे लग्न में निर्बल माना है। किन्तु जब शनि उच्च आदि अथवा गुरु को सम राशि में होकर लग्न में स्थित होगा, तो केन्द्र में बलवान् होने के कारण उस भाव की वृद्धि करेगा जिसका स्वामी हो और साथ ही लग्न के लिये भी स्थान वृद्धि करेगा। शनि के नियमानुसार तथा उच्च आदि स्थिति के कारण लाभान्वित करेगा।

(घ) शुक्र की द्वादश स्थिति शुभप्रद है, यह सबको मान्य है (देखिये भावार्थ रत्नाकर)। परन्तु यहाँ ग्रन्थकार ने उसके शनि की राशि तथा शनि की नवांश में न होने की भी शर्त लगा दी है। इस शर्त का कारण विद्वान् ग्रन्थकर्ता की सम्मति में सम्भवतया यह हो कि शनि भोग की कमी, अभाव आदि का सूचक ग्रह शुक्र को भोग स्थान में उसके भोग-विलासादि गुणों के प्रादुर्भाव में रुकावट सिद्ध हो।

(ङ) सूर्य नवम भाव में शुभ करेगा, यह भी सहज ही में हम सकझ सकते हैं, क्योंकि सूर्य अपने कारक (पितृ कारक) भाव में होगा और यदि थोड़ा-सा भी शुभ युक्त अथवा शुभ दृष्ट हुआ तो पिता को लाभान्वित करेगा। साथ ही राज्य की कृपा जो नवम भाव तथा सूर्य दोनों से देखी जाती है, भी परिवर्द्धित रूप से प्राप्त होगी।

विद्वान् ग्रन्थकर्ता ने शनि की नवम भाव में स्थिति को शुभ माना है। यह तो केवल शनि के उस भाव में, शुभ राशि में शुभ युक्त शुभ दृष्ट होने पर ही सम्भव दिखाई पड़ता है।

शुक्र की द्वादश स्थिति का एक उत्तम उदाहरण साम्राज्ञी विक्टोरिया की प्रस्तुत कुण्डली उपस्थित करती है। इस कुण्डली में सूर्य और चन्द्र दोनों लग्न में स्थित हैं। अत: शुक्र न केवल लग्नाधिपति ही है, अपितु सूर्य लग्नाधिपति तथा चन्द्र लग्नाधिपति भी है। यदि शुक्र की द्वादश स्थान में स्थिति हानिप्रद होती तो इन्हें साधारण निर्धन होना चाहिए था। परन्तु इस साम्राज्ञी



ने तीस वर्ष से भी ऊपर राज्य किया। अत: मानना पड़ेगा कि यह जो नियम है कि—जिस भाव का स्वामी द्वादश भाव में चला जाये उस भाव की हानि होती है—यह ठीक है, परन्तु शुक्र इस नियम का अपवाद है। सच तो यह है कि शुक्र की द्वादश स्थिति से इस कुण्डली में लग्नों को पर्याप्त बल मिला। जिसके फलस्वरूप राज्यसुख तथा भोग भी उन्हें लगातार प्राप्त होता रहा।

शुभाशुभ निर्णय का अन्य प्रकार—

क्षीणेन्दुश्च सुधांशुजश्च भृगुजः पूर्णेन्दुजीवौ क्रमात्
एकद्वित्रिचतुष्पदात्मकशुभाश्चाथेज्यशुक्रौ तथा।
सौम्यस्थौ यदि नायकेन शुभदौ क्षीणेन्दुपापेन्दुजौ
सूर्यो राहुकुजौ च केतुरविजौ पादाधिकात्पापदाः ॥१७॥

(i) क्षीणचन्द्र (ii) बुध (iii) शुक्र (iv) पूर्ण चन्द्र तथा गुरु क्रमशः $\frac{1}{4}$, $\frac{1}{3}$, $\frac{3}{4}$ तथा १ रूपा बल से शुरू करते हैं। गुरु तथा शुक्र यदि शुभ राशि में स्थित हों तो शुभदायक होते हैं। (i) क्षीणचन्द्र, पापी बुध (ii) सूर्य (iii) राहु तथा मंगल (iv) केतु तथा शनि उपरोक्त अनुपात से ($\frac{1}{4}$, $\frac{1}{2}$ आदि से) अशुभकारी होते हैं।

भावेश व कारक का सम्बन्ध : एक निर्णायक तथ्य—

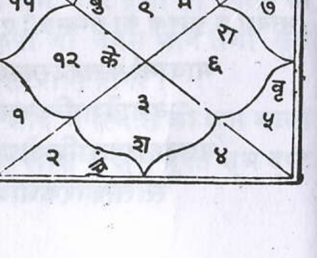
भावानां फलकारकाश्च विमुखा नैसर्गिकाश्चाथ य-
द्भावेशान्वितभांशपावपि तथा तद् भावतत्कारकौ।
यद्यत्कारकराशिगोऽशुभखगस्तत्तत्फलध्वंसक-
स्तत्तत्कारकभावयोगवशतः स्वल्पं फलं कारयेत् ॥१८॥

यदि किसी भाव के स्वामी में तथा उस भाव के कारक में नैसर्गिक शत्रुता हो अथवा यदि किसी भाव तथा उसके कारक की उन ग्रहों से शत्रुता हो जो कि भावेशाधिष्ठित राशि तथा नवांश के स्वामी हैं, तो उस भाव की हानि होती है। इसी प्रकार जिस भाव के कारक की राशि में पाप ग्रह हो, उस भाव के फल की हानि होती है। ऐसे ही जिस भाव तथा उसके कारक से पापी ग्रह की युति हो उस भाव का फल बहुत अल्प हो जाता है।

इस श्लोक का आधारभूत नियम है कि किसी भी भाव का फल (i) उस भाव से, (ii) उस भाव के स्वामी से, (iii) उस भाव के कारक से अर्थात् इन तीनों के निरीक्षण-परीक्षण से कहना चाहिए। जो स्थितियाँ भाव को, भावेश को अथवा भाव के कारक को निर्बल बनाती हों, स्पष्ट है कि वे उस भाव से सम्बन्धित बातों के लिए हानिप्रद होंगी। यदि यहाँ भावाधिपति अधिष्ठित राशि का स्वामी अथवा भावाधिपति जिस राशि के नवांश में हो उसका स्वामो निर्बल हो तो स्पष्ट है कि भावाधिपति निर्बल होगा। (देखिये श्लोक संख्या १३) और इसीलिए उस भाव को हानि पहुँचेगो जिसका कि वह अधिपति है।

इसी प्रकार जब कारक की राशि में पाप ग्रह हो तो कारक को हानि पहुंचेगो और कारक की हानि उपरोक्त नियमानुसार उस भाव की हानि है जिसका कि वह कारक है। इस प्रकार भावाधिपति और कारक को परस्पर शत्रुता का भी साथ है। जैसे नवमाधिपति सूर्य अथवा सूर्य का कोई मित्र हो तो नवम भाव के लिए अधिक अच्छा है, अपेक्षाकृत उस अवस्था के जबकि नवमाधिपति सूर्य का शत्रु हो। उदाहरणार्थ भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्र प्रसाद की कुण्डली को लें।

इस कुण्डली में नवमाधिपति स्वयं राज्यकारक सूर्य है, अतः यही नवमेश अधिक शुभकारक हुआ है। सूर्य यद्यपि द्वादश स्थान में है और इसी से राज्य से विरोध और राज्य-प्राप्ति में विलम्ब करवाता है। परन्तु यह सूर्य सब शुभ ग्रहों का प्रभाव भी लिए हुए है। बुध, शुक्र से घिरा हुआ गुरु से केन्द्र



में और उच्च एवं पूर्ण बली चन्द्र से पूर्णतया दृष्ट होने से सूर्य ने अन्त में उनको राष्ट्रपति की पदवी भी दिलाई।

छादक आदि ग्रहों का ज्ञान —

पूर्णेन्द्विज्यशनिध्वजाः स्वयुतभाद्द्विर्द्वादशच्छादकाः
दुष्टश्चेद्धिषणोऽपि रिःफभवने शेषाः पुरच्छादकाः।
दृष्ट्या क्षेत्रयुतेन वा सहयुजान्योन्यर्क्षयुक्तेन वा
सर्वे भावपभावकारकखगाः शक्ताः क्रमाद्योगदाः ॥१९॥

पूर्ण चन्द्र, गुरु, शनि तथा केतु जिस राशि में स्थित हो उससे द्वितीय तथा द्वादश भाव के लिए छादक होते हैं। (यह शब्द सम्भवतया रक्षा के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है) यदि गुरु दुःस्थान का स्वामी होने के कारण दुष्ट हो तो केवल अपने से द्वादश स्थान का छादक होता है। शेष ग्रह अर्थात् पूर्ण चन्द्र, शनि व केतु अपने से द्वितीय भाव के ही छादक होते हैं। यदि किसी भावेश का तथा उस भाव के कारक का युति, दृष्टि, व्यत्यय आदि से सम्बन्ध हो तो भाव सम्बन्धी शुभ फल मिलता है।

किसी भावेश का उसी भाव के कारक से सम्बन्ध भाव के विषय में शुभ फल देता है। इस वाक्य का भाव समझने की आवश्यकता है। उदाहरणार्थ—यदि लाभेश के साथ स्थान के कारक गुरु का दृष्टि आदि द्वारा सम्बन्ध हो तो लाभ अच्छा होता है। जैसे—मेष लग्न हो और शनि लाभेश तथा गुरु लाभकारक का दृष्टि आदि से सम्बन्ध हो तो धन के लिए शुभ है। यहां कारण सादृश्य का सिद्धान्त है। दो धन द्योतक, अंगों (Factors) के एकत्रित होने से धन की अधिक सृष्टि होगी। इसी प्रकार यदि नवमेश का सूर्य से युति आदि द्वारा सम्बन्ध हो तो राज्य में अथवा राज्य द्वारा मान, धन पाने का योग बनता है, क्योंकि नवमेश तथा सूर्य दोनों राज्य कृपा रूपी सदृश धर्म वाले हैं। परन्तु नवमेश तथा सूर्य का उक्त सम्बन्ध पिता की आयु आदि को वृद्धि तभी करेगा, जब कि इन दोनों को इकट्ठे अथवा पृथक्-पृथक् दृष्टि आदि द्वारा बल भी मिलता हो।

यद्यद्भावधनर्क्षसंस्थितखगस्तच्छादकाख्यस्मृतस्-
तद्भ्रातृस्थखगोऽपि वेधकखगस्तद्बन्धुगो बन्धकः।
तद्रन्ध्रे प्रतिबन्धकोऽत्र सहितात्तद्रन्ध्रवृद्धिक्षयौ
स्यातां भावधनास्तभद्वयपती तन्मारकाख्यौ क्रमात् ॥२०॥

किसो भाव से द्वितीय भाव में पड़ा हुआ ग्रह उस प्रथमोक्त भाव के लिए छादक होता है (अर्थात् उसकी रक्षा करता है)। किसी भाव से तृतोय में स्थित ग्रह उसके लिए बेधक (शारीरिक कष्ट देने वाला) होता है। किसी भाव से चतुर्थ स्थान में पड़ा ग्रह उसके लिए बन्धक (बाँधने वाला) होता है। किसी भाव से अष्टम में स्थित ग्रह उस भाव का प्रतिबन्धक (अधिक रुकावट वाला) होता है। इस अष्टमस्थ ग्रह से उस भाव की उन्नति अथवा अवनति का विचार करना चाहिए। किसी भाव से उसके द्वितीय तथा सप्तम भावों के स्वामी उस भाव के मारक (आयु की हानि करने वाले) होते हैं।

मित्रक्रूरखगस्य दृष्टिरनघैः स्वाधीनवेधा स्मृता
शत्रुक्रूरनिरीक्षिते न च पराधीनाख्यवेधा भवेत्।
पापैः पूर्वफलं ततोऽन्तिमफलं सौम्यैः खलैस्तादृशं
सौम्यासौम्यखगैर्बलाधिकतमैः स्याद्भाग्यमायुः क्रमात् ॥२१॥

आचार्यों ने मित्र परन्तु पापी ग्रह की दृष्टि को स्वाधीन वेध का नाम दिया है, और शत्रु तथा क्रूर ग्रह की दृष्टि को पराधीन वेध कहा है। पापी ग्रह अपना (अपनी दृष्टि अथवा युति का) फल पहले करते हैं और सौम्य ग्रह बाद में। यदि कुण्डली में सौम्य ग्रहों का बल अधिक हो तो भाग्य में प्रचुरता होती है और यदि पापी ग्रह बलवान् हों तो आयु में वृद्धि होती है।

श्लोक १९ में पूर्ण चन्द्रमा, बृहस्पति, शनि व केतु के विषय में एक विशेष नियम बताया गया है। ये चारों ग्रह जिस स्थान में स्थित होते हैं, उस स्थान से एक भाव आगे व एक भाव पीछे तक अर्थात् अपने अधिष्ठित स्थान से द्वितीय व द्वादश स्थानों पर भी अपना प्रभाव रखते हैं। इन्हें ग्रन्थकार ने 'छादक' ग्रह कहा है। छादक का अर्थ है—ढकने वाला अर्थात् इनका शुभ प्रभाव अगले व पिछले भाव पर भी पड़ता है।

इन छादक ग्रहों के विषय में एक बात और ध्यान रखने योग्य है। बृहस्पति किसी स्थान में स्थित होकर उसके द्वितीय व द्वादश भाव का छादक होगा यदि वह किसी दुष्ट स्थान का स्वामी न हो।

यदि गुरु की कोई राशि दुष्ट स्थान में पड़ी हो तो बृहस्पति जहाँ स्थित होगा, उससे द्वादश स्थान का ही छादक होगा, द्वितीय भाव का नहीं।

यदि यही स्थिति शेष उक्त ग्रहों के विषय में हो अर्थात् चन्द्रमा, शनि व केतु दुष्ट स्थानों के स्वामी हों तो वे केवल अधिष्ठित भाव से द्वितीय भाव के ही छादक होंगे, द्वादश भाव के नहीं। अब केतु का दु:स्थानेशत्व कैसे जानेंगे। इस विषय में ध्यान रखिए कि राहु व केतु की स्वराशियाँ क्रमश: कन्या व मीन हैं। कुम्भ व सिंह क्रमश: मूल त्रिकोण राशियाँ हैं। कई विद्वान् राहु को वृष में स्वक्षेत्री मानते हैं। इस क्रम से वृश्चिक राशि केतु की अपनी राशि होती है। अत: मीन राशि का केतु स्वक्षेत्री है। केतु का फल मंगल की तरह होने से वृश्चिक राशि दु:स्थानों में होने पर भी छादकत्व का निर्णय कर लेने में कोई हानि नहीं है।

पहले ग्रहों के सम्बन्धों के प्रकार बताए जा चुके हैं। यदि किसी भाव का स्वामी व भाव का कारक परस्पर सम्बन्धी हों तो उस भाव को शक्ति देते हैं। बारह भावों के कारक क्रमश: इस प्रकार हैं—

सूर्य, गुरु, मंगल, बुध व चन्द्र, गुरु, शनि व मंगल, शुक्र, शनि, बृहस्पति व सूर्य, गुरु, बुध, रवि व शनि, गुरु, शनि।

इसी छादक व वेधक ग्रहों के निर्णय में इन बातों का भी ध्यान रखिए—

जो ग्रह जिस स्थान में स्थित हो, उससे पिछले भाव का भी छादक होता है। यह नियम सभी ग्रहों के लिए है।

भाव से तृतीय स्थान में स्थित ग्रह, उस भाव के लिए वेधक अर्थात् कष्ट देने वाला होता है।

इसी प्रकार भाव से चतुर्थ स्थान में बैठा ग्रह बन्धक, अष्टमस्थ ग्रह प्रतिबन्धक आदि होता है। इन बातों का ध्यान फलादेश के समय अवश्य रखना चाहिए।[1]

विपरीत राजयोग (प्रसिद्ध व अनुभूत)

रन्ध्रेशो व्ययषष्ठगो रिपुपतौ रन्ध्रे व्यये वा स्थिते
रि:फेशोऽपि तथैव रन्ध्ररिपुभे यस्यास्ति तस्मिन्वदेत्।
अन्योन्यर्क्षगता निरीक्षणयुताश्चान्यैरयुक्तेक्षिता
जातोऽसौ नृपति: प्रशस्तविभवो राजाधिराजेश्वर:॥ २२॥

---

१. भावफल के इन विशेष नियमों के लिए पढ़ें—**भावमंजरी**

अष्टमेश यदि व्यय अथवा षष्ठ में हो, षष्ठेश यदि अष्टम अथवा व्यय में हो, व्ययेश यदि षष्ठ अथवा अष्टम भाव में हो और इन नेष्ट भावों के स्वामियों का युति, दृष्टि अथवा व्यत्यय द्वारा परस्पर सम्बन्ध भी हो परन्तु, अन्य किसी ग्रह से युति अथवा दृष्टि द्वारा सम्बन्ध न हो तो जातक वैभवशाली राजराजेश्वर होता है। (स्पष्ट है कि ऐसी स्थिति में अष्टमेश आदि ग्रहों के दरिद्रता, अभाव आदि दुर्गुणों का नाश होने से विपरीत रूप से धनादि की प्राप्ति होगी)।

निर्बल पापग्रह भी योगकारक हैं—

पापाः नीचगताः शुभा बलयुताः केन्द्रत्रिकोणस्थिताः
खेटाः स्युर्यदि कर्मभाग्यगृहपा भाग्येऽथवा कर्मणि।
राजा स्यान्मतिमान्महाधनयुतः ख्यातः प्रतापान्वितो
दीर्घायुः परभूपवन्दितपदः सर्वज्ञतुल्यः सुधीः ॥ २३ ॥

किसी की जन्म कुण्डली में पापी ग्रह नीच राशि में हों (अर्थात् निर्बल हों) और शुभ ग्रह केन्द्र त्रिकोण स्थानों में बलवान् हों और दशम, नवम तथा चतुर्थ भावों के स्वामी नवम अथवा दशम भाव में इकट्ठे स्थित हों तो वह व्यक्ति बुद्धिमान्, महाधनी, यशस्वी प्रतापी, दीर्घायु, सर्वज्ञतुल्य महाराजा होता है।

पीछे "वक्री ग्रह की विशेषता" शीर्षक से हम बल साधन खण्ड में विपरीत राजयोग के विषय में संकेत कर चुके हैं। इस राजयोग का मूलभूत सिद्धान्त यह है कि विरोधी चीजें परस्पर संगुणित होकर अविरोधी बन जाती हैं। ऋण × ऋण = धन। कुण्डली में जो ग्रह किसी विशेष अशुभ फल को द्योतित कर रहे हों तो वे अपना पूरा अशुभ फल तभी दिखाएँगे जब वे बली होंगे। जब शुभ ग्रह बली होंगे तो ही वे शुभ फल को पूरी मात्रा में दे सकेंगे। अब कल्पना कीजिए कि अशुभ फल दाता ग्रह यदि बिल्कुल कमजोर होंगे तो वे अपना अशुभ फल क्योंकर दिखा सकेंगे। जब अशुभ फल कम से कम होगा तो निश्चय से शुभ फल का महत्त्व बढ़ जायेगा। इसी सिद्धान्त को व्यवहार में परखकर **उत्तरकालामृत** के रचयिता ने यहाँ प्रस्तुत किया है।

'अशुभ फलदाता ग्रह जब स्वयं दुष्ट भावों में होंगे तो उनका अशुभ फल नष्ट होकर मनुष्य के भाग्य की वृद्धि करेगा।'

ज्योतिष का सामान्य-सा सिद्धान्त है कि ६-८-१२ स्थानों के स्वामी जहाँ बैठते हैं वे उस अधिष्ठित भाव की हानि करते हैं।

इसी प्रकार जिन भावों के स्वामी ग्रह ६-८-१२ में स्थित होते हैं, उन भावों के फल का ह्रास हो जाता है। यही इस विपरीत राजयोग का आधार है। एक प्रकार से पाराशर के नियम को **उत्तरकालामृत** में विस्तार दिया गया है।

अब स्वयं देखिए कि ६-८-१२ स्थानों के स्वामी यदि इन्हीं स्थानों में क्षेत्र सम्बन्धी होकर बैठेंगे तो परस्पर एक दूसरे के भावों की हानि कर राजयोग बनाएँगे। ध्यान रखिए, यदि ये तीनों भावाधिपति अपने-अपने स्थान में बैठेंगे तो यह योग नहीं बनेगा। अतः षष्ठेश, अष्टम या व्यय में, व्ययेश षष्ठ या अष्टम में, अष्टमेश षष्ठ या व्यय में हों या ये परस्पर पूर्वोक्त सम्बन्धों के आधार पर सम्बन्ध रख रहे हों तो अवश्य ही एक दूसरे के भाव की हानि अर्थात् रोग, मृत्यु, शरीर हानि की ही हानि करके राजयोग कारक बन जाएँगे।

इसी प्रकार नीच राशि में स्थित होकर कोई ग्रह यदि अशुभ फल देने वाला प्रतीत हो रहा हो और वह वक्री हो तो शुभ फल देगा, अर्थात् उच्च जैसा फल देगा। वक्रीग्रह नीचगत होकर भी किस प्रकार शुभ फल देता है। इसके कई उदाहरण बल-साधनखण्ड के श्लोक ६ की व्याख्या में दिखाए जा चुके हैं।

इसके अतिरिक्त अनुभव में आया है कि ६-८-१२ भावों के अधिपति यदि शत्रु राशि या नीच राशि में या अस्तंगत होंगे तो भी यह विपरीत राजयोग फलीभूत होता है।

दक्षिण भारत के ही एक अन्य ग्रन्थ **फलदीपिका** में इस विषय में बताया गया है। हमारे विचार से **फलदीपिका** का मत अधिक प्रामाणिक है।

षष्ठ, अष्टम व द्वादश भावों के स्वामी यदि परस्पर स्थान परिवर्तन कर क्षेत्र सम्बन्धी हों तो राजयोग न होकर **'दैन्ययोग'** बनेगा।

जैसे—(i) षष्ठेश व्यय में व व्ययेश षष्ठ में हो।

(ii) अष्टमेश षष्ठ में व षष्ठेश अष्टम में हो।

(iii) व्ययेश अष्टम में व अष्टमेश व्यय में हो।

उक्त तीन स्थितियों को **मन्त्रेश्वर** ने दीनताकारक नामा है। इस प्रकार ये स्थितियाँ प्रस्तुत ग्रन्थ के अनुसार बताए गए फल से ठीक उल्टा फल देने वाली हैं। अतः स्थान परिवर्तन की स्थिति में यह विपरीत राजयोग नहीं बनेगा। यदि स्थान परिवर्तन के बिना ये स्थितियाँ हों तो राजयोग बनेगा, ऐसा सावधानी से समझिए। हमारे अनुभव से भी **फलदीपिका** का मत ही अधिक प्रामाणिक सिद्ध हुआ है। मन्त्रेश्वर ने इन योगों को अलग नाम दिया है—

१. षष्ठ स्थान अशुभ ग्रहों से दृष्ट या युक्त हो या षष्ठेश दुष्ट स्थान में हो तो 'हर्ष' योग होता है।
२. यदि अष्टमेश दुष्ट स्थानों में बैठा हो तो 'सरल योग' होता है।
३. यदि व्ययेश दुष्ट स्थानों में हो तो 'विमल योग' होता है।

इन सब योगों का फल बहुत श्रेष्ठ बताया गया है। (देखें फलदीपिका अ० ६, श्लोक ५७-७०)।

भावों की केन्द्रादि संज्ञा—

लग्नास्ताम्बुखभं चतुष्टयमिदं केन्द्राभिधं कण्टकं
तत्केन्द्रात्परभं भवेत्पणफरं चापोक्लिमं तत्परम्।
भाग्यं पञ्चमभं त्रिकोणमिति तत्भ्रात्रायकर्मारिभं
नाम्ना चोपचयं जनीन्दुभवनं लग्नं च जन्मादयः॥२४॥

लग्न, चतुर्थ, सप्तम तथा दशम भावों को केन्द्र अथवा कण्टक कहते हैं। केन्द्रों से द्वितीय स्थान अर्थात् द्वितीय, पञ्चम, अष्टम तथा एकादश को पणफर कहते हैं। इनसे आगे तृतीय, षष्ठ, नवम तथा द्वादश स्थानों को आपोक्लिम भाव कहते हैं। नवम तथा पंचम भाव को 'त्रिकोण' की संज्ञा दी है। तृतीय, षष्ठ, दशम तथा एकादश भावों को उपचय (आय) भाव कहते हैं। चन्द्र जिस राशि में हो उसको जन्म राशि और लग्न को जन्म भाव अथवा प्रथम भाव, आदि भाव, आदि नाम दिए जाते हैं।

ग्रहों का विशेष स्वभाव—

रुद्रात्मा सविता पिता च जननी शक्त्यात्मकश्चन्द्रमाः
भौमेन्दूद्भवजीवशुक्ररविजास्तत्पञ्चभूतोद्भवाः।
सत्वाज्जीवकवीन्दुजाश्च रजसो भौमस्तमोजः शनिः
सूर्येन्दू न तु मारकावहितपौ रन्ध्राधिपावार्तिदौ ॥ २५ ॥

सूर्य से महेश, जीवात्मा, पिता का, चन्द्र से भवानी तथा माता का विचार करना चाहिए। मंगल बुध, गुरु, शुक्र तथा शनि पृथ्वी आदि पंच भूतों से उत्पन्न हैं। (अर्थात् इनका क्रमशः प्रतिनिधित्व करते हैं)। गुरु, शुक्र तथा बुध सात्त्विक हैं। मंगल राजसिक तथा शनि तामसिक है। सूर्य तथा चन्द्र यदि छठे अथवा आठवें भाव के स्वामी हों तो भी मारक नहीं होते। किन्तु कष्ट देते हैं।

सूर्य व चन्द्रमा को पराशर मत से भी मारकेशत्व दोष नहीं लगता। यहाँ यह विशेष बात बताई गई है कि षष्ठ व अष्टम स्थानों के स्वामी यदि चन्द्रमा या सूर्य हों तो भी वे दुःस्थानेशत्व दोष के भागी नहीं होते हैं। केवल कष्टप्रद होते हैं।

चन्द्राधियोग विचार—

षट्सप्ताष्टमभेषु सौम्यखचरास्त्विन्दोः स्थिता नो खला
राजा स्यादथवा समो यदि तदा जातो महासौख्यवान्।
दीर्घायुर्विजयान्वितोऽखिलयशो विद्याविनोदान्वितो
दारापुत्रसुहृद्गृहादिविविधानन्दास्पदो यानवान् ॥ २६ ॥

यदि चन्द्रमा से छठे, सातवें तथा आठवें भाव में नैसर्गिक शुभ ग्रह स्थित हों और उन स्थानों में कोई पापी ग्रह न हो तो जातक राजा अथवा राजा सदृश महान् सुखी, दीर्घायु, विजयी, यशस्वी, विद्वान्, स्त्री, पुत्र, बन्धु, घर, सवारी आदि सुख-सामग्री से युक्त होगा।

उपरोक्त श्लोक में चन्द्राधियोग का वर्णन हुआ है। इस योग की महान् शुभता है। इस शुभता में कारण चन्द्र को अतीव बल की प्राप्ति है, क्योंकि चन्द्र लग्न रूप है। उसका बलवान् होना लग्न का बलवान् होना समझा जायेगा। बलवान् लग्न तो राज्य धनादि देता ही है। यहां

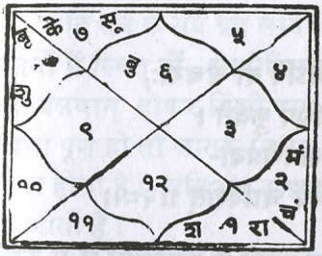
चन्द्र को शुभ ग्रहों की स्थिति से बल मिल रहा है, क्योंकि जो शुभ ग्रह चन्द्र से सप्तम स्थित होगा वह अवश्य चन्द्र पर अपनी पूर्ण दृष्टि द्वारा चन्द्र पर अपना शुभ प्रभाव डालेगा। इसी प्रकार षष्ठस्थ शुभ ग्रह की दृष्टि चन्द्र से बारहवें स्थान पर और चन्द्र से अष्टमस्थ शुभ ग्रह की दृष्टि चन्द्र से द्वितीय स्थान पर पड़ेगी जिसके फलस्वरूप चन्द्र आस-पास से भी मानो शुभ मध्यत्व में आ जायेगा। अत: चन्द्राधियोग की महिमा इसीलिए है कि इस योग में चन्द्र बहुत शुभ प्रभाव में आ जाता है। इस योग में इतना ध्यान रखना चाहिये कि एक तो यदि चन्द्र को पक्ष बल भी प्राप्त हो अर्थात् चन्द्र सूर्य से दूर हो (न्यून से न्यन ६ तिथि दूर होना चाहिए) तो चन्द्र और भी अधिक शुभ फल धनादि देगा। दूसरे, छठे, सातवें, आठवें स्थान में स्थित शुभ ग्रह भी बलवान् हों। ऐसे सर्वोत्तम योग में उत्पन्न व्यक्ति अवश्य लाखों का स्वामी होता है। दो-चार हजार रुपया मासिक आय तो उसके लिए साधारण बात है।

नवमेश से सम्पत्ति ज्ञान का अनूठा प्रकार—

अर्काग्निनागचटस्तनुर्जननटः खेटायनं स्युस्तनो-
श्चन्द्राद्भाग्यपयोः कलैक्यमिनहृच्छिष्टं विधोर्यद्गृहम्।
तद्राशौ तु विपापशोभनखगे कोटीश्वरं तन्वते,
चेत्पापे तु सहस्रशः खलखगे तुङ्गेऽपि कोटीश्वरम् ॥२७॥

३०, १६, ६, ८, १०, १२ तथा १ कला (अथवा रश्मि) क्रमशः सूर्यादि ग्रहों की होती हैं। लग्न से नवमेश तथा चन्द्र लग्न से नवमेश की कलाओं से युक्त करो। योग को १२ से विभक्त करो। जो शेष बचे उसे चन्द्र लग्न से गिनो। यदि यह राशि शुभ ग्रह से युक्त हो और पाप ग्रह के प्रभाव से हीन हो तो मनुष्य करोड़पति होता है। यदि उस राशि में केवल पापी ग्रह हो तो सहस्रों की आय वाला होता है और यदि वह पापी ग्रह उच्च राशि में स्थित हो तो भी करोड़पति होता है।

उदाहरण के लिये "व्यवसाय का चुनाव" नामक हमारी पुस्तक की कु० संख्या १६ की प्रतिलिपि यहाँ दी जा रही है। इस कुण्डली का जातक एक लाखोंपति सज्जन है। यहाँ लग्न से नवमेश शुक्र है और चन्द्र से नवमेश शनि। दोनों की रश्मियां क्रमशः १२ तथा १ हुई। अतः योग हुआ १३, बारह से विभाजित करने से शेष रहा १। अतः हमें



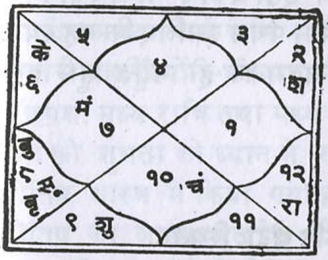
चन्द्राधिष्ठित राशि हो को देखना है। उसमें मंगल की स्थिति है, परन्तु दो शुभ ग्रह गुरु तथा शुक्र भी देख रहे हैं। अतः यह स्थान पर्याप्त बली है। श्लोक का आशय सम्भवतया स्थान-विशेष की शुभता से है, वह यहां पर्याप्त है। पाठक गण स्वयं अपने अनुभव से इस श्लोक की सत्यता का अनुभव करें।

उपरोक्त पुस्तक में से ही निम्नलिखित एक और कुण्डली एक लाखोंपति की उद्धृत की जा रही है।

यहां लग्न से नवमेश गुरु है और चन्द्र से नवमेश सूर्य। दोनों की रश्मियां क्रमशः १० और ३० हैं। दोनों का योग हुआ ४०। बारह से विभाजित करने पर शेष रहे ४। चन्द्र से चतुर्थ स्थान में मीन राशि पड़ी। वह खाली है, परन्तु उस पर गुरु की दृष्टि है। साथ ही शनि की भी दृष्टि है। अतः योग बना, परन्तु उच्च श्रेणी का नहीं।



(३) उसी पुस्तक में से एक करोड़पति की कुण्डली भी देखिए। यहाँ लग्न से नवमेश गुरु हुआ और चन्द्र से नवमेश बुध। दोनों की रश्मियां क्रमशः १० तथा ८ हैं। दोनों के योग १८ को १२ से विभाजित करने से शेष बचा ६। चन्द्र से छठे स्थान को देखा तो वहाँ मिथुन राशि है और उस पर केवल शुभ ग्रह और उसके मित्र शुक्र की दृष्टि है। अतः मिथुन पर प्रबल शुभ और केवल शुभ प्रभाव पाया गया, जिसके फलस्वरूप व्यक्ति का करोड़पति होना नियमानुकूल निकला।



त्रिकोणेशादि से सम्पत्ति का ज्ञान—

द्वेष्वायाङ्कगृहेश्वराः कतिपयाः सर्वेऽपि वा खेचराः,
सम्बन्धत्रयगा बलेन सहिता लक्षाधिपं कुर्वते ।
षष्ठाष्टव्ययभावपैर्यदि भवेत्तत्र क्षयर्णप्रदा-
स्तत्तत्खेटदशाविपाकसमये शत्रोर्भयं चादिशेत् ॥२८॥

द्वितीय, पंचम, एकादश तथा नवम भावों के स्वामियों में से कुछ अथवा सभी यदि परस्पर युति, दृष्टि अथवा व्यत्यय द्वारा सम्बन्ध रखते हों और बलवान् भी हों, तो जातक को लखपति बनाते हैं। परन्तु यदि इनके साथ छठे, आठवें अथवा बारहवें भाव के स्वामियों का भी सम्बन्ध हो जाये तो हानि तथा ऋण का योग बन जाता है और ऐसी स्थिति में उपरोक्त चार भावों के स्वामियों की दशा में शत्रु से भय कहना चाहिये।

इस श्लोक में दो त्रिकोण स्थानों के साथ-साथ दो धन स्थानों का उल्लेख है। यहाँ केन्द्र स्वामियों का उल्लेख नहीं, फिर भी लखपति बनने का योग है। यहाँ भी कारण वही सादृश्य का सिद्धान्त है जिसका उल्लेख हम पहले से करते चले आ रहे हैं। इस सादृश्य सिद्धान्त के अनुसार मान लीजिए कि द्वितीयेश और एकादशेश दोनों केन्द्र में इकट्ठे स्थित होकर बलवान् हैं तो यह योग महान् धनदायक योगों में से एक योग बनाता है, क्योंकि धनेश भी धन का और एकादशेश भी धन का द्योतक है। दोनों की युति धनवर्द्धक है। इसी प्रकार भाग्य स्थान भी धनदायक समझना चाहिए और पंचम भी। पंचम इसलिए कि यह स्थान नवम भाव से नवम होने के कारण नवम की ही भाँति शुभ तथा धनदायक है।

एक अन्य राजयोग—

चेल्लग्नादिचतुष्टये पणफरे सर्वेऽपि खेटाः स्थिताः
चापोक्लीबगृहे न चेदिह भवेज्जातो नरो भूपतिः ।
चेन्न क्रूरयुतेक्षिताः शुभखगाश्चन्द्रोऽपि पूर्णस्तथा
स श्रीमान् सुजनेडितो बलयुतः पूर्णे न चेदूनता ॥ २६ ॥

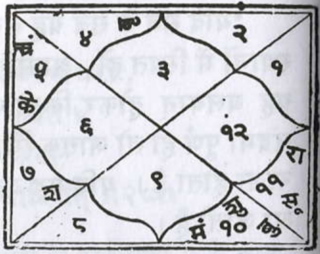
*यदि सब के सब ग्रह लग्नादि केन्द्रों अथवा द्वितीय भावादि पणफर स्थानों में स्थित हों, आपोक्लिम भावों में कोई भी ग्रह न हो और शुभ ग्रह बलवान् होकर किसी पाप द्वारा युक्त, अथवा दृष्ट न हों और चंद्रमा पूर्ण हो तो जातक ऐश्वर्य से युक्त, सज्जनों में प्रतिष्ठा पाने वाला राजा होता है। यदि ग्रह बलवान् न हो तो व्यक्ति के स्तर में न्यूनता आ जाती है।

जन्म समय के भेद से राजयोग—

रात्र्यर्द्धाद्द्युदलात्परं यदि भवेज्जातो द्विनाड्यात्मके
काले स्यान्नृपतिर्जितारिरनिशं स्वाचारविद्यान्वितः।
वित्ते तूच्चखगे स्वतुङ्गखगाद् दृष्टेऽपि कोटीश्वरः
स्वर्क्षस्तेन यदीक्षिते स हि भवेल्लक्षाधिकारी सुखी॥ ३० ॥

यदि मध्यरात्रि अथवा दिनार्द्ध से दो घड़ी बाद किसी व्यक्ति का जन्म हो तो वह आचार तथा विद्या से युक्त, शत्रुओं पर विजय पाने वाला राजा होता है। ऐसी स्थिति में यदि द्वितीय भाव में कोई उच्च ग्रह स्थित हो और उसको एक दूसरा उच्च ग्रह देखता हो तो मनुष्य करोड़पति होता है। यदि वह देखने वाला ग्रह स्वक्षेत्री हो ता करोड़पति न होकर लखपति होता है।

यत्र-तत्र ज्योतिष ग्रंथों में यह सिद्धान्त पढ़ने को मिलता है कि अर्ध दिन अथवा अर्ध रात्रि में जन्म हो तो वह शुभ होता है। हमारे अवतारी महापुरुषों—भगवान् श्रीकृष्ण तथा भगवान् राम का प्राकट्य भी क्रमशः मध्य रात्रि तथा मध्य दिन में हुआ था। हो सकता है कि इन जन्मों की शुभता को ध्यान में रखते हुए इस सिद्धान्त का प्रतिपादन ज्योतिष शास्त्र में किया गया हो। परन्तु इस सिद्धान्त के पीछे कोई ज्योतिष का आधारभूत हेतु भी काम कर रहा होगा—ऐसी हमारी मान्यता है। संभव है कि ऐसे जन्मों में सूर्य की केन्द्र आदि स्थिति इसमें कारण हो। अस्तु, इस श्लोक में उल्लिखित नियमों का एक अच्छा उदाहरण श्री मोरार जी देसाई की निम्नलिखित कुण्डली उपस्थित करती है। आपका जन्म २६ फरवरी, १८६६ को बुलसर के समीप



भदेली में, जोकि अक्षांश २०-३६ तथा रेखांश ७२-५६ पर है, दिन के एक बजे के लगभग स्थानीय समय पर हुआ। सूर्योदय ६ बजकर २३ मिनिट बनता है और जन्म लगभग मध्याह्न से ढाई घड़ी के बाद का है। अतः काफी शुभ है। यहाँ द्वितीय स्थान में एक उच्च ग्रह गुरु स्थित है और उसको एक नहीं दो उच्च ग्रह मंगल तथा शनि देख रहे हैं। अतः श्लोक के नियम बहुत सीमा तक पूरे हो रहे हैं जोकि आपके उच्च स्तरीय व्यक्तित्व तथा धनाढ्य होने के परिचायक हैं।

चरादि राशि व छादकादि ग्रहों के सम्बन्ध से फल—

प्राबल्यं चरभात् स्थिरं स्थिरगृहात्स्याद्द्विस्वभावं तथा
दृष्टिश्छादकवेधकस्थितभवात्तद्वच्च राशित्रये।
आद्या द्वौ त्रिषु मध्यमास्त्रिषु ततः स्वान्त्या त्रिषूक्तक्रमात्
द्रेक्काणेष्वपि पूर्णमध्यमकृशं दद्युः फलं खेचराः ॥ ३१ ॥

चर राशि की अपेक्षा स्थिर राशि बलवान् होती है, और द्विस्वभाव राशि स्थिर राशि से भी बलवान् होती है। यदि दो ग्रह किसी तीसरे ग्रह से छादक अथवा बेधक ग्रह की स्थिति में (देखिए खण्ड चतुर्थ, श्लोक २०) होकर उस तीसरे ग्रह पर दृष्टि डाल रहे हों तो देखने वाले ग्रहों की दृष्टि में उत्तरोत्तर अधिक बल आता चला जावेगा जबकि वे (पूर्वोक्त नियमानुसार) चर, स्थिर अथवा द्विस्वभाव राशि में हों और फलतः जिन तीन भावों में ग्रह स्थित हैं उनके फल में भी वृद्धि होगी। यदि पूर्वोक्त तीनों ग्रह जिस द्रेक्काण में स्थित हैं उसकी स्थिति ऐसी हो कि वे चर राशि में हो तो पहले द्रेक्काण में हो, यदि स्थिर राशि में हो तो द्वितीय द्रेक्काण में हो, और यदि द्विस्वभाव राशि में हो तो अन्तिम द्रेक्काण में हो तो उनका पूर्ण फल कहना चाहिये। जबकि वे चर राशि के द्वितीय द्रेक्काण में स्थिर राशि के अंतिम द्रेक्काण में और द्विस्वभाव राशि के प्रथम द्रेक्काण में होंगे तो फल मध्यम होगा। जब वे ग्रह चर राशि के अन्तिम द्रेक्काण में, स्थिर राशि के प्रथम

द्रक्काण में और द्विस्वभाव राशि के मध्य द्रेक्काण में होंगे तो फल बहुत थोड़ा होगा।

योगकारक ग्रहों के अंशों की विशेष भूमिका—

योगस्याप्यवयोगजस्य विवृतौ यद्योगकर्त्रोर्द्वयो-
मन्दोग्रेप्यथ पृष्ठतश्चलखगस्तद्द्वादशाँशान्तरे।
रूपं शून्यलवे भवेद्रविलवे खं चानुपातात्फलं
सूर्यांशैश्चलखेचरेऽग्रलवगे तत्रेष्टविध्वंसकः ॥ ३२ ॥

जब दो ग्रह कोई अच्छा योग अथवा बुरा योग बनाते हों—यह योग तब बनेगा जबकि उन दो ग्रहों की स्थिति (राशि अथवा केन्द्र के अंश गणना में) में १२ अंशों से अधिक अन्तर न हो और मंद गति वाला ग्रह शीघ्र गति वाले ग्रह से अंशों में आगे स्थित हो। यह योग पूर्ण समझा जाएगा, जबकि उन दो ग्रहों के अंशों का अन्तर हो। जब यह अन्तर १२ अंश हो तब खण्डित समझा जाएगा। १२ अंशों से कम अन्तर का फल अनुपात से होगा। यदि शीघ्र गति वाला ग्रह मन्द गति वाले ग्रह से १२ अथवा अधिक अंश आगे हो तो मनोरथ के नाश का योग होता है।

इस श्लोक में ताजक शास्त्र के इत्थसाल योग का वर्णन है। इत्थसाल, इन्दुवार, इक्कबाल, इसराफ आदि ताजक योगों के लिए **ताजक नीलकंठी** आदि ग्रन्थों का अवलोकन करना चाहिए। इत्थसाल शब्द अरबी भाषा का है जिसका अर्थ है मुत्तसिल होना अर्थात् समीप होना। यह समीपता ग्रहों के अशों के दृष्टिकोण से है न कि उनकी युति के दृष्टिकोण से।

यहाँ भी संक्षेप से इस योग के सम्बन्ध में कुछ लिखते हैं। इस सन्दर्भ में ग्रहों के दीप्तांशों का जानना आवश्यक है। प्रत्येक ग्रह के दीप्तांश नीचे दिए गए हैं।

सूर्य के १५, चन्द्रमा के १२, मंगल के ८, बृहस्पति के ९, शुक्र के ७ और शनि के ९, प्रायः प्रश्न शास्त्र में प्रश्न उठते हैं। जैसे—हमें स्त्री को प्राप्ति कब होगी ? ऐसे प्रश्नों में दो ग्रहों का काम पड़ता है। एक लग्नेश और दूसरा कार्येश। जैसे स्त्री सम्बन्धी प्रश्न होने से कार्येश सप्तमेश हो जावेगा। सबसे पूर्व हम देखेंगे कि गति की दृष्टि से लग्नेश और कार्येश

कैसे ग्रह हैं। दोनों में से जो शीघ्रतर गति वाला है उसको दूसरे ग्रह से पीछे रहना होगा, क्योंकि शीघ्र गति के कारण उसी को दूसरे ग्रह को प्राप्त करना है। मान लीजिए कि उपरोक्त स्त्री सम्बन्धी प्रश्न में लग्नेश चन्द्रमा है और सप्तमेश शनि और लग्न कर्क और साथ ही मान लीजिए कि प्रश्न कुण्डली में चन्द्रमा चार अंश का सप्तम भाव में मकर राशि में स्थित है और सप्तमेश शनि वृषभ राशि में ११ अंश का होकर बैठा है तो ऐसी स्थिति में चन्द्रमा जो कि शनि की अपेक्षा तीव्र गति रखता है वह शनि से पीछे भी है और उसके अंश भी शनि के अंशों से कम हैं। साथ ही आप देखेंगे कि चन्द्रमा के दीप्तांश १२ होने से उसकी पहुंच १२+४=सोलह अंश तक है और शनि इन्हीं १६ अंशों के भीतर-भीतर स्थित है। इस प्रकार इत्थसाल योग की सारी शर्तें पूरी होने के कारण हम कहेंगे कि चन्द्र और शनि में इत्थसाल योग हैं और विवह हुआ ही चाहता है। इसी प्रकार लग्नेश और दूसरे भावों के बीच में इत्थसाल देखकर उस कार्य की सफलता अथवा प्राप्ति कहनी चाहिए।

चन्द्र की दृष्टि से योगों की शक्ति में वृद्धि—

तद्योगप्रदयोर्यदेकमपि वा चन्द्रः प्रपश्येद्बली
स्थानात्प्रोक्तलवैर्विशेषफलकृत्षष्ठाष्टरिःफान्विना।
पश्यन्त्येव खगाः समस्तभवनान्युच्चे स्वभे चोत्तमाः
तत्राधीष्टगृहे समा इतरधा हीनाः फलप्रापणे ॥ ३३ ॥

यदि बलवान् होकर चन्द्र उपरोक्त १२ अंशों के अन्दर योग बनाने वाले दो में से एक भी ग्रह को देखता हो तो योग का विशेष फल होता है, परन्तु चन्द्र त्रिक भवन में न होना चाहिए। दृष्टि डालने वाले ग्रह का प्रभाव उत्तम होगा जब वह उच्च अथवा स्वक्षेत्र में हो। जब वह अधिमित्र के घर में हो तो मध्यम और इनसे अतिरिक्त स्थान में हो तो थोड़ा फल होगा।

यहाँ भी ताजक शास्त्र के एक अन्य योग काम्बूल का वर्णन है। चन्द्र की उक्त दृष्टि से काम्बूल योग में परिपक्वता आ जाती है। यह योग ताजक शास्त्र में उत्तम योगों में से एक उत्तम कार्य की सिद्धि करने वाला योग माना जाता है।

आठ पदों से फल का विशेष विचार—

भावेशो भवनाच्च यावति गृहे तिष्ठेत्पदं तावती-
त्यक्तं तत्पदतः शुभाशुभवशात्तद्ध्रासवृद्धी वदेत् ।
एवं लग्नधनाम्बुधीस्मरगुरुक्ष्मेशैश्च रिःफात्पदा
न्यष्टौ रिःफगृहाद् भवेदुपपदं दारापदं सप्तमात् ॥ ३४ ॥

जिस भाव का स्वामी उस भाव से जितनी दूरी पर होता है उस ग्रह से उतनी दूरी पर आगे उस भाव का पद होता है। उस पद से उस भाव की हानि तथा लाभ की हानि तथा लाभ को कहना चाहिए। इस प्रकार लग्न, धन, चतुर्थ,, पंचम, सप्तम, नवम, दशम, तथा द्वादश इन आठ के पद निकालने चाहिएं। प्रत्येक भाव के पद को उपपद कहते हैं और सप्तम भाव के पद को दारापद।

यहाँ पर जैमिनीय सूत्रों के आधार पर पद का निरूपण किया गया है। सभी भावों के पद होते हैं। पद क्या है ?

(i) जिस भाव का पद जानना हो, उसके स्वामी को देखिए कि वह कहाँ स्थित है ?
(ii) अब भाव से भावेश तक देखिए कि कितने भावों की उन दोनों के बीच में दूरी है।
(iii) जितने भावों की दूरी हो, भावेश से आगे उतने ही भाव गिनिए। जहाँ दूरी के तुल्य भाव गणना समाप्त हो जाए, वही पूर्वोक्त भाव का पद है।

उदाहरणार्थ लग्न का पद जानना है। लग्न धनु है। बृहस्पति पंचम भाव में मेष में स्थित है। लग्न से लग्नेश पंचम में है। अत: लग्नेश (पंचम स्थान) से पंचम स्थान में अर्थात् नवम स्थान में लग्न का पद है।

किसी भाव से सप्तम स्थान में भावेश स्थित हो तो वही भाव भाव का पद भी होगा। जैसे लग्नेश यदि सप्तम स्थान में हो तो सप्तम से सप्तम स्थान अर्थात् पुन: लग्न स्थान स्वयं लग्नपद भी होगा। (देखें जैमिनीय सूत्र अ० १, पा० १, सूत्र २९-३१)।

उत्तरकालामृतकार ने बताया है कि तृतीय, षष्ठ, अष्टम व एकादश इन चार स्थानों को छोड़कर शेष आठ स्थानों (केन्द्र, त्रिकोण, द्विर्द्वादश) के ही पद जानने चाहिएँ। अर्थात् इन्हीं अष्टपदों के आधार

पर फलादेश करना होता है। दक्षिण भारतीय ग्रन्थों में लग्न के साथ-साथ पद अर्थात् आरूढ़ से भी फलादेश की विधि बताई गई है। मूलतः यह प्रक्रिया जैमिनी मुनि के मतानुसार है।

लग्नपद से फल विचार—

सः स्याल्लग्नपदे शुभे शुभयुते चेद्भोगभाग्यैर्युत-
स्तस्मात्कोणचतुष्टये शुभखगे राजा महापण्डितः।
क्रूरस्तत्र विपर्यया यदि पुनः षष्ठाष्टरिःफषु वा
ह्येवं सर्वपदैः शुभाशुभफलं सम्यग्विचार्यादिशेत्॥ ३५॥

यदि लग्न का पद शुभ हो तथा शुभ ग्रह से युत हो तो मनुष्य भोग्य सामग्री तथा भाग्य से युक्त है। यदि लग्न पद से केन्द्र त्रिकोण में शुभ ग्रह स्थित हो तो राजा तथा महान् विद्वान् होता है। क्रूर ग्रह यदि लग्न पद से केन्द्र त्रिकोण में हों अथवा उससे त्रिक भाव में हों तो उल्टा अशुभ फल होता है। इस प्रकार सब पदों से शुभ-अशुभ फल का विचार करके फल कहना चाहिए।

द्वितीय पंचम तथा नवम के पदों का फल—

तद्वत्पुत्रकुटुम्बभाग्यपदतो भावर्गुरोर्लग्नपात्
तस्माच्चोपपदा वदेच्छुभखगैर्योगेक्षणात्पुत्रताम्।
नो चेत्पापयुतेक्षणादिकमिह स्यात्पुत्रबाहुल्यता
तत्रौजोऽधिकखेचरैरनुमियात् पुत्रींश्च पुत्रानपि॥ ३६॥

इसी प्रकार पंचम, द्वितीय तथा नवम भावों के पद (आरूढ़) भावों से, गुरु तथा लग्नेश से लग्न के उपपद से तथा इन सब पर शुभ-अशुभ ग्रहों के प्रभाव से पुत्र की प्राप्ति का विचार करें। यदि भावों पर पापी ग्रहों की युति अथवा दृष्टि का प्रभाव न हो तो बहुत पुत्रों की प्राप्ति कहनी चाहिए। इन भावों पर पुरुष तथा स्त्री ग्रहों के प्रभावाधिक्य से पुत्रों तथा पुत्रियों की संख्या का अनुमान करना चाहिए।

बुध शनि व मंगल का पद पर प्रभाव—

पूर्वोक्तेषु पदादिकेष्वपि बुधार्क्यारास्तदीशैर्युता
स्ते खेटाश्च मिथो गृहांशकयुता वैकत्र मन्देज्ययोः।
योगाद्वा मृतपुत्रकः खभतदीशावार्कियुक्तेक्षितौ
चेत्स्यात्स्वीकृतपुत्रकस्त्विति जगुश्चानेकदैवं बुधाः॥३७॥

पूर्वोक्त पंचमादि भावों आदि के पदों में बुध, शनि अथवा मंगल की युति हो अथवा उन पदों के स्वामियों से इन ग्रहों की युति हो, अथवा ये तीन ग्रह उन भावों की राशि तथा नवांश राशि में स्थित हों अथवा शनि और गुरु एकत्र स्थित हों तो पुत्रों की मृत्यु कहे। दशम भाव तथा दशमाधिपति यदि शनि से युक्त अथवा दृष्ट हो तो दत्तक पुत्र की प्राप्ति बुद्धिमान् कहते हैं।

पद से स्त्री का विचार—

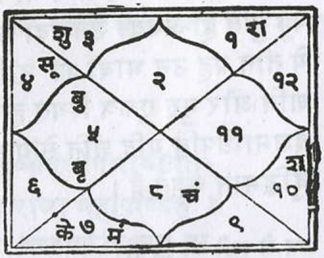
आदौ सप्तमभावतस्तनुगृहाद्भार्या ततस्त्वष्टमाद्
द्वितीयां च तथा पुनः पुनरपीत्येवं मृताः स्युः खलैः।
लग्नादष्टमगैः शुभैर्न हि तथा जीवस्य योगेक्षणात्
सोम्यैर्जीवयुतास्तदीयतनयान् वृत्तं गुणाद्यं दिशेत् ॥३८॥

लग्न से सप्तम भाव द्वारा भार्या का तथा सप्तम से अष्टम अर्थात् द्वितीय भाव द्वारा उसकी आयु का विचार करे। द्वितीय भाव में ग्रहों की स्थिति से भार्याओं की बार-बार मृत्यु होती है। लग्न से अष्टम स्थान में शुभ ग्रहों के होने से भार्या की मृत्यु नहीं होती, इसी प्रकार द्वितीय भाव में गुरु की युति अथवा दृष्टि से भार्या की मृत्यु नहीं होती, ऐसा कहना चाहिए। गुरु से युत शुभ ग्रहों द्वारा उसके पुत्रों का चरित्र तथा दूसरे गुण कहने चाहिएं।

इसी प्रकार ये गुण गुरु के स्थान से पंचम स्थान पर विचार द्वारा कहने चाहिएँ।

द्वितीय भाव क्योंकि स्त्री के भाव (अर्थात् सप्तम) से अष्टम होता है, अतः यह स्त्री की आयु का भाव है। अतः द्वितीय भाव में पापियों की स्थिति स्त्री की बार-बार मृत्यु का कारण हो सकती है। 'कुज' अथवा 'माङ्गलिक' योग में भी अष्टम स्थान में मंगल की स्थिति तथा पुरुष कुण्डली में क्रमशः जीवन को हानि देने वाली भी अधिकतर इसीलिए मानी जाती है, क्योंकि अष्टमस्थ मंगल द्वितीय को पूर्ण दृष्टि से प्रभावित कर स्त्री अथवा पुरुष के जीवन-साथी (सप्तम भाव) की आयु (द्वितीय भाव) को हानि पहुँचाता है। आगे एक महिला की कुण्डली दी है जिसके पति का देहान्त उनके विवाह के तुरन्त बाद हो गया था। पति की आयु का प्रश्न है। अतः सप्तम से अष्टम अर्थात् द्वितीय भाव पर

विचार करना होगा। द्वितीयेश बुध पति कारक गुरु के साथ बैठा है और दोनों पर राहु की पूर्ण पंचम दृष्टि है। चूंकि राहु मंगल से दृष्ट है, अतः राहु की दृष्टि में मंगल का मारणात्मक प्रभाव भी है। इस प्रकार राहु तथा मंगल द्वारा पति की आयु को हानि



पहुंच रही है। पति भाव का स्वामी पहले ही अपने स्थान से द्वादश में तथा लग्न से छठे एवं केतु से युक्त शनि से दृष्ट और इसीलिए निर्बल है।

एवं रिःफगृहाद्भवेदुपपदं तत्रैव सौम्ये तदा
तज्जाया हि सुरूपिणी गुणवती सा स्याच्चिरञ्जीविनी।
क्रूरे नीचगते कलत्रयुगलं नष्टं स्वतुङ्गे खले
बह्वीर्जीवयुताः शुभेक्षणयुते नो चेन्न योगः पुनः॥ ३९॥

इसी प्रकार स्त्री के भाव से द्वादश अर्थात् षष्ठ भाव का पद अर्थात् उपपद लें। उस सप्तम के उपपद में यदि शुभ ग्रह हो तो व्यक्ति की स्त्री सुन्दरी, गुणवती और दीर्घायु होगी। यदि उसमें नीच क्रूर ग्रह हों तो उसकी दो भार्याओं के जीवन की हानि हो; और यदि वहाँ पापी ग्रह अपनी उच्च राशि में शुभ ग्रहों से युक्त अथवा दृष्ट हो तो दीर्घ आयु वाली हो। यदि शुभ दृष्टि तथा शुभ योग न हो तो पुनः विवाह का योग होता है।

पदों से फल जानने के विषय में विशेष नियमों के लिए जैमिनीय सूत्रों के अध्याय एक के पाद ३-४ का अध्ययन करें।

दारारूढवशाद्वदेदुपपदात्तामादिभार्यां ततः
तत्तन्नैधनभात्स्मराख्यपदतो यावच्च पापादिकम्।
तावन्नाश इति ब्रुवन्ति मुनयो यत्राधिकं शोभनं
तत्र स्यात्कुलवर्धनी च सुखदा चायुष्मती भोगदा॥ ४०॥

भार्या के सम्बन्ध में सब बातें दारा पद तथा दारा उपपद से जाननी चाहियें। द्वितीय भार्या के सम्बन्ध में बातें दारा पद तथा दारा उपपद से अष्टम भाव के विचार से कहनी चाहियें। उक्त अष्टम भावों

में दारा पद की अपेक्षा जितना अधिक पाप प्रभाव हो, उतनी ही अधिक संख्या में स्त्रियों की मृत्यु कहनी चाहिए। जहाँ दारा पद अधिक शुभ हो वहाँ वह स्त्री कुल को बढ़ाने वाली, सुखदायिनी, दीर्घ आयु वाली तथा भोगप्रदा होती है।

भाइयों की संख्या का विचार

लग्नाद्व्युत्क्रमतस्तृतीयभवने भावांशकात्सोदरान्
ज्येष्ठांस्तत्क्रमशस्तृतीयगृहतस्तद्वत्कनिष्ठान्वदेत् ।
खस्वाद्भावनवांशकाद्गतनवांशेभ्यः क्रमादेष्यकैः
पुंस्त्रीभेदविधिः शुभाशुभबलाद्वृद्धिक्षयौ सङ्ख्यया ॥४१॥

एकादश भाव में उदित नवांश संख्या से बड़े भाइयों की और तृतीय भाव में उदित होने वाली नवांश संख्या से छोटे भाइयों की संख्या को कहे। भाइयों अथवा बहनों का जन्म पुरुष अथवा स्त्री ग्रहों के बलानुसार होता है तथा उनकी संख्या शुभ अशुभ ग्रहों के बल से कहनी चाहिए।

आत्मकारक के साथ अन्य ग्रहों की युति का फल

सूर्यादिद्युसदां लवाधिकखगस्तज्जातके सोऽधिकः
प्रोक्तस्तत्सहितो रविर्नृपगृहे तन्त्रादिनिर्वाहकः ।
पूर्णेन्द्वाऽसुरपूजितौ बहुधनी विद्वान्महाभोगवान्
भौमस्त्वायुधभृच्च भूपतिरपि स्याद्धातुवादी शठः ॥४२॥

कुण्डली में सूर्यादि ग्रहों में जिसके राशि को छोड़कर अंश कला सबसे अधिक हों उसे अधिक ग्रह कहते हैं। यदि अधिक ग्रह के साथ सूर्य हो तो राजा को सलाह देने वाला मन्त्रदाता (Adviser) होता है। यदि वह अधिक ग्रह पूर्ण चन्द्र तथा शुक्र के साथ हो तो बहुत धनी, विद्वान्, महान् योगी होता है। यदि उसके साथ मंगल हो तो शस्त्र धारण करने वाला (Soldier), धातु का कार्य करने वाला, शठ परन्तु कभी (बली होने पर) राजा भी होता है।

जिस ग्रह की परिभाषा इस श्लोक में अधिक ग्रह के रूप में की गई है, उसी को जैमिनीय सूत्रों में आत्म-कारक के नाम से पुकारा गया है। सूत्र इस प्रकार है—

आत्माधिकः कलादिभिर्नभोगः सप्तानाम् अष्टानां वा

जैमिनीय सूत्र अध्याय १, पाद १, सूत्र ११

सूर्यादि सातों ग्रहों अथवा राहु सहित आठों ग्रहों में सर्वाधिक गतांशों वाला ग्रह आत्मकारक है। इससे कम अंशादि वाला अमात्य-कारक, इसी प्रकार क्रमशः भ्रातृकारक, मातृकारक, पुत्रकारक, जाति कारक व सबसे कम अंशादि वाला स्त्रीकारक होता है। इन कारकों को चरकारक कहते हैं। जैमिनी मुनि ने फलादेशी में इन चरकारकों को बहुत महत्त्व दिया है। उनके बहुत से मुख्य सिद्धान्त तो आत्मकारक के संबंध से फलादेश का निर्देश करते हैं।

सौम्यः शिल्पचमत्कृतौ घटपटव्यापारदक्षो वणि-
**ग्जीवो वैदिककर्मको द्विजवरः स्याद्वेदवेदाङ्गवित्। **
दीर्घायुर्भृगुजोऽङ्गनारतिपरो मन्दोऽखिलव्यापको
राहुर्वाऽपि तथा ध्वजो विषभिषग्लोहादिकार्ये पटुः ॥४३॥

यदि अधिक ग्रह के साथ बुध हो तो शिल्प (Sculpture), घट (Pottery) पट (कपड़ा) व्यापार में चतुर; यदि गुरु उसके साथ हो तो वेद-वेदांग को जानने वाला, उत्तम ब्राह्मण और कर्मकाण्डी होता है। उसके साथ यदि शुक्र हो तो दीर्घजीवी और कामासक्त होता है, यदि उसके साथ शनि हो तो बहुत प्रकार के कार्य करने वाला, यदि राहु अथवा केतु हो तो विष से चिकित्सा करने वाला और लोहे आदि के कार्य में चतुर होता है।

आत्मकारक से अन्य भावों में स्थित ग्रह—

तस्मात्स्वं रविभार्गवेक्षणयुतं स्याद्राजभृत्यो नर-
स्तार्तीये तु खले पराक्रमयुतः सौम्येऽतिभीतो भवेत्।
तद्बन्धौ भृगुदृष्टियुग्जलधिजे स स्यान्महानाविकः
तस्मिन्निन्दुसितेक्षणस्थितियुते सौधादिसौख्यान्वितः ॥४४॥

उस अधिक ग्रह से द्वितीय भाव यदि सूर्य तथा शुक्र से युत अथवा दृष्ट हो तो मनुष्य राज्य कर्मचारी होता है। यदि उससे तृतीय भाव में पापी ग्रह हो तो शूरवीर, यदि शुभ हो तो डरपोक, यदि उस अधिक ग्रह

से चतुर्थ भाव में चन्द्र शुक्र से दृष्ट हो तो बड़ा नाविक होता है। वही चतुर्थ भाव यदि चन्द्र तथा शुक्र से युक्त दृष्ट हो तो अधिक मकानों तथा अन्य सुविधाओं के सुख से सुखी होता है।

आत्मकारक के पद में उच्चग्रह कुष्ठदाता —

आरूढाद्यदि बन्धुगावपि दृशा स स्यान्महासौधवान्
तस्मिन्नुच्चखगेऽपि तद्वदिति च श्वेतादिकुष्ठार्दितः।
एवं तद्गृहतो नवांशकवशात्तद्द्वादशांशाच्च वा
तन्न्यूनांशगखेचरादपि वदेद्वृत्तिं तथा पौरुषम्॥४५॥

यदि अधिक ग्रह के पद से चतुर्थ स्थान चन्द्र तथा शुक्र से युक्त दृष्ट हो तो भी मनुष्य बड़े मकानों का स्वामी होता है। उस अधिक ग्रह के पद में उच्च ग्रह पड़ जाने से भी यही फल होता है। परन्तु ऐसी स्थिति में श्वेत तथा कृष्ण कुष्ठ से पीड़ित भी होता है। (सम्भवत: ग्रन्थकर्ता का अभिप्राय अधिक ग्रह से चतुर्थ भाव में स्थित चन्द्र तथा शुक्र से है। चतुर्थ भाव तथा चन्द्र जो दोनों रक्त के प्रतिनिधि हैं, यदि पीड़ित हों तो कुछ अंशों में कुष्ठ का योग बनना उपयुक्त है)। इस प्रकार अधिक ग्रह की राशि उसके नवांश तथा उसके द्वादशांश से मनुष्य की वृत्ति (Profession) तथा पुरुषार्थ को कहना चाहिए। यही बातें अधिक ग्रह से थोड़ी अंश कला वाले ग्रह से भी कहनी चाहिएँ। आशय यह है कि आत्मकारक के साथ-साथ व्यवसाय के सम्बन्ध में अमात्यकारक से भी इसी प्रकार विचार किया जा सकता है। जैमिनीय मत का व्यापक प्रभाव आप समस्त विवेचन पर देख रहे हैं। आत्मकारक व अमात्यकारक के नवांशादि व्यवसाय के विषय में निर्णायक भूमिका अदा करते हैं। इस विषय के विशेष अध्ययन के लिए देखें हमारी मौलिक पुस्तक **'व्यवसाय का चुनाव व आपकी आर्थिक स्थिति।'**

कारकत्व खण्ड

: ५ : बारह भावों में से किसमें क्या-क्या विचारें? नौ ग्रहों से विचार योग्य विषय : मनुष्य को कीर्ति मिलेगी या अपकीर्ति? मन्त्री-पद का योग : अनेक प्रकार के रोग : स्त्री धनाढ्य मिलेगी या साधारण : मृत्यु कैसे?

लग्न भाव के विचारणीय विषय—

देहश्चावयवः सुखासुखजरास्ते ज्ञानजन्मस्थले
कीर्तिःस्वप्नवलायती नृपनयाख्यायूंषि शान्तिर्वयः।
कैशाकृत्यभिमानजीवनपरद्यूताङ्कमानत्वचो
निद्राज्ञानधनापहारनृतिरस्कारस्वभावारुजः ॥ १ ॥

निम्नलिखित बातें प्रथम भाव लग्न से विचारनी चाहिएँ। इन बातों का कारक प्रथम भाव है—

सामूहिक रूप से शरीर, शरीर के अवयव पृथक्-पृथक् (लग्नस्थ राशि तथा उसके स्वामी द्वारा), सुख, दुःख, जरावस्था, ज्ञान, जन्म का स्थान, यश, स्वप्न, बल, गौरव, राज्य, नम्रता, आयु, शान्ति, वय, बाल आकृति (Appearance), अभिमान, काम-धन्धा, दूसरों से जुआ, निशान, मान, त्वचा, नींद, दूसरों का धन हर लेना, दूसरों का अपमान करना, स्वभाव, आरोग्य, वैराग्य, कार्य का करण (Agency), पशु पालन, मर्यादा का सर्वनाश, वर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि में जन्म) तथा निज अपमान।

(१) प्रथम भाव में 'सामूहिक रूप से शरीर' आदि का विचार किया जाता है। सामूहिक शरीर से तात्पर्य न केवल समस्त शरीर है, बल्कि शरीर के धातु, चर्म आदि वे पदार्थ जो सामूहिक अथवा व्यापक रूप से शरीर में पाए जाते हैं, हो सकता है। उदाहरणार्थ—जब किसी व्यक्ति का सिंह लग्न हो तो उसका स्वामी सूर्य यद्यपि आँख, हृदय, हड्डी सबका प्रतिनिधि है तथापि जब हम सामूहिक शरीर का विचार करेंगे तो लग्नेश सूर्य को आँख तथा दिल की अपेक्षा हड्डी का प्रतिनिधि

मानेंगे। क्योंकि वह आँख तथा हृदय की अपेक्षा शरीर में अधिक व्यापक है। इसी प्रकार कर्क लग्न का स्वामी चन्द्र यद्यपि मन, छाती तथा रक्त सभी का प्रतिनिधि है, तथापि सामूहिक शरीर में चन्द्र 'रक्त' का अधिक प्रतिनिधित्व करेगा, क्योंकि रक्त शरीर में मन तथा छाती की अपेक्षा अधिक व्यापक क्षेत्र में कार्य करता है। इसी प्रकार लग्नेश मङ्गल से पट्ठे, लग्नेश बुध से चर्म, लग्नेश गुरु से मेदा, लग्नेश शुक्र से वीर्य, लग्नेश शनि से नसें (Nerves) को सामूहिक शरीर के अर्थ में लेना चाहिए।

श्लोक संख्या १ में 'त्वचा' का सम्बन्ध प्रथम भाव अर्थात् लग्न से माना है। स्पष्ट है कि जब लग्न में (अथवा सूर्य लग्न में अथवा चन्द्र लग्न में) त्वचा का कारक 'बुध' पड़ा होगा तो लग्न त्वचा का दुगुना प्रतिनिधित्व करेगी। ऐसी स्थिति में यदि लग्न पर राहु का प्रभाव हो तो व्यक्ति के शरीर में त्वचा के रोगों की सृष्टि हो जावेगी। जैसे फुलबहरी आदि का हो जाना।

(२) लग्न तथा दशम भाव दोनों से मनुष्य की कीर्ति अथवा यश का विचार किया जाता है। यश में नाम की प्रसिद्धि आवश्यक है, अतः प्रसिद्ध नाम का विचार भी प्रथम भाव से होना चाहिए।

द्वितीय भाव के विचारणीय विषय—

वैराग्यप्रकृति च कार्यकरणं जीवक्रियासूद्यमो
मर्यादाप्रविनाशनं त्विति भवेद्वर्णापवादस्तनोः
वाग्वित्तास्तिकपोषकत्वनखसं भोज्यानि सत्यानृते
जिह्वाक्ष्यम्बर वज्रताम्रमणयो मुक्ताग्रहौ कृत्रिमः ॥२॥
कौटुम्बं क्रयविक्रयौ मृदुवचो दातृत्ववित्तोद्यमाः
साहाय्यं सखकान्तिवित्तकृपणप्रासन्नवाग्वैभवाः।
विद्यास्वर्णसुरौप्यधान्यविनया नासामनस्थैर्यके
तत्पार्श्वस्थनरो गमागमविधिर्जीवाढ्यता द्रव्यभात् ॥३॥

द्वितीय भाव की विचारणीय बातें इस प्रकार हैं—

वाणी, धन, आस्तिकता, दूसरों का पालन-पोषण, नख(Nails) खाने-पीने के पदार्थ, सच और झूठ, जिह्वा, आंख, कपड़ा, हीरा, तांबा, मणियाँ, मोती, हठ, अगरबत्ती आदि धूप, कुटुम्ब सम्बन्धी बातें, क्रय-विक्रय अर्थात् व्यापार, मृदु वचन, दानशीलता, वित्त सम्बन्धी उद्यम,

सहायता, मित्रता, कान्ति, कृपणता, स्पष्ट व्याख्यान शक्ति, विद्या, सोना, अच्छी चाँदी, धान्य, नम्रता, नाक, मन की स्थिरता, अपने पर आश्रित व्यक्ति, आय की विधि व जीवन शक्ति।

द्वितीय स्थान से जैसा कि ऊपर श्लोक में लिखा है, विद्या का विचार करना चाहिए। कुछ विद्वान् पञ्चम भाव को विद्या का भाव मानते हैं; परन्तु पंचम भाव तो बुद्धि का भाव है और यद्यपि बुद्धि और विद्या का घनिष्ठ सम्बन्ध है, फिर भी यह कोई आवश्यक नहीं कि अच्छी बुद्धि वाला सर्वदा अधिक पढ़ा हुआ ही हो। इसी प्रकार कुछ विद्वान चतुर्थ भाव को विद्या का भाव मानते हैं। चतुर्थ भाव भी भावनाओं का भाव है, विद्या का नहीं। हमारे विचार में विद्या ग्रहण शक्ति को पञ्चम अथवा चतुर्थ से देखा जा सकता है। परन्तु विद्या की मात्रा तो द्वितीय भाव से ही देखनी चाहिए।

द्वितीय भाव जैसा कि श्लोक में आए 'भोज्यानि' शब्द से प्रकट होता है, खाद्य तथा पेय वस्तुओं से सम्बन्ध रखता है। उधर चन्द्रमा का भी पेय वस्तुओं से कारक रूप में सम्बन्ध है, क्योंकि चन्द्र लग्न रूप भी है और जलीय (पेय) भी। जातक पारिजात अध्याय ६ श्लोक ८१ में आया है—

'केन्द्रस्थिता मन्दनिशाकरार्का जडो भवेदत्र मधूपभोक्ता।'

अर्थात् शनि चन्द्र और सूर्य केन्द्र में स्थित हों तो शराब पीने वाला तथा जड़ होता है। राहु राक्षस होने से शराबी है, यह समुद्र मंथन की कथा से प्रसिद्ध है। इसलिए जहाँ खाने पीने के भाव अर्थात् द्वितीय भाव पर तथा खाने पीने के कारक 'चन्द्र' पर राहु तथा शनि शराब पीने वाले ग्रहों का प्रभाव पाया जायेगा व्यक्ति को शराब पीने का व्यसन होगा।

श्लोक में द्वितीय भाव के वित्त, विद्या, स्व, अन्नपानादि भुक्ति आदि नामों से स्पष्ट है कि विद्या का भाव द्वितीय ही है।

तृतीय भाव के विचारणीय विषय—

धैर्यं सोदरयुद्धकर्णचरणाध्वक्षेत्रचित्तभ्रमाः
सामर्थ्यं सुरसद्मतापकरणं स्वप्नं भटो विक्रमः।
स्वीयो बन्धुजनः सुहृच्चलनकण्ठादुष्टभोज्यादिकं
शक्तिर्दायविभागभूषणगुणा विद्याविनोदौ बलम्॥४॥

लाभो देहसमृद्धिसत्कुलभवा भृत्यश्च पित्र्यस्थलं
दासीस्वल्पसुयानयात्रउरुकार्यं स्वीयधर्मस्त्रिभात् ।

तृतीय भाव का कारकत्व अर्थात् विचारणीय विषय इस प्रकार हैं—

धैय, भाई (छोटे), युद्ध, कान (Ears), टाँगें, मार्ग में आने वाला स्थान, चित्त का भ्रम, सामर्थ्य, स्वर्ग, दूसरों को ताप पहुंचाना, स्वप्न, सिपाही, शूरता, अपने बन्धु, मित्र, यात्रा, कण्ठ, दोषपूर्ण खाना-पीना, शक्ति, धन का विभाजन, भूषण, सद्गुण, विद्या, रुचि (Hobby), शारीरिक बल, लाभ, देह का बढ़ना, अच्छे कुल में उत्पत्ति, नौकर, तर्जनी और अंगूठे के मध्य का भाग, दासी, अच्छे यान (Vehicles) में छोटी यात्रा, महान् कार्य, निज धर्म ।

श्लोक संख्या ४ में 'दूसरों को ताप पहुंचाना' भी तृतीय भाव से सम्बन्धित एक कारकत्व कहा गया है। इसका उदाहरण हिटलर है जिसने लाखों यहूदियों को जान-बूझकर मरवा डाला था, केवल इस लिए कि वे यहूदी थे। क्रूरता के प्रतिनिधि हिटलर की जन्म कुण्डली पिछले खण्ड के श्लोक ६ की व्याख्या में आ चुकी है।

शनि, जो एक अतीव क्रूर ग्रह है, कर्म स्थान में बैठा है, और इस कुण्डली का चन्द्र (मन) उस क्रूर शनि अधिष्ठित राशि का स्वामी होकर पुनः क्रूरता के स्थान (तृतीय) में जा बैठा है। एक प्रबल स्वक्षेत्री गुरु केतु को साथ लेकर पहले ही तृतीय भाव की वीरता और क्रूरता को बढ़ा रहा है। स्वक्षेत्री शुभ ग्रह की केतु से युति के सम्बन्ध में निम्न-लिखित श्लोक देखिए—

शुभग्रहो भवेद्यत्र स्वगोत्रे शिखिना युतः ।
तस्य भावस्य प्राबल्यं वक्तव्यञ्च विशेषतः ॥

अर्थात् यदि कोई नैसर्गिक शुभ ग्रह निज राशि में केतु युक्त हो तो उस भाव को विशेष बली समझना चाहिए। इसी नियमानुसार इस कुण्डली में भी तृतीय भाव से विशेष शक्ति, वीरता तथा क्रूरता ग्रहण की जावेगी।

चतुर्थ भाव का कारकत्व—

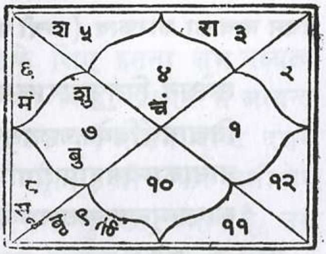
विद्यां राज्यगृहप्रयाणनरसन्नौकादिसद्वाहना-
न्यभ्यङ्गो जननी च बन्धुसुहृदौ जात्यम्बरे वापिका ॥५॥

पानीयं च पयः सुगन्धसुखवान् सन्नाम दिव्यौषधं
विश्वासोऽनृतवाद मण्डपजयः स्वेदोद्भवायाः कृषिः ।
क्षेत्रारामतटाककूपखननं तत्तत्प्रतिष्ठादयो
मातुर्वर्गनिदानबुद्धिजनको दारा स्वनिक्षेपणम् ॥६॥
सौधः शिल्पगृहप्रवेशपरिणामाः शीलधामच्युती
पित्र्यं स्वं सुरभोजनं च मनसो मोषः प्रदेशक्रिया ।
वल्मीकश्रुतिशास्त्रवृद्धिमहिषा गोवाजिमत्तद्विपा-
र्द्रक्षेत्रोत्थसुसस्यसम्पद इमे वाच्याश्चतुर्थालयात् ॥७॥

चतुर्थ भाव का कारकत्व इस प्रकार है—

विद्या, राज्य, घर, घर से निकालना, अथवा यात्रा, रिक्शा, सुन्दर नौका, कार आदि वाहन, तेल मलना, माता, बन्धु, मित्र, जाति, कपड़ा, छोटा कुआँ, पानी, दूध, सुगन्ध, सुखी होना, यश, दिव्य औषधि, विश्वास, झूठा आरोप, मण्डप, जय, कष्टमय खेती, खेत, बाग, जनता के हित के लिए तालाब अथवा कुएं का खोदना, मातृपक्ष, शुद्ध बुद्धि, पिता की आय, भार्या, अपना बचा गड़ा धन, महल, शिल्प, गृह प्रवेश, परिणाम, शील स्वभाव, घर छोड़ना, पैतृक सम्पत्ति, देव भोजन, चुराई गई वस्तु के स्थान की ओर निर्देश की कला, वल्मीक (लीख), वेदादि शास्त्रों की वृद्धि, भैंस, गौ, घोड़ा, मस्त हाथी, गीले क्षेत्र में उत्पन्न अच्छी धान्य सम्पदा।

यश का सम्बन्ध चतुर्थ स्थान से रखा गया है। इसका कारण यह है कि वास्तव में चतुर्थ स्थान किसी भी कुण्डली में 'जनता' अर्थात् सर्व-साधारण (Masses) का होता है और यश भी जनता द्वारा ही अधिकतर होता है। इसी प्रकार 'झूठा आरोप' भी इसी चतुर्थ भाव से इसलिए सम्बन्धित है कि 'झूठा आरोप' भी तो बहुधा जनता द्वारा ही लगाया जाता है। इसी प्रकार 'जनतार्थ स्थापना' (प्रतिष्ठा) शब्द भी बतला रहे हैं कि चतुर्थ भाव से 'जनता' संबंधी विचार करना चाहिए। देश के नेताओं की कुण्डलियों में यह चतुर्थ स्थान विशेष महत्व का हो जाता है, क्योंकि इस भाव के विवेचन से पता चलता है कि जनता का अपने नेताओं के प्रति प्रेम का भाव है, अथवा द्वेष का। इस सन्दर्भ में श्री पं० जवाहरलाल नेहरू की कुंडली एक उत्तम उदाहरण उपस्थित करती



है क्योंकि यह व्यक्ति जनता के हृदय का सम्राट् था। जनता इस नेता को इतना प्यार करती थी कि उसकी बड़ी से बड़ी भूल की, जिससे देश की भी महान् हानि होती हो, अवहेलना कर देती थी। दूसरा कोई व्यक्ति ऐसी भूल करता तो उसे कभी क्षमा न किया जाता। पण्डित जी की कुण्डली में आप देखेंगे कि लग्नेश का बल्कि चन्द्रेश का भी केन्द्र सम्बन्ध चतुर्थ भाव से तथा उसके स्वामी से बन रहा है। क्योंकि चन्द्रमा शुक्र से दशम केन्द्र में स्थित है। दूसरे शब्दों में पण्डित जी की आत्मा तथा शरीर का पूर्ण सम्बन्ध 'जनता' भाव से हो गया था। यह स्मरण रहे कि चन्द्रमा जहाँ लग्नेश है, वहाँ जनता का 'कारक' भी है, अत: इस 'अजात शत्रु' चन्द्रमा का जनता के कारक रूप में प्रतिनिधि होकर जनता भाव के ग्रह शुक्र से सम्बन्धित होना ही पण्डित जी को जनता में बहुत प्रिय बनाने का कारण बना।

चतुर्थ भाव से कार आदि वाहन का विचार भी किया जाता है। जब वाहन कारक शुक्र का चतुर्थ भाव से शुभ सम्बन्ध हो तो मोटरकार आदि उच्च वाहन की प्राप्ति कहनी चाहिए। यह योग कायदे आजम मुहम्मद अली जिन्ना की जन्म कुण्डली में आपको अच्छी प्रकार से देखने को मिलेगा। इस कुण्डली में, जोकि आगे श्लोक २० की व्याख्या में देंगे, चतुर्थ भाव का स्वामी स्वयं वाहन कारक शुक्र है और गुरु का दृष्टि युति प्रभाव चतुर्थ चतुर्थेश दोनों पर है। अत: गुरु शुक्र का मूल्य बहुत बढ़ता है। दूसरे शब्दों में, बहुत ऊंचे दरजे की मोटरकार देता है। स्मरण रहे कि गुरु एक तो वैसे ही मूल्य का ग्रह है (धन कारक होने के कारण) और फिर इस कुम्भ लग्न की कुण्डली में यह और भी 'मूल्य' का प्रतिनिधि बन गया है, क्योंकि यह दो 'धन' द्योतक घरों—एकादश तथा द्वितीय का स्वामी भी है। इतना ही नहीं, इसके मूल्य में और भी वृद्धि इसलिए हुई है कि यह ऐसी राशियों का स्वामी है जिनमें सूर्य चन्द्र दो राज्यद्योतक अर्थात् उच्चस्तरीय ग्रह बैठे हैं। अब आप सहज में अनुमान लगा सकते हैं कि गुरु की दृष्टि किस हद तक चतुर्थ चतुर्थेश तथा शुक्र वाहन द्योतक अंगों में मूल्य डाल कर उनको बहुमूल्य बना रही है।

पंचम भाव का कारकत्व (मन्त्री पद)—

सन्तानं पितृपुण्यराजसचिवा सौशील्यशिल्पे मनो
विद्यागर्भविवेकचछत्रसुकथा माङ्गल्यपत्राम्बरे।
नानाकाम्यमहाप्रयोगपितृवृत्ते दूरचिन्ता क्रमात्
कान्तामूलकलब्धभाग्यविभवो वाराङ्गनालिङ्गनम् ॥८॥

गाम्भीर्यं घनता रहस्यविनया वृत्तान्तसंलेखनं
क्षेमस्नेहप्रबन्धकाव्यरचना कार्यप्रवेशोदराः।
मन्त्रोपासनसुप्रसन्नविभवाश्चान्नप्रदानं च तत्
पुण्यासत्प्रविचारमन्त्रजपकाः प्रज्ञासमालोचने ॥९॥

वित्तोपायमृदङ्गवाद्यसुमहत्सन्तोषपाण्डित्यकाः
पारम्पर्यसमागतं तु सचिवस्थानं भवेत्पञ्चमात्।

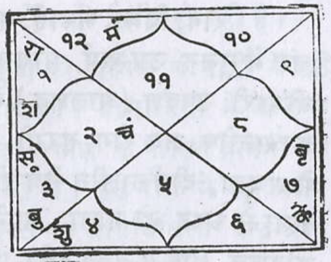
पञ्चम भाव से विचारने योग्य बातें अर्थात् कारकत्व निम्न-लिखित हैं—

सन्तान, पिता के पुण्य कर्म, राजा, मन्त्री, सदाचार, शिल्प, मन, विद्या, गर्भ, विवेक, छत्र, धार्मिक कथा, खुशखबरी, कपड़े, कोई महान् इष्ट कार्य, पिता का धन, दूरदर्शिता, वह वैभव जो स्त्रीमूलक हो, दरबारी स्त्रियों से सङ्ग, गम्भीरता, दृढ़ता, रहस्य, नम्रता, समाचार का लिखना, संभाल, मित्रता, प्रबन्ध-काव्य रचना, किसी कार्य में लगना, पेट, मन्त्र से पूजा, प्रसन्नतापूर्ण वैभव, अन्नदान, पाप-पुण्य में विवेक, मन्त्र जप, समालोचना की योग्यता, धन कमाने का ढंग, मृदंग, वाद्य, महान् सन्तोष, पाण्डित्य, परम्परा से प्राप्त मन्त्री पद।

उपरोक्त श्लोकों में 'मन्त्री और मन्त्री पद' आदि शब्दों के प्रयोग से पाठक समझ गए होंगे कि पञ्चम भाव का 'विचार', 'सम्पति', 'मन्त्रणा' तथा मन्त्री पद से कितना घनिष्ठ सम्बन्ध है। प्रायः सभी केन्द्रीय मन्त्रियों की कुण्डलियों में पञ्चम भाव किसी न किसी प्रकार से बहुत बलशाली होता है जो उनको 'मन्त्री' की पदवी दिलाता है। उदाहरणार्थ, श्री जवाहर लाल जी की कुण्डली ही को देख लीजिए। इस कुण्डली में पञ्चम भाव को शुभ मध्यत्व प्राप्त है। अर्थात् इस भाव के एक ओर चतुर्थ भाव में एक नैसर्गिक शुक्र ग्रह व दूसरी ओर गुरु।

परन्तु इतना उच्च अधिकार प्राप्त करने के लिए इतना शुभ मध्यत्व ही पर्याप्त नहीं है। पञ्चम भाव और भी किसी प्रकार से अत्यन्त बलवान् है। वह ऐसे कि मंगल ग्रह की जो पूर्ण अष्टम दृष्टि दशम भाव में स्थित अपनी मेष राशि पर पड़ रही है, और फिर उसी मेष राशि पर तीन-तीन शुभ ग्रहों—शुक्र, बुध, तथा गुरु का प्रभाव है, उस दृष्टि का फल न केवल दशम भाव (राज्य शासन आदि) के लिए—जहाँ कि मेष स्थित है—ही उत्तम बना अपितु उस भाव के लिए भी उत्तम बन गया, जिसमें कि मंगल की दूसरी राशि वृश्चिक स्थित है। अर्थात् 'मन्त्री भाव' पञ्चम के लिए।

पञ्चम भाव सन्तान का है। इस भाव से गर्भ हानि आदि भी देखी जाती है, विशेषतया पुत्र प्राप्ति का विचार इस भाव से करना चाहिए। पुत्र का विचार करते समय उसी मौलिक नियम का प्रयोग करना चाहिए जिसकी श्लाघा हम पीछे कर चुके हैं, अर्थात् पंचम भाव, इस भाव का स्वामी तथा बृहस्पति। साथ ही पंचम से पंचम भाव अर्थात् नवम भाव भी अच्छी प्रकार देख लेना चाहिए। इस जन्म कुण्डलो को लीजिए।



इस व्यक्ति का विवाह १९३५ में हुआ था और उसके कोई सन्तान बिलकुल हुई ही नहीं। मंगल की द्वितीय स्थान में स्थिति और शनि की तृतीय स्थान में स्थिति इस सन्दर्भ में विशेष महत्त्व रखती है, क्योंकि ऐसी स्थिति में इन दोनों ग्रहों की पूर्ण दृष्टि पंचम स्थान अर्थात् पुत्र स्थान पर है जिससे पुत्र प्राप्ति में बाधा पड़ती है। इतना ही नहीं, इन दो क्रूर ग्रहों की पूर्ण दृष्टि पंचम से पंचम अर्थात् नवम भाव पर भी है। इस दृष्टि से भी पुत्र की प्राप्ति में बहुत बाधा है। फिर पुत्रकारक गुरु की भी दयनीय अवस्था देखिए कि वह न केवल शुक्र की राशि अर्थात् शत्रु राशि में क्रूर ग्रह केतु के साथ स्थित है बल्कि उसके ऊपर उन्हीं दो क्रूर ग्रहों—मंगल तथा शनि की दृष्टि का प्रभाव भी पड़ रहा है। इस प्रकार जब सभी भाव भावेश और कारक बुरी तरह पीड़ित हुए तो पुत्र प्राप्ति की सम्भावना जाती रही है।

इसीलिए जब कभी आप मंगल को दूसरे भाव में तथा शनि को तीसरे भाव में देखें और साथ ही गुरु को नवम अथवा पंचम भाव में देखें तो ऐसी स्थिति में आप पुत्र-अभाव की घोषणा कर सकते हैं।

षष्ठ स्थान का कारकत्व (रोगों का विशेष विचार)

> रोगो विघ्नरणाप्तिमातुलकफग्रन्थ्युग्रकर्माणि
> चोन्मादस्फोटकशत्रु वैरकृपणत्वास्वास्थ्यमेहव्रणाः ॥१०॥
> अन्नायासरुणापवादरिपुसन्तोषक्षयोष्णक्षता-
> श्चित्तक्लेशबहुव्यथे बहुजनद्वेषोऽनिशं नेत्ररुक्।
> भिक्षादानमकालभोजनकलाभ्रंशाः सपिण्डारिभि-
> र्लाभायासविषातिशूलनिगलाः स्वीयं यशोरक्षणम् ॥११॥
> मूत्रव्याध्यतिसारषड्रसविनिन्दा दासचोराविपत्
> कारागेहसहोदरादिकलहाः स्युः षष्ठभावादिमे।

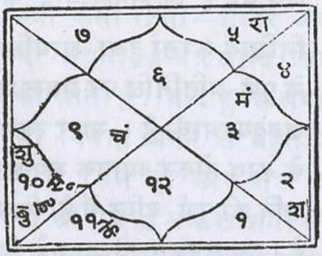
छठे भाव से इन बातों का विचार करना चाहिए—

रोग, विघ्न, लड़ाई, मामा (माँ का भाई), कफ, शरीर के किसी अंग में सूजन, उग्र कर्म, पागलपन, फुन्सी-फोड़ा, शत्रु, शत्रुता, कंजूसी, बीमारी, उपदंश (आतशक) का व्रण, अन्न, श्रम, ऋण, बदनामी, शत्रु का सन्तोष, क्षय रोग, गरमी, व्रण(जख्म), मानसिक व्यथा, बहुत लोगों से शत्रुता, दीर्घकालीन नेत्र रोग, भिक्षा ग्रहण करना, अकाल भोजन, कला से भ्रष्ट हो जाना, अपने सपिण्डों से डर, लाभ, परिश्रम, विष, अतिशूल, (पेट में बहुत दर्द) पाँव की बेड़ी, अपने यश की रक्षा, मूत्र का रोग, दस्त लग जाना, षट्रस (खट्टा, मीठा आदि) महान निन्दा, दास, चोरी, विपत्ति, कारीगर, भाइयों आदि से झगड़ा।

छठा स्थान अन्य बातों के अतिरिक्त 'रोग' से विशिष्ट सम्बन्ध रखता है। प्रत्येक षष्ठेश चोट अथवा रोग का प्रतिनिधि होता है और जिस पर इस षष्ठेश की स्थिति होती है अथवा जिस भाव पर इसकी दृष्टि होती है उन दोनों ही भावों को हानि पहुंचती है। यह हानि नगण्य होती है। परन्तु जब शनि, जो कि रोग का पक्का कारक है, स्वयं षष्ठाधिपति बन जावे तो फिर शनि का दृष्टि योग कुछ अधिक हानिकारक हो जाता है। यदि छठे स्थान में शनि ही की किसी राशि मकर अथवा

कुम्भ में राहु स्थित हो तो क्या कहना। फिर तो षष्ठेश शनि मूर्तिमान् रोग होता है और निश्चय से उस भाव को हानि पहुंचती है जिसमें शनि स्थित हो अथवा जहाँ पर उसकी दृष्टि पड़ती हो, विशेषतया उस स्थिति में जबकि उस भाव का स्वामी भी निर्बल हो जिस भाव में कि शनि स्थित है अथवा उसी संख्या की राशि का स्वामी भी निर्बल हो। इस बात को स्पष्ट करने के लिए निम्नलिखित कुण्डली दी जाती है।

इस कुण्डली वाले व्यक्ति को नितम्ब में हड्डी जुड़ जाने का रोग उसकी बीस वर्ष की आयु में हुआ जिसके फलस्वरूप वह आयु भर लंगड़ा रहा। यहाँ शनि रोग कारक स्वयं छठे घर का स्वामी बल्कि केतु-अधिष्ठित राशि का स्वामी भी है। अतः शनि में हानि पहुंचाने की शक्ति तिगुनी हो गई है। वह शनि नवम स्थान में स्थित है और उस स्थान को पीड़ित कर रहा है। उधर नवम राशि धनु का स्वामी नीच अस्त होकर मंगल से दृष्ट है, अतः दीर्घकालीन रोग की सिद्धि हो रही है।

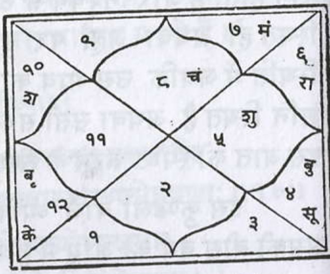


यह कोई आवश्यक नहीं कि मनुष्य की प्रत्येक बीमारी में छठे भाव अथवा उस भाव के स्वामी का हाथ हो। बीमारियों के आने के अनेक ढंग हैं। कई बीमारियाँ लग्न अथवा लग्नेश के पीड़ित होने से भी आ जाती हैं। उदाहरणार्थ, कुष्ठ रोग को लें। इस रोग में रक्त और चर्म दोनों का दुर्विकार अनिवार्य है। रक्त का प्रतिनिधित्व चन्द्र और मंगल करते हैं और चर्म का बुध। जातक पारिजात कहता है—

मज्जा स्नायु वसास्थि शुक्र रुधिर त्वग्धातुनाथाः क्रमाद्
आरार्कोज्यदिनेशशुक्रशशभृत्तारासुताः कीर्तिता (२.२८)

इसमें शशभृत् अर्थात् चन्द्र को रक्त का प्रतिनिधि बतलाया गया है। मंगल का सम्बन्ध भी रक्त से इसीलिए है कि यह पट्ठों का स्वामी है। उसी ग्रन्थ के अन्य श्लोक में वसुधा पुत्र अर्थात् मंगल के सप्तम स्थान में होने से शोणित अर्थात् रक्त में विकार कहा है। उदाहरणार्थ

निम्नांकित कुण्डली अंग्रेजी भाषा की ज्योतिष पत्रिका (एस्ट्रोलोजिकल मेगजीन) से ली गई है।



यहाँ मंगल रक्त का प्रतिनिधि है। जब यह ग्रह लग्नेश हो फिर तो और भी रक्त का प्रतिनिधि होगा, क्योंकि रक्त का संचार शरीर में व्यापक है। और फिर यहाँ तो चन्द्र भी लग्न में है जिसका अर्थ यह है कि मंगल चन्द्र का भी प्रतिनिधित्व करता हुआ अत्यधिक रक्त का द्योतक बन चुका है। ऐसे रक्त के पूर्ण प्रतिनिधि पर प्रबल शनि की दृष्टि है जिससे रक्त विकार होना अवश्यम्भावी है। उधर त्वचा के कारक बुध की ओर देखें तो वह सूर्य के साथ होकर व्यापक रूप धारण किये हुए है। और मंगल ही की भाँति शनि की पूर्ण दृष्टि में है जिसका स्पष्ट अर्थ है कि त्वचा में भी विकार है। इस सज्जन को आयु के पिछले दिनों में कुष्ठ रोग हो गया था। रोग देरी से होने का कारण सम्भवतया बुध तथा लग्न पर गुरु की दृष्टि हो, कुछ भी हो, रक्त और त्वचा दोनों के कारकों का पीड़ित होना इस घृणित रोग में कारण रहता है—यह निष्कर्ष है।

सप्तम भाव का कारकत्व (स्त्री धनी या साधारण ?)—

उद्वाहव्यभिचारकामुकजयानष्टाङ्गनाद्वेषता
मार्गभ्रंशसुगन्धगीतकुसुमा मृष्टान्नपातादिकम् ॥१२॥
ताम्बूलं च प्रयाणभङ्गदधिविस्मृत्यम्बराद्यागमो
रेतोभर्तृपवित्रदारयुगलं गुह्यं च मूत्रं गुदः।
वाणिज्यं च तथा पयोमधुरसौधः सूपकाज्याशनं
दानं शौर्यविनष्टशत्रुविजयास्थानान्तरस्थं धनम् ॥१३॥

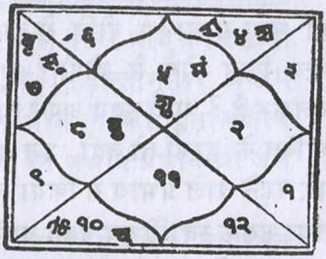
वादो मैथुनदत्तपुत्रघृतजास्वीयान्यदेशे तथा
जाया मान्मथजं रहस्यमखिलं चौर्यं वदेत्सप्तमात्।

सातवें भाव से इन बातों का विचार करना चाहिए—

विवाह, व्यभिचार, कामदेव सम्बन्धी विजय, व्यभिचारिणी स्त्री से शत्रुता, रास्ते से भटक जाना, सुगन्ध, संगीत, फूल, पौष्टिक

पदार्थों का खाना-पीना, पान चबाना, यात्रा का टूटना, दही, भूल, कपड़ों आदि की प्राप्ति, वीर्य (Semen), पति, पवित्रता, दूसरी स्त्री का होना अथवा न होना, स्त्री अथवा पुरुष का गुह्य अंग, मूत्र, गुदा, व्यापार, मीठा पेय, सुधा, सूप, घी आदि का खाना, दान, शूरता, पराजित शत्रु, विजय, दूसरे स्थान में रखा धन, झगड़ा, मैथुन, गोद लिए पुत्र, घी में बनी वस्तुओं का स्वाद, अन्य देश, भार्या, मैथुन से उत्पन्न समस्त छिपी बातें तथा चोरी।

सप्तम भाव का विवाह से विशेष सम्बन्ध है। अतः विवाह किस घर से हो—धनाढ्य से अथवा निर्धन से, स्त्री कैसी रहेगी—सुन्दर अथवा असुन्दर, विवाह पितृ-मातृ पक्ष में होगा अथवा अन्यत्र आदि विवाह सम्बन्धी बातें सप्तम भाव से विचार की जाती हैं। यदि कुम्भ लग्न हो और सूर्य पर शुभ ग्रहों की दृष्टि हो तो विवाह अपने से बहुत ऊँचे घरानों में होता है। यदि सप्तम में वृषभ राशि हो और शुक्र कर्क, कन्या आदि सम राशियों में हो तथा चन्द्र भी ऐसे ही सम राशियों में हो तो सुन्दर स्त्री की प्राप्ति होती है। यदि सप्तम भाव तथा सप्तमेश एवं शुक्र पर चतुर्थ, चतुर्थेश तथा चन्द्रमा का प्रभाव हो तो स्त्री मातृपक्ष से मिलती है। उदाहरणार्थ—सप्तऋषि नाड़ी में से उद्धृत यह कुण्डली देखिए। इस सज्जन के



सम्बन्ध में लिखा है कि उसका विवाह मातृ पक्ष से हो। यहाँ सप्तम भाव पर चतुर्थेश मंगल का प्रभाव है। उसी मंगल का स्त्री कारक शुक्र से योग है और मातृ कारक चन्द्र का सप्तमेश शनि पर दृष्टि प्रभाव है। इस प्रकार भाव-भावेश तथा कारक पर चतुर्थेश तथा चतुर्थ भाव कारक (चन्द्र) के सम्बन्ध से विवाह मातृ पक्ष से सिद्ध होता है।

अष्टम भाव का कारकत्व (मृत्यु का प्रकार)—

आयुः सौख्यपराभवौ मृतधनं संक्लेशवक्त्रं मृति-
क्लेशो मारणकारणान्नकलहो तन्मेहजाड्यं विपत् ॥१४॥

भ्रातुः शत्रुकलत्र पीडनकलापाः शत्रुदुर्गस्थलं
क्लेशश्चालसराजदण्डनभयद्रव्यक्षयर्णप्रदाः।
अज्ञानाप्तपरं धनं चिरधनं दुर्मार्गमर्त्यागमः
पापं जीववधोऽङ्गहीनकशिरच्छेदोग्रदुःखानि च ॥१५॥
चित्तास्वास्थ्यकथोपसर्गपरिवारोग्रक्रियासूद्यमो
युद्धात्यन्तमनोव्यथे च सततं भावाद्वदेदष्टमात्।

आठवें स्थान से इन विषयों का विचार करना चाहिए—

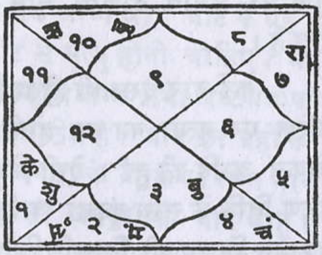
आयु, सुख, पराजय, बीमे का धन, पीड़ित मुख, मृत्यु तथा मृत्यु का डर, मृत्यु के कारण, झगड़ा, मूत्र रोग, अज्ञान, भाई के शत्रु, भार्या का शारीरिक कष्ट, बनाए हुए स्त्री के बाल, शत्रु का दुर्ग स्थल, मानसिक क्लेश, आलस्य, राज्य का दण्ड, भय, वस्तुओं का नाश, ऋण देना, अज्ञान से प्राप्त दूसरों का धन, देर से पड़ा धन, पापी पुरुष से मिलाप, पाप, जीवहत्या, अंगहीन हो जाना, सिर कट जाना, उग्र दुखों की प्राप्ति चित्त को दुःखदायी कथा, लगातार कष्ट, क्रूर कर्मों में विशेष उद्यम।

मरण विधि का विचार अर्थात् इस बात का विचार कि व्यक्ति की मृत्यु साधारण रीति से होगी अथवा किसी दुर्घटनावश ? उसकी मृत्यु किस रोग से होगी ? मृत्यु पानी में डूबकर है अथवा आग में जलकर है ? मृत्यु स्वयं अपने हाथों (आत्मघात) तो नहीं ? मृत्यु किसी व्यक्ति के हाथों तो नहीं, इन सब बातों का विचार जहां लग्न-लग्नेश पर पड़ने वाले प्रभाव से किया जाता है, वहाँ इसका निर्णय अष्टम भाव तथा उसके स्वामी पर पड़ने वाले प्रभावों से किया जाता है।

यदि अष्टम भाव तथा उसके स्वामी दोनों पर सूर्य, मंगल तथा केतु की युति अथवा दृष्टि का प्रभाव हो अथवा इन ग्रहों से अधिष्ठित राशियों के स्वामियों का प्रभाव हो तो मृत्यु आग से समझनी चाहिए। अग्नि से मृत्यु का उदाहरण हम अपनी पुस्तक 'फलित सूत्र' उद्धृत करते हैं। अष्टम स्थान में अग्निमय सूर्य विद्यमान है और बुध अपनी मूल त्रिकोण राशि कन्या का तथा मंगल अधिष्ठित राशि कन्या का स्वामी होकर अग्नि रूप है। वह भी अष्टम भाव में विद्यमान है। राहु एक छाया ग्रह के नाते दो अग्नि-



द्योतक ग्रहों के साथ होने के कारण अग्नि रूप ही है। गुरु की अष्टम भाव पर दृष्टि में आग है क्योंकि गुरु धनु मूल त्रिकोण राशि का स्वामी नवमेश है। और नवम स्थान अग्नि का स्थान है। अष्टम भाव के एक ओर केतु-अधिष्ठित राशि का स्वामी शुक्र अग्नि रूप होकर स्थित है और दूसरी ओर मंगल की दृष्टि का प्रभाव है। इस प्रकार अष्टम भाव के आसपास भी पाप का प्रभाव है। अग्निमय इतने प्रभावों के कारण ही अष्टम-अष्टमेश ने अग्नि को मृत्यु का कारण बताया। इसी प्रकार जल में डूबकर मरने का उदाहरण इस कुण्डली में देते हैं। इस कुण्डली में एक जलीय ग्रह चन्द्र का प्रभाव अष्टम भाव पर पड़ रहा है। उसी जलीय चन्द्र की दृष्टि अथवा प्रभाव लग्नेश गुरु पर भी पड़ रहा है। क्योंकि लग्नेश भी अपने ऊपर पड़ने वाले प्रभाव द्वारा मृत्यु के कारण को बतलाता है। अतः गुरु पर चन्द्र की दृष्टि जल द्वारा मृत्यु को दर्शाती है। इसी प्रकार शनि भी 'भावात् भावम्' के सिद्धान्तानुसार अष्टम से अष्टम का स्वामी होने के कारण अष्टम भाव ही का प्रतिनिधित्व कर रहा है। अतः उस पर पड़ने वाला चन्द्र का जलीय प्रभाव भी जल द्वारा मृत्यु प्राप्त करना सिद्ध कर रहा है।



आत्मघात का उदाहरण हिटलर की कुण्डली (पूर्वोद्धत) उपस्थित करती है। इस कुण्डली में शुक्र लग्नेश भी है और अष्टमेश भी। अतः अपने ऊपर पड़ने वाले प्रभाव द्वारा यह मरण विधि को अवश्य बतलायेगा। पहले तो शुक्र पर एक प्रबल मंगल का, जोकि आघात और चोट का कारक है, प्रभाव है जो संकेत करता है कि मृत्यु चोट आदि, आग आदि से होगी, फिर सूर्य भी अग्नि रूप होकर उसी शुक्र को प्रभावित कर रहा है। बुध को तो सूर्य और मंगल के साथ मिलकर सूर्य और मंगल ही का अग्निमय काम करना है। शनि की पूर्ण दृष्टि भी शुक्र पर है और शनि की मूल त्रिकोण राशि पंचम भाव में पड़ती है। अतः पञ्चमेश होने से शनि भी अग्नि रूप प्रभाव शुक्र पर डाल रहा है। केतु की दृष्टि भी शुक्र पर है और केतु भी मंगल की तरह अग्निमय है, इसी प्रकार गुरु की पञ्चम दृष्टि का शुक्र पर प्रभाव भी अग्निमय है

क्योंकि गुरु केतु-अधिष्ठित राशि का स्वामी है। अतः मंगल आदि द्वारा मृत्यु तो आग के किसी रूप से सिद्ध हो रही है क्योंकि मङ्गल सूर्य के समीप तीव्र गति में है, अतः वह आग तेज चल रही है जैसे कि गोली की आग होती है। अब यह सिद्ध करना शेष है कि यह आग अपनी लगाई हुई है। अर्थात् 'निज'(आत्म) अथवा 'स्व' ही मृत्यु का कारण है। उसके लिए लग्नेश के अतिरिक्त तृतीय तथा एकादश भावों के स्वामी भी 'स्व' अथवा 'आत्म' को दर्शाते हैं। अतः एकादशेश सूर्य तथा तृतीयेश गुरु (दोनों अपने बाहु बने) का सप्तमेश (वीर्य—शक्ति) मंगल से मिलकर शुक्र पर प्रभाव डालना मृत्यु को आत्मघात का स्पष्टतया रूप दे रहा है।

कई बार ऐसा भी होता है कि मृत्यु न केवल दुर्घटना से होती है बल्कि एक हत्या का रूप होती है। जैसा कि कैनेडी, गांधी, अब्राहम लिंकन आदि की हुई। ऐसी स्थिति में जनता का घनिष्ठ सम्बन्ध भी मरण विधि के साथ ढूंढ़ना चाहिए। उदाहरणार्थ—अमरीका के प्रधान अब्राहम लिंकन की निम्नलिखित कुण्डली का अध्ययन लाभप्रद होगा।



क्योंकि लग्न तथा अष्टम भाव दोनों मरणविधि के द्योतक हुआ करते हैं। अतः इस कुण्डली में हमको लग्न, सूर्य लग्न तथा अष्टमेश बुध जो तीनों एकत्रित स्थित हैं सब पर एक साथ विचार करना होगा। क्योंकि यही तीनों मिलकर वह क्षेत्र बना रहे हैं जिस पर पड़ने वाले प्रभाव की हमें प्रस्तुत प्रकरण में जांच करनी है। सूर्य बुध के एक ओर गुरु, शुक्र और दूसरी ओर चन्द्र विद्यमान हैं। अतः मध्यत्व द्वारा प्रभावित क्षेत्र पर गुरु, शुक्र तथा चन्द्र का प्रभाव पड़ रहा है। चन्द्र तो सीधा आघात पहुंचाने वाला ग्रह है। क्योंकि वह इस कुण्डली में आघात भाव अर्थात् षष्ठ भाव का स्वामी है और गुरु इसलिए आघात पहुंचाने वाला ग्रह है क्योंकि वह एकादशेश है। याद रहे, एकादश स्थान छठे से छठा है। अतः 'भावात् भावम्' के सिद्धान्तानुसार छठे ही की भांति आघातप्रद है।

शेष रहा शुक्र, वह मंगल अधिष्ठित राशि का स्वामी नवमेश

होकर अग्नि और आघात का रूप ही है। इसके अतिरिक्त राहु लग्न तथा बुध पर अपनी दृष्टि द्वारा मंगल ही के प्रभाव को उन पर डाल रहा है और फिर मंगल कोई साधारण मंगल नहीं, मंगल भी 'एक करेला और दूसरे नीम चढ़ा' की लोकोक्ति के अनुसार केतु-अधिष्ठित राशि का स्वामी होने के कारण अग्नि का मूर्त स्वरूप है। शनि भी अपनी केन्द्रस्थ स्थिति से अग्नि का प्रभाव ही लग्न तथा बुध पर डाल रहा है क्योंकि शनि अग्निमय सूर्य अधिष्ठित राशि का स्वामी है। इस प्रकार जितने भी ग्रह लग्नों तथा अष्टम अष्टमेश पर अपनी दृष्टि युति आदि द्वारा प्रभाव डाल रहे हैं वे सब अग्नि और चोट के ग्रह हैं तथा यह सिद्ध करते हैं कि अग्नि की चोट से मृत्यु होनी चाहिए। यह विचित्र बात है कि गुरु, शुक्र और चन्द्र जिन्होंने लग्न तथा अष्टमेश को घेर रखा है क्रमश: द्वितीयेश, चतुर्थेश तथा षष्ठेश हैं। यदि इन ग्रहों का वह आधिपत्य आप चतुर्थ भाव को अर्थात् जनता के भाव को लग्न मान कर देखें तो आपको पता चलेगा कि गुरु तो जनता की बांई बाहु है क्योंकि यह चतुर्थ भाव से एकादशेश है। शुक्र चतुर्थेश होने से जनता का लग्नेश अर्थात् स्वयं अपने आप हुआ और चन्द्र चतुर्थ से तृतीयेश होने के कारण जनता की पुन: दांई बाहु हुई। इस प्रकार निर्धन जनता के स्वयं तथा जनता की बाहु द्वारा हुआ। यह ग्रह स्थिति से सिद्ध हो जाता है।

उपरोक्त श्लोक में अष्टम भाव से सम्बन्ध रखने वाली बातों का उल्लेख है। उनमें मृत्यु मुख्य है। मृत्यु एक बहुत गुह्य और दुर्बोध वस्तु है जिसको कठोपनिषद के कहने के अनुसार देवता लोग भी न समझ पाए। इससे हम यह परिणाम निकाल सकते हैं कि सब प्रकार के गुह्य स्थानों, वस्तुओं, समस्याओं का भाव अष्टम भाव है, अत: अनुसन्धान (Research) जिसका सम्बन्ध सदा गूढ़ रहस्यों से रहता है, का प्रतिनिधित्व कुण्डली का आठवां स्थान करता है। जिन व्यक्तियों का सम्बन्ध किसी न किसी प्रकार के वैज्ञानिक आदि अनुसन्धान से रहता है उनसे अष्टम भाव का घनिष्ठ सम्बन्ध रहता है। वे लोग जो किसी अनुसन्धान कार्य द्वारा पेट पालते हैं



इसी श्रेणी में आ जाते हैं। तो आइये देखें कि ऐसे व्यक्तियों के जीवन से अष्टम अष्टमेश का सम्बन्ध रहता है अथवा नहीं। पिछले पृष्ठ पर कुण्डली वैज्ञानिक जगदीश चन्द्र बसु की है।

आप नोट करेंगे कि लग्न का स्वामी अष्टम स्थान में है और अष्टम स्थान का स्वामी लग्न में है। ग्रहों का यह व्यत्यय (Exchange) इस बात का स्पष्ट द्योतक है कि इस व्यक्ति का आत्मा अनुसन्धान कार्यों (अष्टम भाव) में लगा हुआ है। आप जानते ही हैं सर जे० सी० बोस ने वनस्पति जगत में सुप्रसिद्ध गवेषणा तथा अनुसन्धान कार्य किया था।

आप यह भी नोट करेंगे कि लग्नेश शुक्र पर प्रभाव सूर्य तथा मंगल का है। अब चूंकि मंगल भी सूर्य अधिष्ठित राशि का स्वामी है। यह भी सूर्य ही का प्रभाव रखता है। दूसरे शब्दों में, लग्नेश शुक्र को सूर्य के प्रभाव ने घेर रखा है। चूंकि सूर्य और शुक्र दोनों मूल ग्रह हैं, इसलिए मूल सम्बन्धी अर्थात् वनस्पति संबंधी अनुसन्धान सिद्ध हो जाता है। इस प्रकार हमने देखा कि किस प्रकार अष्टम भाव अनुसंधान (Research) का सिद्ध हो रहा है। साथ ही यह भी सिद्ध हो गया कि जीवन निर्वाह का कार्य (Profession) लग्न से देखना चाहिए।

नवम भाव का कारकत्व

दानं धर्मसुतीर्थं सेवनतपोगुर्वादि भक्त्यौषधा-
चाराश्चित्तविशुद्धिदेवभजने विद्याश्रमो वैभवः ॥ १६ ॥
यानं भाग्यनयप्रतापसुकथायात्राभिषेकादयः
पुष्टिः सज्जनसंगतिः शुभपितृस्वपुत्रपुत्र्यस्तथा।
अष्टैश्वर्यतुरंगनागमहिषाः पट्टाभिषेकालय-
ब्रह्मस्थापनवैदिकक्रतुधनक्षेपाः स्युरङ्कक्षतः ॥ १७ ॥

नवम भाव से विचार करने योग्य बातें अर्थात् कारकत्व इस प्रकार है—

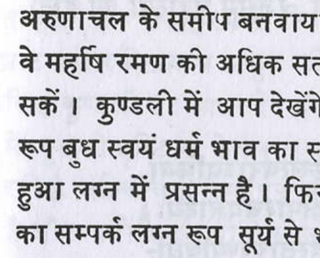
दान, धर्म, तीर्थों में जाना, तप, गुरुजनों में भक्ति, औषधि, चित्त की पवित्रता, देव पूजा, विद्या के लिए श्रम, वैभव, सवारी, भाग्य, नम्रता, प्रताप, धार्मिक कथा, यात्रा, राज्याभिषेक आदि, पुष्टि, साधु संग, पुण्य, पिता का धन, पुत्र-पुत्री, हर प्रकार का ऐश्वर्य, घोड़े-हाथी,

भैंसें, राज्याभिषेक का स्थान, ब्रह्म ज्ञान की स्थापना, वैदिक यज्ञ, धन का दान।

लग्न तथा तृतीय आदि निज द्योतक भावों का सम्बन्ध जब नवम भाव से हो जाता है तो मनुष्य साधुओं, महात्माओं की संगति अधिक करता है। उदाहरणार्थ, नीचे एक मुसलमान प्रोफेसर साहब की कुण्डली दी जा रही है जो न केवल वेदान्त में दीक्षित शाकाहारी थे, बल्कि वे अरुणाचल के महर्षि रमण के भक्त थे। उन्होंने एक मकान भी अरुणाचल के समीप बनवाया था ताकि वे महर्षि रमण की अधिक सत्संगति कर सकें। कुण्डली में आप देखेंगे कि विष्णु रूप बुध स्वयं धर्म भाव का स्वामी होता हुआ लग्न में प्रसन्न है। फिर उस बुध का सम्पर्क लग्न रूप सूर्य से भी है और उधर मित्रता तथा क्रिया भाव (तृतीय) का स्वामी स्वयं गुरु है जो कि धर्म स्थान में भी है। इसलिए भी सत्संगति सिद्ध होती है।



इसी धर्म के सन्दर्भ में एक और दुर्लभ कुण्डली हम आपकी सेवा में उपस्थित करते हैं।



यह कुण्डली एक विरक्त, जीवन्मुक्त महात्मा की है। आप देखेंगे कि चतुर्थ भाव में चन्द्र विद्यमान है। दूसरे शब्दों में मन के द्योतक दोनों अंग एकत्रित हैं। दोनों पर शनि की पूर्ण दृष्टि है जिसके फलस्वरूप मन में इतना वैराग्य है कि संसार की कोई बात करना भी वह अपने आत्मानन्द में एक बाधा समझते हुए किसी सांसारिक व्यापार में प्रवृत्त नहीं होते। यह तो रही वैराग्य की बात, अब आइए, अध्यात्म की ओर। देखिए, लग्न से नवम भाव में एक नैसर्गिक शुभ ग्रह शुक्र स्थित है और गुरु जो लग्नेश है वह नवम पर अपनी केन्द्र स्थिति द्वारा और नवमेश पर अपनी पूर्ण सम्बन्ध स्थापित कर रहा है। इतना ही नहीं, यदि आप कुण्डली का अध्ययन सूर्य लग्न से करें तो आपको पता चलेगा कि

नवमेश आत्मकारक सूर्य चलकर लग्न में आ गया है और लग्नेश शुभ धार्मिक बृहस्पति और मित्र चन्द्र दोनों उस नवमेश को देख रहे हैं। दूसरे शब्दों में, लग्न तथा सूर्य लग्न से नवमेश के बीच में भी पूर्ण घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित हो चुका है। इसी प्रकार कुण्डली का विचार यदि आप चन्द्र लग्न से करेंगे कि चन्द्र लग्न से नवमेशशनि की चन्द्र पर पूर्ण दृष्टि है और चन्द्र लग्न शनि से दशम है। इस प्रकार तीनों लग्नों से धर्म और अध्यात्म के भावों के स्वामियों का तीनों लग्नों अथवा उनके स्वामियों से पूर्ण सम्बन्ध है। यह है कुण्डली का दर्पण, जिसमें महात्मा की ब्राह्म स्थिति प्रत्यक्ष दिखाई देती है।

दशम भाव का कारकत्व

वाणिज्यं नृपमान्यताश्वगमनं मल्लत्वराज्यक्रिया,
दासत्वं कृषिवैद्यकीर्तिनिधिनिक्षेपाश्चयज्ञादयः।
श्रेष्ठत्वं गुरुयन्त्रमन्त्रजननी विस्तारपुण्यौषधो-
रुस्थानामरमन्त्रसिद्धिविभवाः स्याद्दत्तपुत्रः प्रभुः ॥१८॥

मार्गो मानसुजीवने च नृपराट् प्रख्यातिशिक्षादया,
मुद्राप्राभवनिग्रहौ च दशमादाज्ञामतिः स्यादिति।

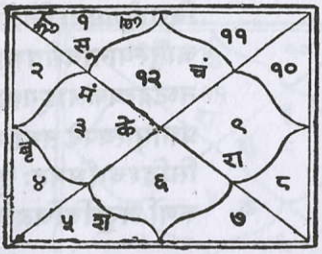
दसवें भाव से इन बातों का विचार किया जाता है—

वाणिज्य, राज्य की ओर से मान, घोड़े की सवारी, कुश्ती आदि खेलों में दक्षता, राज्य कार्य, नौकरी, कृषि, चिकित्सक, यश, निधि का स्थान विशेष में रखना, यज्ञ आदि शुभ कार्य, उत्तमता, बड़े-बूढ़े लोग, यन्त्र, मन्त्र, माता, विस्तार, पुण्य, औषधि, कमर, देवता, मन्त्र-सिद्धि वैभव, गोद लिया पुत्र, मालिक, मार्ग (सड़क); मान, शुभ जीवन, युवराज, बहुत ख्याति, पढ़ाना आदि, मोहर, गौरव, दूसरों को काबू करना, आज्ञा तथा मति।

मान का विचार दशम स्थान से करना चाहिए। परन्तु मान प्राप्ति पर विचार तभी पूर्ण समझा जावेगा जबकि दशम के अतिरिक्त सूर्य तथा लग्न पर भी विचार कर लिया जाए। 'सर्वार्थचिन्तामणि' अध्याय ८, श्लोक २५ में आया है जोकि—

अपकीर्तियुतो जातः कर्मस्थे च रवौ शनौ

अर्थात् रवि तथा शनि दोनों ग्रह यदि दशम स्थान में हों तो मनुष्य अपमानित होता है। यहाँ अपमान का कारण यह है कि शनि मान स्थान अर्थात् दशम स्थान को तथा मानकारक सूर्य दोनों को अपनी पापमयी तथा शत्रुमयी युति से पीड़ित करेगा। शनि अपनी दशम केन्द्र स्थिति के कारण लग्न पर भी अपमानजनक प्रभाव डालेगा। इसके विपरीत जब लग्न, सूर्य तथा दशम भाव सब बलवान् हों और पाप प्रभाव से खाली हों, तो मनुष्य को यश और कीर्ति तथा महामान की प्राप्ति होती है। उदाहरण के लिए कवि-सम्राट श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर की निम्नलिखित कुण्डली पर ध्यान दें। इस कुण्डली में गुरु की दृष्टि न केवल लग्न पर पड रही है बल्कि चन्द्र लग्न पर भी पड़ रही है और क्योंकि इन दोनों लग्नों



में गुरु को अपनी ही राशि मीन है अत: 'यो यो भाव: स्वामिदृष्टो युतो वा तस्य तस्यास्ति वृद्धि:' के नियमानुसार लग्न की और चन्द्र लग्न की अतीव वृद्धि समझी जाएगी। दूसरे शब्दों में, लग्न तथा चन्द्र लग्न दोनों बलवान् माने जाएँगे। सूर्य तो अपनी उच्चराशि में दो शुभ ग्रहों के साथ स्थित हुआ बलवान् है। रह गई वात दशम की, वह भाव इसलिए बलवान् समझा जावेगा क्योंकि गुरु हो लग्न और दशम दोनों भावों का स्वामी है। यदि लग्न गुरु की स्वराशि पर दृष्टि के कारण बलवान् होती है तो दशम भाव मीन लग्न वालों का स्वत: बलवान् हो जाता है। इस सिद्धान्त का उल्लेख हम इसी खण्ड के श्लोक ८-९ की व्याख्या में कर चुके हैं। अत: कविवर को कुण्डली में लग्न, दशम भाव तथा सूर्य सभी बलवान् सिद्ध होते हैं। यही योग इनकी अमर कीर्ति का द्योतक है।

जब किसी जन्म कुण्डली में सभी लग्न बलवान हों अर्थात् लग्न, लग्नेश, चन्द्र लग्न, चन्द्र लग्नेश, सूर्यलग्न तथा सूर्य लग्नेश सभी बलवान् हों, अर्थात् अपने-अपने स्वामियों से युक्त हों अथवा दृष्ट हों अथवा अन्य किसी प्रकार से बलवान हों और साथ ही इन लग्नों से दशम भाव अथवा दशमेश भी बलवान हों तो वह व्यक्ति जिसकी कुण्डली में ऐसा सुयोग हो, न केवल उच्च स्तरीय व्यक्ति होता है बल्कि राज्य सत्ता भी किसी न किसी प्रकार से इसके हाथ में रहती है। जवाहरलाल नेहरू हो

या इन्दिरा गाँधी, जुल्फीकार अली भुट्टो हो या जगजीवन राम सबकी कुण्डलियों में आपको लग्नों के साथ-साथ दशम भाव भी बलवान दृष्टि गोचर होंगे।

एकादश भाव का कारकत्व

> **लाभः सर्वविधेर्दुराशसकलादायौ पराधीनता**
> **ज्येष्ठभ्रातृपितृव्यनिर्जरगणार्चा सात्त्विकोपासनम् ॥१६॥**
> **विद्याहेमधनार्जनेऽतिपटुता स्वं पूर्वपित्र्यं तथा**
> **जानुस्थानविशेषभूषणमणिप्रीतीनवित्तानि च।**
> **नष्टद्रव्यकलाङ्गनार्थकनकस्वर्णादिकार्याप्तयः**
> **प्रज्ञामात्यपदे तथा श्वशुरजो लाभश्च भाग्योदयः ॥२०॥**
> **सिद्धिश्चाभिमतः सुलाभपचने चाशा जनन्यायुषी**
> **कर्णौ जङ्घविचित्रलेखनकलानैपुण्यमेकादशात्।**

ग्यारहवें भाव से निम्नलिखित विषयों का विचार किया जाता है—

हर प्रकार का लाभ, बुरी आशा, हर प्रकार की प्राप्ति, पराधीनता, ज्येष्ठ भाई, पिता के भाई, देवपूजा, सात्विक व्यक्तियों की उपासना, विद्या, सोना तथा धन उपार्जन करने में दक्षता, पैतृक धन, जानु (घुटने), विशिष्ट पदवी, भूषण तथा मणियों की प्रीति, मालिक का धन, सूद की हानि, प्रेमिका के लिए सोने-चाँदी के आभूषण बनवाना, प्रज्ञा, मन्त्री पद, ससुर से लाभ, भाग्योदय, अभीष्ट वस्तु की सिद्धि, बिना कष्ट लाभ, खाना पकाना, आशा, माता की आयु, कान, जंघा, चित्रकला में निपुणता।

एकादश स्थान जहाँ लाभ का स्थान है वहाँ यह स्थान मूल्य का भी है। दूसरे शब्दों में, इस स्थान का स्वामी यदि शुभ ग्रह हो तो वह जिस भाव अथवा ग्रह से युति अथवा दृष्टि द्वारा सम्पर्क अथवा सम्बन्ध स्थापित करेगा उसको 'मूल्यवान्', 'धनी', 'उच्च स्तरीय' बना देगा। यह स्थिति एकादश भाव के कारक अर्थात् गुरु की है। यह ग्रह भी अपनी युति तथा दृष्टि से वस्तुओं आदि के मूल्य को बढ़ाता है। इस सन्दर्भ में 'सर्वार्थ चिन्तामणि' के अध्याय ३ का धन भाव सम्बन्धी निम्नलिखित श्लोक सं० ६६ अवलोकनीय है—

'लाभेशतत्कारकदृष्टियोगाद् एवं वदत्यत्र धने बहुत्वम्'

अर्थात् किसी कुण्डली में धन स्थान अथवा धनेश के साथ लाभेश अथवा गुरु का सम्बन्ध योग अथवा दृष्टि द्वारा हो जावे तो मनुष्य बहुत धन का मालिक होता है। इसी सिद्धान्त को हम सब भावों आदि पर लगा सकते हैं।

उदाहरणार्थ, कायदे आजम मुहम्मद अली जिन्ना की कुण्डली पर विचार करें।



यहाँ गुरु के कारकत्व और स्वामित्व पर यदि आप विचार करेंगे तो देखेंगे कि गुरु न केवल धन का कारक ही है, अपितु उक्त सर्वार्थ चिन्तामणि के श्लोकानुसार 'मूल्य' का भी ग्रह है, क्योंकि लाभेश है। इतना ही नहीं, गुरु धनेश होने के कारण भी मूल्य का प्रतिनिधि है। इतना ही क्यों, गुरु चन्द्र लग्न का स्वामी होने से भी 'मूल्य' का द्योतक है। गुरु सूर्य का स्वामी होने से भी 'मूल्य' का परिचायक है। ऐसे महान 'मूल्यवर्द्धक' की युति तो हो रही है चतुर्थेश के साथ और दृष्टि पड़ रही है चतुर्थ भाव पर।

अत: स्पष्ट है कि इस महापुरुष को सुख-सामग्री बहुत मूल्यवान् रूप में प्राप्त हुई। चतुर्थ स्थान भूमि स्थान भी है। अत: इसे पाकिस्तान के रूप में भूमि भी प्राप्त हुई।

एकादश भाव से बड़े भाइयों की संख्या आदि का विचार किया जाता है। यदि इस स्थान में गुरु शत्रु क्षेत्री होकर बैठा हो और उस पर युति अथवा दृष्टि द्वारा किसी पापी ग्रह का प्रभाव भी हो तो ज्येष्ठ भ्राता का अभाव कहना चाहिए। यदि गुरु स्वयं एकादश भाव का स्वामी होकर पापी ग्रहों से पीड़ित हो और नेष्ट स्थानों—छठे, आठवें, बारहवें आदि में स्थित हो तो भी बड़े भाई का अभाव कहना चाहिए या फिर एकादश भाव का स्वामी और उसका कारक गुरु पृथक्-पृथक् स्थानों में निर्बल होकर पाप दृष्ट हों तो भी बड़े भाई का अभाव कहना चाहिए। जिन कुण्डलियों में एकादश भाव का स्वामी कोई नैसर्गिक पापीग्रह—जैसे सूर्य, शनि, मंगल हो और वह पञ्चम भाव में स्थित हो;

परन्तु पञ्चम अथवा एकादश भाव शुभ युक्त, शुभ दृष्ट न हो तो भी प्रायः बड़े भाई का अभाव रहता है। यदि छठे भाव का स्वामी अत्यन्त निर्बल तथा पाप युक्त पाप दृष्ट हो और यही दशा छठे भाव की हो तो ज्येष्ठ भाइयों की आयु को भय रहता है। रिश्ते में एकादश भाव पिता के छोटे भाई का भी है। इसी प्रकार यह भाव पुत्री के पति का भी है। यदि एकादश भाव में गुरु शत्रु का पाप युक्त पाप दृष्ट हो तो पुत्री के विधवा हो जाने का भय रहता है। एकादश भाव मातृ स्थान से अष्टम पड़ता है। अतः यदि इस स्थान का स्वामी बहुत निर्बल हो तो माता की आयु थोड़ी होती है।

क्योंकि चतुर्थ स्थान प्रजा अथवा जन साधारण का भी माना गया है, इसलिए एकादश स्थान उससे अष्टम होने के कारण जनता की मृत्यु का भाव बनता है। इस तथ्य का प्रयोग आप किसी देश के प्रमुख शासक अथवा सेनाधीश की कुण्डली में कर सकते हैं। यदि किसी ऐसे प्रमुख नेता की कुण्डली में एकादशभाव और उसका स्वामी निर्बल और पीड़ित हो तो ऐसे नेता के शासनकाल में जनता पर महान आपत्ति आती है, युद्ध आदि द्वारा जनता के प्राणों का नाश होता है। यही एकादश स्थान पुत्र की स्त्री का भी है। अतः उसका विचार भी इसी भाव से करना चाहिए।

द्वादश भाव का कारकत्व

निद्राभङ्गमनोव्यथेऽङ्घ्रियुगलं शत्रोर्भयं बन्धनं
पीडामुक्तिऋणप्रमोचनगजाश्वाः पित्र्यवित्तं रिपुः ॥२१॥
स्वर्गारोहणवामनेत्रजनविद्वेषाङ्गवैकल्यता
जारत्वं च विवाहनष्टशयनत्यागाधिकारक्षयाः।
शत्रोः शृङ्खलगेहचित्तविकलौ दीनस्वभावासतौ
पित्रोः सोदरसौख्यचिन्तनहतिस्तौ वादरोषौ क्रमात् ॥२२॥
देहार्तिभृं तिकान्यदेशगमने सर्वप्रकारव्ययो
भार्याहानिरितिक्रमान्निगदितास्तत्कारका रिःफभात्।

बारहवें भाव से इन बातों का विचार किया जाता है—

नींद का टूटना, मन की व्यथा, दोनों पांव, शत्रु से भय, बन्धन (क़ैद), दर्द से छुटकारा, ऋण से छुटकारा, हाथी, घोड़े, पिता की

सम्पत्ति (मकान आदि), शत्रु, स्वर्ग जाना, बायीं आँख, जनता की ओर से शत्रुता, शरीर के किसी अंग का भंग हो जाना, मित्रता, विवाह, नाश, सो जाना, त्याग, अधिकार की समाप्ति, शत्रु का जंजीरों वाला घर, मानसिक बेचैनी, स्वभाव में दीनता का आना, हानि, पिता तथा भाई के सौख्य के चिन्तन का नाश, झगड़ा, क्रोध, शारीरिक क्षति, मृत्यु, अन्य देश को जाना, सर्वप्रकार का व्यय व पत्नी की हानि।

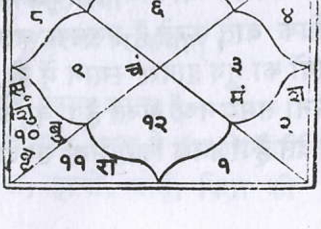
इस श्लोक में मुख्य बात व्यय की है। व्यय से तात्पर्य खर्च, त्याग, पृथकता, हानि सभी हैं। जो ग्रह द्वादश भाव में आ जाता है वह जिस वस्तु आदि से सम्बन्ध रखता है उस वस्तु का वह बहुत व्यय करता है। इसी प्रकार द्वादश भाव का स्वामी जिस भाव में जाकर स्थित हो, मनुष्य को उस भाव से अर्थात् उस भाव सम्बन्धी बातों से पृथक् कर देता है। व्यय तो सदा प्रयोग से ही होता है। अत: जो ग्रह द्वादश स्थान में स्थित हो वह निज सम्बन्धित बातों का प्रयोग खर्च, व्यय, दान, त्याग आदि को प्रदर्शित करता है। सूर्य जब द्वादश स्थान में स्थित हो तो निज का व्यय होता है। अर्थात् मनुष्य अपने सुखों का त्याग दूसरों के लिए करता है। वह दूसरों का खूब आतिथ्य करके स्वयं हानि उठाता है।

सूर्य क्योंकि आँख है और व्ययस्थान खर्च, इसलिए ऐसा व्यक्ति आँख का प्रयोग आवश्यकता से अधिक करके अपनी आँख को बिगाड़ लेने की स्थिति में होता है। विशेषतया जबकि सूर्य पर शनि, राहु आदि अन्य त्यागात्मक तथा रोगात्मक ग्रहों का भी प्रभाव हो। चन्द्र एक भावनामय मानसिक ग्रह है। इस ग्रह की द्वादश स्थान में स्थिति मनुष्य को भावुक बना देती है। वह बिना कारण के भय, आशंका, श्रद्धा आदि भावनाओं की अपने अन्दर सृष्टि कर लेता है। मंगल एक शक्ति का कारक ग्रह है। अत: जिन लोगों की कुण्डली में मंगल द्वादशभाव में होता है वे अपनी शक्ति का अनावश्यक एवं दुष्प्रयोग करते हैं तथा अपने शरीर के पट्ठों (Muscles) से आवश्यकता से अधिक काम लेते हैं।

जिन व्यक्तियों का बुध व्यय भाव में होता है वे आवश्यकता से अधिक बातें करते हैं। उनका वाणी पर संयम कम हो जाता है। जिन लोगों का गुरु द्वादश स्थान में हो वे दूसरों को ज्ञान की बातें बताने में अपना समय नष्ट करते हैं। वह प्राय: शिक्षा और उपदेश उन व्यक्तियों को देते हैं जिनके लिए उस उपदेश का कोई अर्थ या फल नहीं होता।

जिन व्यक्तियों का शुक्र द्वादश स्थान में हो और शनि राहु से पीड़ित हो वह अपने वीर्य का बहुत व्यय करते हैं, बल्कि अपव्यय करते हैं। पढ़ते बहुत हैं। स्त्री से उनका मनमुटाव रहता है। यद्यपि उनकी स्त्री प्रायः दीर्घजीवी होती है क्योंकि स्त्री का कारक शुक्र द्वादश स्थान में विशेष हर्ष और बल पाता है। जिन लोगों का शनि द्वादश स्थान में हो और राहु से प्रभावित हो तो वह अपनी स्नायु का अधिक प्रयोग करते हैं और रूखे तथा चिड़चिड़े स्वभाव के हो जाते हैं। उनको स्नायु के किसी रोग की सम्भावना रहती है। राहु और केतु की स्थिति का फल प्रायः क्रमशः शनि तथा मंगल की भाँति समझना चाहिए। इसी प्रकार प्रत्येक द्वादशेश जहाँ जाकर स्थित होगा मनुष्य को उससे पृथक् करेगा और यदि द्वादशेश सूर्य, शनि पृथक्ता-जनक ग्रहों में से कोई हो तो फिर तो उस भाव से शीघ्र ही पृथक्ता हो जाएगी और यदि सूर्य अथवा शनि की राशि में राहु द्वादश स्थान में स्थित हो तब तो सूर्य तथा शनि में और भी अधिक पृथक् करने की शक्ति आ जावेगी और ऐसी स्थिति में मनुष्य उन वस्तुओं से तुरन्त पृथक् हो जाएगा जिनसे कि ऐसे सूर्य अथवा शनि का सम्बन्ध हो। अब यदि इस ओर तो राहु-अधिष्ठित अथवा राहु तथा शनि-अधिष्ठित राशि का स्वामी सूर्य द्वादशेश हों या फिर राहु-अधिष्ठित अथवा राहु तथा सूर्य-अधिष्ठित राशि का स्वामी शनि द्वादशेश हो और उधर जिनको यह सूर्य अथवा शनि प्रभावित करें वे भी सम्बन्धी आदि के कारक आदि रूप में पूर्ण प्रतिनिधि हों तो फिर मनुष्य उस सम्बन्धी आदि से आयु भर पृथक् हो जाता है यद्यपि दोनों संसार में जीवित रहते हैं।

स्पष्ट रूप से समझने के लिए दी गई कुण्डली देखिए। यह कुण्डली एक ऐसे सज्जन की है जिसकी अपनी स्त्री से विवाह के बाद पाँच महीनों के अन्दर ही पृथक्ता हो गई और फिर आयु भर पति-पत्नी एक-दूसरे से न मिल पाए।



इस व्यक्ति के यहाँ उसकी पत्नी की माँ के घर एक ही पुत्र हुआ और वह भी अपने पिता को ३४ वर्ष तक न मिल पाया और मिला भी तो मिलकर पुनः उससे पृथक् हो गया। इस कुण्डली में आप चार ग्रहों

का योग देख रहे हैं। उनमें गुरु और शुक्र एक श्रेणी में रख लीजिए। गुरु सप्तमाधिपति होने से स्त्री का प्रतिनिधित्व करता है और शुक्र तो स्त्री का कारक है ही।

दूसरे शब्दों में, गुरु या शुक्र पर यदि कोई अच्छा या बुरा प्रभाव पड़ेगा तो वह स्त्री पर पूर्ण रूप से पड़ा प्रभाव ही समझा जाएगा। यहाँ गुरु शुक्र के साथ तो है सूर्य और बुध, देख रहा है मंगल और घेरा हुआ है चन्द्र और राहु ने। जैसा आप पढ़ चुके हैं सूर्य एक भारी पृथक्ता लाने वाला ग्रह यहाँ न केवल द्वादशेश ही है अपितु केतु-अधिष्ठित राशि का स्वामी भी है। ऐसी स्थिति में आप सूर्य की "पृथक्ताकारी" शक्ति का अनुमान सहज ही में लगा सकते हैं।

ऐसा प्रबल पृथक्ताकारी ग्रह जब स्त्री के पूर्ण प्रतिनिधित्व करने वाले ग्रहों गुरु तथा शुक्र पर अपनी युति से प्रभाव डाल रहा है तो इस व्यक्ति का स्त्री से आयु भर के लिए पृथक् हो जाना स्पष्ट हो जाता है। मंगल की गुरु शुक्र पर दृष्टि घाव पर नमक का कार्य करती है। इसी प्रकार एक पापी चन्द्र और राहु का गुरु शुक्र घेरना भी पृथक्ता में सहायक है न कि बाधक। इसी प्रकार पुत्र से पृथक्ता पर भी विचार कर सकते हैं। पुत्र का कारक गुरु पुत्र स्थान में ही विद्यमान है। अतः यह स्पष्ट है कि गुरु पर जो भी प्रभाव पड़ेगा वह पंचम भाव तथा उसके कारक दोनों पर पड़ेगा। अब देखिए गुरु, सूर्य, शुक्र तथा बुध के साथ चन्द्र राहु से घिरा और मंगल से दृष्ट है। सूर्य की पंचम भाव तथा उसके कारक गुरु से युति व्यक्ति को पुत्र से पृथक् करेगी। यह तो आप स्त्री से पृथक्ता के प्रसंग में देख ही चुके हैं।

शुक्र क्योंकि शनि-अधिष्ठित राशि का स्वामी है, अतः इसका गुरु तथा पंचम भाव से योग सूर्य की भाँति पृथक्ता ही का कारण बनेगा न कि मिलाप का। फ़िर बुध है मंगल-अधिष्ठित राशि का स्वामी। वह कैसे इस पृथक्ता में सहायक हो सकता है और वैसे भी सूर्य आदि पृथक्ताजनक ग्रहों के साथ बुध भी वही रूप धारण करेगा। ऐसा ज्योतिष का मौलिक सिद्धान्त भी तो है। चन्द्र, राहु तथा मंगल के प्रभाव का अध्ययन हम पहले भी कर चुके हैं।

इस प्रकार पुत्र से भी ३४ वर्ष तक की दीर्घ पृथक्ता सिद्ध हो जाती है। इसी व्यक्ति के पुत्र की जन्म-कुण्डली पाठकों की सुविधा एवं

अध्ययन के लिए नीचे दी जा रही हैं। इस कुण्डली में विचारणीय बात यह है कि वह कौन-सी ग्रह स्थिति है जिसके कारण इस व्यक्ति का अपने पिता से वियोग जन्म से लेकर ३४ वर्ष की आयु तक रहा। नवम भाव जो पिता का भाव है उसका स्वामी मंगल नवम से नवम भाव अर्थात् पंचम भाव में है। उस पर केतु की दृष्टि, गुरु का केन्द्रीय प्रभाव तथा सूर्य शनि का



पाप मध्यत्व है। केतु की दृष्टि पृथक्ताजनक है ही, फिर इस केतु में अधिकतर प्रभाव केन्द्रस्थ चन्द्र का है जो द्वादशेश है। अतः केतु पिता से पृथक्ता दर्शाता है। सूर्य और शनि दोनों के दोनों विशेष रूप से पृथक्ता कारक हैं ही, पर यहाँ यह अत्यन्त रूप से "पृथक्ताकारी" इसलिए भी बन गए हैं कि सूर्य तो केतु-अधिष्ठित राशि का स्वामी है और शनि राहु अधिष्ठित राशि का। पिता के कारक सूर्य पर केतु का केन्द्रस्थ प्रभाव पिता से पृथक्ता लाता है। इसी प्रकार द्वादशेश चन्द्र का सूर्य पर प्रभाव भी पृथक्ता लाता है। सूर्य के एक ओर राहु की दृष्टि है तथा दूसरी ओर केतु की। ये भी पृथक्तावादी दृष्टियाँ हैं। इसी प्रकार सूर्य के एक ओर सूर्य-अधिष्ठित राशि का स्वामी और इसीलिए पृथक्ता कारक मंगल है और दूसरी ओर राहु-अधिष्ठित राशि के स्वामी शनि की दशम दृष्टि का प्रभाव है।

इस प्रकार नवमेश तथा सूर्य पिता के पूर्ण कारक द्वादशेश शनि केतु आदि प्रभावों में आने के कारण पिता से ३४ वर्ष के लम्बे समय तक पृथक् रहने का कारण बने।

श्लोक संख्या २१ में "निद्रा भंग" का सम्बन्ध भी द्वादश भाव से बतलाया गया है। चूंकि द्वादश स्थान "पलंग के सुखों" (Pleasures of the Bed) से सम्बन्धित है, इसको नींद का प्रतिनिधित्व मिलना उपयुक्त ही है। जब नींद का सम्बन्ध हो गया तो नींद के टटने का संबंध तो साथ ही हो गया, क्योंकि भाव सदा अभाव का सूचक होता है। नींद के न आने (Insomnia) के रोग का इसीलिए द्वादश स्थान से पूरा सम्बन्ध है। 'नींद' का कारक शुक्र है। अतः जब द्वादश भाव, उसका

स्वामी और शुक्र तीनों पाप-प्रभाव में हों विशेषतया सूर्य शनि तथा राहु के प्रभाव में हों तो मनुष्य की नींद जाती रहती है और वह उपरोक्त रोग का शिकार हो जाता है।

नवग्रहों का कारकत्व

सूर्य से विचारणीय विषय—

आत्माशक्त्यतितीक्ष्णदुर्गसुबलाश्चोष्णप्रभावाग्नयः।
शैवोपासनधैर्यकण्टकतरू राजाश्रयत्वं कटुः ॥२३॥
वृद्धत्वं पशुदौष्टचभूपितृरुचिज्ञानोदयव्योमदृक्
भीरूत्पन्नमनुष्यलोकचतुरश्रास्थिप्रतापास्तृणम् ।
कुक्ष्युत्साहवनायनाक्षिगिरिसञ्चाराश्चतुष्पान्नृपः
सञ्चारो व्यवहारपित्ततपना वृताकृतिर्नेत्ररुक् ॥२४॥
देहो दारु मनः शुचिः सकलदेशाधीश्वरत्वं ह्यरुक्
सौराष्ट्राधिपतित्वभूषणशिरोव्याधिश्च मुक्ताः खपः।
ह्रस्वः पूर्वदिगीशताम्ररुधिरे राज्यं च रक्तः पटः
पाषाणप्रकटप्रवर्तननदीतीरप्रवालाभिधाः ॥२५॥
मध्याह्नप्रबलत्वपूर्ववदनः स्याद्दीर्घरोषो रिपु-
ग्राहः सात्त्विकरक्तचन्दनपरत्वस्थूलतन्तू रवेः।

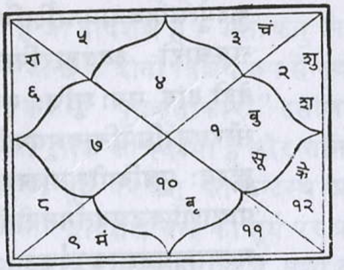
सूर्य निम्नलिखित वस्तुओं का कारक है। आशय यह है कि सूर्य से उन वस्तुओं का विचार करना चाहिए—

आत्मा, शक्ति, तीक्ष्णता, दुर्ग (किला), अच्छा बल, गरमी, प्रभाव, अग्नि, शिव-पूजा, धैर्य, कांटेदार वृक्ष, राज्य का आश्रय, कटुता; बुढ़ापा, पशु, दुष्टता, भूमि, पिता, रुचि, ज्ञान, (आत्म साक्षात्कार); आकाश की ओर दृष्टि, डरपोक की सन्तान, मनुष्य लोक, चौकोर, हड्डी, प्रताप, तृण, पेट, उत्साह, वन, आधा वर्ष, आँख, वन में भ्रमण, चौपाया, राजा, यात्रा, व्यवहार, पित्त, तपना, वृत्त की आकृति, नेत्र की बीमारी, शरीर, लकड़ी, मन की पवित्रता, सकल देश पर शासन, रोग का अभाव, सौराष्ट्र देश का आधिपत्य, भूषण, सिर के रोग, मोती, आकाश का स्वामी, कद में छोटा, पूर्व दिशा का स्वामित्व, ताँबा, रक्त, राज्य, लाल कपड़ा, पत्थर, दिखलाकर काम करना, नदी का किनारा,

मूंग, मध्याह्न बली, पूर्व दिशा, दीर्घ समय तक का क्रोध, शत्रु का पकड़ना, सात्विक, लाल चन्दन, शत्रुता, मोटा शरीर।

जो भी सूक्ष्म, पवित्र, मौलिक, आधारभूत, महान् मल्यवान् तत्त्व कहीं भी है वह सूर्य द्वारा कुण्डली में प्रतिनिधित्व प्राप्त करता है।

जब हम कहते हैं कि सूर्य 'आत्मा' है तो हमारा तात्पर्य जहाँ यह होता है कि सूर्य आत्मा की भाँति सूक्ष्मतम मार्मिक अन्तर्तम पदार्थों का सूचक है वहाँ इसका अर्थ 'स्व' अर्थात् अपने आप भी होता है। इसीलिए यदि जन्म-कुण्डली में सूर्य किसी योग में भाग लेता है तो वह निजकृत स्वेच्छाकृत जान-बूझकर (Deliberate) किया हुआ समझना चाहिए। उदाहरणार्थ लीजिए कमाण्डर नानावती की जन्म-कुण्डली जो बम्बई की 'ब्लिटस' साप्ताहिक पत्रिका में प्रकाशित हुई थी। इस ऑफिसर की विदेशी स्त्री किसी जवान व्यापारी पर आसक्त हो गई थी और कमांडर नानावती ने उस व्यापारो की हत्या कर दी थो। यहाँ हत्या का योग सूर्य और चन्द्र बना रहे हैं क्योंकि दोनों



'स्व' अथवा निज के प्रतिनिधि हैं। ध्यान रहे कि चन्द्रपक्ष बल में हीन बली है और लग्नेश है अत: क्रूर 'स्व' (Self) का प्रतिनिधि हुआ। इसने सूर्य अर्थात् 'निज' के एक-दूसरे प्रतिनिधि से मिलकर शुक्र को पाप मध्यत्व द्वारा पीड़ित किया। जिससे शुक्र की नानावती द्वारा मृत्यु हुई। अब देखना यह है कि शुक्र किस बात का प्रतिनिधि है। चूँकि शुक्र सप्तम भाव का प्रेमी (Lover) है या यूँ कहो कि यह वह व्यक्ति है जिस पर कमांडर की स्त्री आसक्त थी। पंचम भाव प्रिया अथवा प्रेमी का माना ही गया है। इस प्रकार सूर्य तथा चन्द्र अर्थात् निज ने (Self of the Commander) पत्नी के प्रेमी का अन्त किया।

चन्द्रमा का कारकत्व—

बुद्धिः पुष्पसुगन्धदुर्गगमनव्याधिद्विजालस्यक-
श्लेष्मापस्मृतिगुल्मभावहृदयस्त्रीसौम्यपापाम्लकाः ॥२६॥

निद्रा सौख्यजलस्वरूपरजतस्थूलेक्षुशीतज्वरा
यात्रा कूपतटाकमातृसमदृग्मध्याह्नमुक्ताक्षयाः ।
धावल्यं कटिसूत्रकांस्यलवणह्रस्वामनः शक्तयो
वापी वज्रशरन्मुहूर्तमुखकान्तिश्वेतवर्णोदराः ॥२७॥
गौरीभक्तिमधुप्रसादपरिहासाः पुष्टिगोधूमका
मोदाः कान्तिमुखे मनोजवदधिप्रीती तपस्वी यशः ।
लावण्यं निशि वीर्यपश्चिममुखे विक्षारकार्याप्तयः
प्रत्यग्दिक्प्रियमध्यलोकनवरत्नानीह मध्यं वयः ॥२८॥
जीवो भोजनदूरदेशगमने लग्नं च दोर्व्याधयः
छत्राद्यञ्चितराजचिह्नसुफले सद्रक्तधातुस्तथा ।
मीनाद्या जलजाः सरीसृपदुकूले सद्विकास्फुरत्
शुद्धस्तत्स्फटिकास्ततो मृदुलकं वस्त्रं त्वमी स्युर्विधोः ॥२९॥

चन्द्रमा निम्ननिर्दिष्ट वस्तुओं का कारक है—

बुद्धि, फूल, सुगन्ध, दुर्ग की ओर जाना, रोग, ब्राह्मण, आलस्य, कफ, मिरगी का रोग, प्लीहा (Spleen) का बढ़ जाना, मानसिक भाव, हृदय, स्त्री, पुण्य-पाप, खटाई, नींद, सुख, जलीय पदार्थ, चांदी, स्थूल गन्ना, सरदी का बुखार, यात्रा, कुआं, तालाब, माता, समदृष्टि, मध्याह्न, मोती, क्षय रोग; श्वेत रंग, कटि का सूत्र, काँसी का धातु, नमक, छोटा कद, मन, शक्ति, बावली, हीरा, शरद ऋतु, मुहूर्त, मुख की कान्ति, श्वेत वर्ण, उदर, गौरी की भक्ति, मधु, कृपा, (Favour) हंसी-मजाक, पुष्टि, गेहूं, कान्ति, मुख, मानसिक, शीघ्र गति, दही की चाह, तपस्वी, यश, लावण्य, रात्रि में बली, पश्चिमाभिमुख, विद्वान, खारी चीजें, काम धंधे की प्राप्ति, पश्चिम दिशा से प्रेम, मध्य लोक, नवरत्न, मध्य आयु जीवन, खाना पीना, दूर देश गमन, लग्न (की भांति प्रयोग वाला), कन्धे की बीमारियाँ, छत्र तथा अन्य राज्य चिन्ह, अच्छा फल, अच्छा रक्त तथा शक्ति, जलोत्पन्न मछली तथा अन्य जीव, सांप, सिल्क का कपड़ा, अच्छा विकास, चमकीली वस्तु, स्फटिक, नरम कपड़ा ।

सब प्रकार की मानसिक भावनाओं, शंकाओं, भयावह वेदनाओं, प्रसन्नताओं, उदासीनताओं आदि का विचार हम उपलक्षण शास्त्र (Symbology) के अनुसार चन्द्रमा की जन्म कालीन स्थिति से करेंगे।

ग्रहों में सबसे तीव्र गति वाला ग्रह चन्द्रमा है। जिस दूरी को शनि २½ वर्ष में चलता है चन्द्रमा उसे केवल २¼ दिन में चल जाता है। अतः लक्षण शास्त्र के अनुसार तीव्रतम गति के सब पदार्थों का प्रतिनिधि कुण्डली में चन्द्र माना जाएगा। मन की प्रत्येक प्रकार की स्थिति प्रसन्नता-खेद-भय-प्रेम द्वेष आदि का अध्ययन हम कुण्डली में चन्द्र की स्थिति द्वारा करते हैं। शरीर के हड्डी, मांस, मज्जा, वीर्य, मेदा-रुधिर आदि तत्वों में रुधिर सबसे अधिक गतिशील है। यही कारण है कि उपलक्षण शास्त्रानुसार रक्त की स्थिति, उसकी मलिनता, रक्तचाप, रक्ताभाव आदि स्वास्थ्य सम्बन्धी सब बातों का विचार हम लोग जन्म कुण्डली में चन्द्र ही की स्थिति से करते हैं। जिन व्यक्तियों के चतुर्थ भाव तथा चन्द्र पर शनि की दृष्टि आदि प्रभाव रहता है वे उदासीन वृत्ति के होते हैं। जिनके चतुर्थ भाव तथा चन्द्रमा पर राहु का प्रबल प्रभाव होता है उनके मन में भय अधिक रहता है। जिन व्यक्तियों का चन्द्रमा क्षीण होकर अष्टम भाव में हो और चतुर्थ भाव तथा चन्द्र पर राहु का प्रभाव हो, अन्य शुभ प्रभाव न हो वे मिरगी रोग का शिकार होते हैं। जिन लोगों का चन्द्र छठे-आठवें आदि भावों में राहु दृष्ट न हो, वैसे पाप दृष्ट हो, शुभ दृष्ट न हो उनको रक्त-चाप (Blood pressure) आदि रहता है (विस्तार के लिए देखिए हमारी पुस्तक 'ज्योतिष और रोग')। चन्द्रमा गतिशील तथा ठंडा होने से जल तथा जलीय तरल पदार्थों का प्रतिनिधि है। यह ग्रह जब दूसरे जलीय तत्त्वों जैसे शुक्र चतुर्थेश, आदि से मिलकर मरण विधि के द्योतक अष्टम अष्टमेश लग्न लग्नेश पर प्रभाव डालता है तो जल में डूबने आदि से 'जलीय' मृत्यु को दर्शाता है, इसी गतिशीलता तथा कलाओं के बार-बार परिवर्तन के कारण उपलक्षण शास्त्रानुसार चन्द्रमा को एक चंचल अस्थिर (Fickle) ग्रह माना है। एक ऐसा व्यक्ति जो अपनी धारणा को शीघ्र बदल देता है, निश्चयों में स्थिर नहीं है, यद्यपि चन्द्र की प्रभा सूर्य से ली गई है तो भी है तो गौण प्रभा। अतः शरीर में भी जहां सूर्य मुख्य दाईं आँख का प्रतिनिधि है वहाँ चन्द्र बाईं आँख है। सूर्य द्वितीय स्थान में शत्रु राशिस्थ पाप दृष्ट दाईं आँख को बहुत हानि पहुंचाता है तो चन्द्र द्वादश स्थान में क्षीण होकर शत्रु राशि स्थित पाप दृष्ट बाईं आँख से हीन करता है। चन्द्र चूंकि शीघ्रतम ग्रह है यह ग्रह जीवन में शीघ्रतम आने वाली आयु अर्थात् शिश अवस्था—प्रथम अवस्था का द्योतक है। यही कारण है कि यदि

चन्द्रमा जन्म कुण्डली में अतीव निर्बल तथा पाप दृष्ट हो और लग्न भी निर्बल हो तो 'बालारिष्ट' अर्थात् शिशु अवस्था में मृत्यु का भय होता है। चन्द्र का आकाश में प्रत्यक्ष दिखाई देने वाला शुभ्र वर्ण है, अत: श्वेत रंग के पदार्थ, कपड़े, चाँदी, मोती, सीपी आदि से चन्द्र का विशेष संबन्ध है। चन्द्रमा क्योंकि मन है, अत: जब कोई व्यक्ति किसी ज्योतिषी से प्रश्न करता है तो ज्योतिषी उस समय की कुंडली में पूछने वाले के मन की स्थिति का अध्ययन करता है और चन्द्रमा की स्थिति तथा चन्द्रमा पर पड़ने वाले प्रभाव से पृच्छक् के मन का भाव जान जाता है और पृच्छक् के बिना बताए उसके प्रश्न को तथा उसके उत्तर को भी बता देता है। जन-जन का मन होने से चन्दा 'जनता' का कारक है। यदि चन्द्रमा बलवान् होकर चतुर्थ भाव तथा उसके स्वामी के साथ सम्बन्ध स्थापित करे तो मनुष्य सर्वसाधारण जनता में प्रिय होता है।

फेफड़ों के रोग में भी चन्द्रमा का विचार अनिवार्य है, क्योंकि चन्द्रमा काल पुरुष के चतुर्थ (छाती) अंग का स्वामी होकर फेफड़े का पूर्ण प्रतिनिधित्व करता है। जब चतुर्थ भाव, उसके स्वामी और चन्द्रमा इन तीनों पर शनि तथा राहु की युति अथवा दृष्टि का प्रभाव हो और ये ग्रह शुभ प्रभाव से रहित हों तो टी० बी० (T.B.) का रोग (क्षय) कहना चाहिए। एक लड़के की कन्या लग्न की कुंडली है और उसमें चन्द्रमा और राहु चतुर्थ भाव में, बुध लग्न में, गुरु तृतीय स्थान में शनि छठे, केतु दशम, मंगल एकादश तथा सूर्य और शुक्र द्वादश स्थान में स्थित हैं। इस लड़के को १६ वर्ष की आयु में टी० बी० का रोग हो गया। यहाँ आप देख रहे हैं कि चतुर्थ भाव और चन्द्र पर राहु की युति का प्रभाव है और चतुर्थ भाव का स्वामी गुरु तीसरे भाव में शनि की पूर्ण दशम दृष्टि में है। इस प्रकार चतुर्थ, चतुर्थेश और चन्द्र के राहु तथा शनि द्वारा पीड़ित होने के कारण फ़ेफड़ों का यह भयानक रोग हुआ।

इसी प्रकार एक उदाहरण और लें। इस उदाहरण में व्यक्ति की स्त्री को टी० बी० हो गई। यहाँ लग्न मकर है। चतुर्थ भाव में शनि राहु तथा चन्द्र हैं, पंचम में मंगल, दशम में शुक्र तथा केतु, एकादश में सूर्य तथा गुरु और द्वादश में बुध। यहां यद्यपि चतुर्थ भाव में चन्द्रमा पर शनि तथा राहु का प्रभाव है, यह भीषण रोग व्यक्ति को नहीं हुआ। उसका कारण एक तो यह है कि चतुर्थेश मंगल पर शुभ गुरु की दृष्टि है, दूसरे चतुर्थ स्थान को शुभ शुक्र देख रहा है। परन्तु जब आप सप्तम भाव को

स्त्री की लग्न मान कर कुण्डली पर विचार करेंगे तो आप देखेंगे कि शुक्र चतुर्थेश होकर और चन्द्रमा (छाती) का कारक होकर पीड़ित है और चतुर्थेश पर कोई शुभ दृष्टि नहीं। इस प्रकार भाव भावेश और भाव कारक से हमने फल का विचार किया।

मंगल का कारकत्व—

शौर्यं भूर्बलशस्त्रधारणजनाधीशत्ववीर्यक्षया-
श्चोरो युद्धविरोधशत्रव उदारा रक्तवस्तुप्रियः।
आरामाधिपतित्वतूर्यरवनं प्रीती चतुष्पान्नृपा
मूर्खः कोपविदेशयानधृतयो धात्रग्निवाग्वादताः ॥३०॥
पित्तोष्णव्रणराजसेवनदिनव्योमेक्षणह्रस्वरुग्
विख्यातित्रपुखड्ग कुन्तसचिवाश्चाङ्गस्फुटत्वं मणिः।
सुब्रह्मण्यजपे युवा कटुनृपस्थाने कुजोवग्रहो
मांसाशी परदूषणं रिपुजयस्तिक्तं निशान्ते बलम् ॥३१॥
हेमग्रीष्मपराक्रमारिपुबलं गाम्भीर्यशौर्ये पुमान्
शीलं ब्रह्मपरश्वधौ वनचरो ग्रामाधिनाथत्वता।
राजालोकनमूत्रकृच्छ्रचतुरस्रस्वर्णकाराः खलो
दग्धस्थानसुभोजने कृशधनुर्विद्याप्रवीणत्वते ॥३२॥
रक्तंताम्रविचित्रवस्त्रयमदिग्वक्त्रे च तद्विप्रियः
कामक्रोधपरापवादगृहसैन्येशाः शतघ्नीः कुजः।
सामभ्रातृकुठारदुष्टमृगनेतृत्वस्वतन्त्राग्रहः
क्षेत्रं दण्डपतित्वनागभुवने वाविचत्तचाञ्चल्यता ॥३३॥
वाहारोहणरक्तदर्शन असृक्संशोषणान्येवम-
न्ये चानेकसुसंज्ञका बुधवरैर्भौमस्य तूक्ता अलम्।

मंगल से इन विषयों का विचार करना चाहिए—

शूरता, भूमि, बल, शस्त्र का धारण करना (युद्धार्थ), राज्य, बीर्य का नाश, चोर, युद्ध, विरोध, शत्रु, उदारता, बहुल लाल रंग की चाह, बाग का स्वामी होना, तूर्य (ढोल) का शोर, प्रीति, पशु, राजा, मूर्ख, क्रोध, विदेश गमन, धैर्य, पालने वाला, अग्नि, मौखिक झगड़ा, पित्त, गरमी, घाव, राज्य सेवा, दिन, आकाश की ओर देखना, छोटा

कद, रोग, ख्याति, टीन (धातु), तलवार, भाला, मन्त्री, किसी अंग का क्षतिग्रस्त होना, मणि, गणेश जी का जप, युवा अवस्था कड़वा, राज दरबार, मिट्टी से बनी वस्तु, रुकावट, मांस भक्षण, दूसरों के दोष निकालना, शत्रु पर विजय, खाने में तिक्त स्वाद वाला, रात्रि के अन्त में बली, सोना, गरमी की ऋतु, पराक्रम, शत्रु का बल, गम्भीरता, शूरता, पौरुष, शील, ब्रह्मा, कुल्हाड़ा, बनचारी, ग्राम का अधिपति होना, राज्य की ओर से देखभाल, मूत्रकृच्छ्र रोग, (दर्द से मूत्र का आना) चौकोर, स्वर्णकार, दुष्ट, जला हुआ स्थान, अच्छा भोजन, पतला, धन, विद्या में दक्ष, रक्त, ताँबा, विचित्र कपड़ा, दक्षिणाभिमुख, दक्षिण दिशा को चाहने वाला, काम, क्रोध, दूसरों को बदनाम करना, सेनाधीश, तोप, वृक्ष, सामवेद, भ्राता, परसा (कुठार), जंगली जानवरों का प्रबन्धक, स्वतन्त्र, हठी, खेत, दडाधिकारी (Magistrate), सांप, गृह, वाणी, चित्त की चंचलता, वाहन पर चढ़ना, रक्त दर्शन, रक्त का सूख जाना आदि।

साधारण आंख से देखने पर भी रात्रि को मंगल का रंग लाल दिखाई देता है। यह लाल रंग लक्षण शास्त्रानुसार मंगल के अधिकांश गुण-दोषों का परिचायक है। लाल रंग अग्नि का प्रतीक है, अतः वह प्रत्येक कार्य जिसका अग्नि से किसी न किसी प्रकार का सम्बन्ध है मंगल द्वारा प्रदर्शित होता है। अग्नि, बिजली, रेडियो, भट्टी आदि के सभी कार्यों का कारक ज्योतिष शास्त्र में मंगल को माना गया है। चूँकि अग्नि एक जलाने वाली भयावह वस्तु है, अतः ऐसे सब कार्य जो भयावह हों और जिनका अग्नि (बारूद, तोप, बन्दूक) से सम्बन्ध हो मंगल से सम्बन्धित हैं। जैसे सेना और उसके सब विभाग। यही लाल रंग मंगल को रक्तप्रिय तथा हिंसाप्रिय बनाता है। सेना विभाग से मंगल का इसलिए घनिष्ठ सम्बन्ध है। इसी प्रकार वे सब सभाएं और सस्थाएं जिनका विश्वास सिद्धान्त रूप से हिंसा में हो मंगल द्वारा प्रतिनिधित्व पाती हैं। रक्तप्रिय होने से मंगल के लिए यह स्वाभाविक है कि यह 'क्षति' या आघात पहुंचाये, क्योंकि जिनके हाथ में तलवार होती है उनको तलवार से ही चोट लगती है, ऐसा प्रकृति का नियम है। अतः शरीर में चोट लगना, आग का लगना आदि सभी को मंगल अपनी स्थिति से जतलाता है।

एक आवश्यक गुण जो मंगल से घनिष्ठ रूप में सम्बन्ध रखता है उपरोक्त तालिका में से छूट गया है। उहापोह शक्ति तथा तर्क शक्ति में मंगल बहुत कुशल है। यदि इस ग्रह का तर्क शक्ति के भाव अर्थात् पंचम भाव में दृष्टि अथवा युति का सम्बन्ध हो तो व्यक्ति में बहुत मात्रा में तर्क शक्ति होती है। जवाहर लाल नेहरू, इन्दिरा गाँधी आदि प्रतिभाशाली व्यक्तियों की जन्म कुण्डलियों में आपको मंगल की दृष्टि आदि का प्रभाव पंचम स्थान पर देखने को मिलेगा। जिन व्यक्तियों की कुण्डलियों में आपको यह प्रभाव दृष्टिगोचर हो आप समझ लें वह व्यक्ति बहुत समझदार सूझबूझ वाला होगा यद्यपि वह बहुत लिखा पढ़ा न भी हो, क्योंकि वह आवश्यक नहीं कि बहुत लिखा पढ़ा व्यक्ति ऊँची सूझ-बूझ वाला अवश्य ही हो।

बुध का कारकत्व

विद्याधीशतुरङ्गकोशगणितज्ञानानि वाक्यद्विजाः
पादातं लिपिलेख्यनूतनपटप्रासादकाराहरित् ॥३४॥
शिल्पिज्योतिषतीर्थयात्रसुवचप्रासङ्गदेवालया
वाणिज्यं वरभूषणं मृदुवचोवेदान्तमातामहाः।
दुःस्वप्नं च नपुंसकोत्तरमुखे चर्मार्द्रं कांस्यादयो
वैराग्यर्तुविचित्रहर्म्यभिषजः कण्ठाभिचारौ शिशुः ॥३५॥
तिर्यग्दृष्टिसुवर्ग लोकविनयाज्ञातिर्भयो नर्तनं
भक्तिर्हासमतिप्रभातबलहेमन्ताः कसाणः शमः।
नाभीगोत्रसमृद्धिमिश्रमपदार्थान्यान्ध्रभाषाधिपो
विष्णोपासनशूद्रपक्षिसहजा भाषा चमत्कारता ॥३६॥
काष्ठाथर्वणकर्मगोपुररजांस्युद्यानगुह्यौ समः
सौम्यौ ग्रामचरः समप्रकृतिको वायव्यकाष्ठाप्रियः।
सत्पौराणिकशब्दशास्त्रसुमहारत्नादिसंशोधको
विद्वान्मातुलमन्त्रयन्त्रसुमहातन्त्रादिकाः सौम्यतः ॥३७॥

बुध से विचार करने योग्य बातें अर्थात् कारकत्व इस प्रकार है—

विद्या, घोड़ा, कोष, गणित, ज्ञान, वाणी, ब्राह्मण, प्यादा, सेना

(Infantry), लिखने का कार्य, नया वस्त्र, बड़ा मकान, हरा, शिल्प, ज्योतिष, तीर्थ यात्रा, शुभ व्याख्यान, देव मन्दिर, वाणिज्य, सुन्दर भूषण, मृदु वचन, वेदान्त, नाना, बुरा स्वप्न, नपुंसक, उत्तराभिमुख, त्वचा, गोलापन, कांसा आदि धातु, वैराग्य, ऋतु, सुन्दर भवन, डाक्टर, गला, मन्त्र से प्रभाव डालना, शिशु, तिरछा देखना, स्वर्ग, नम्रता, जाति, भय, नाचना, भक्ति, हँसी मजाक वाली तबियत, प्रभात समय में बली, हेमन्त ऋतु, साण (चाकू आदि पैना करने का यन्त्र) मन पर संयम, नाभि, गोत्र वालों की संवृद्धि, मिश्रित वस्तुएँ, आन्ध्र भाषा में दक्षता, विष्णु का उपासक, शूद्र, पक्षी, बहिन, भाषा का चमत्कार, दिशाएँ, अथर्ववेद, कर्मकांड, नगरद्वार, धूल, बाग, गुह्य अंग, सम (Even), शुभ, ग्रामचारी, वात, पित्त कफ की साम्यावस्था अथवा समदर्शी, उत्तर पश्चिम दिशा प्रिय, पुराण शास्त्र, में निपुण, व्याकरण शास्त्रज्ञ, रत्नों की जाँच-परख रखने वाला, विद्वान्, मामा, मन्त्र, यन्त्र (ताबीज) व बहुत महान् तान्त्रिक क्रिया।

बुध सूर्य के अधिक समीप है। अतः इसमें सात्विकता और प्रकाश दोनों विद्यमान हैं। सात्विकता के कारण बुध को ज्योतिष शास्त्र में 'विष्णु' रूप से माना है। अर्थात यह एक यज्ञीयग्रह है जिसका एक व शेष गुण विष्णु भगवान् की भाँति दूसरों की मेवा परोपकार के यज्ञीय कार्यों का करना है। प्रकाश के कारण यह ग्रह 'विद्या' से घनिष्ठ सम्बन्ध रखता है। विद्या का 'कारक' बुध इसीलिए माना है, सूर्य और चन्द्र से अग्रिम राशि का स्वामी होने से अर्थात् सूर्य चन्द्र के सान्निध्य से बुध को युवराज माना है। यह कुमार अवस्था का प्रतीक ग्रह है। जो बातें कुमार अवस्था में पाई जातो हैं वह सब बुध के कारकत्व में सम्मिलित समझनो चाहिएँ। उदाहरण के लिए कुमार अवस्था खेल-कूद की अवस्था है। अतः खेलकूद, हँसी-मजाक आमोद, प्रमोद का अध्ययन बुध की स्थिति से किया जाता है। कुमार अवस्था अच्छी रहेगी अथवा बुरी इस बात का अन्दाज भी बुध की अच्छो बुरी स्थिति से लगाया जाता है। 'कुमारत्व' का प्रतीक होने से बुध अपनी भुक्ति का फल भी उस भुक्ति के आरम्भ के समीप ही दे देता है. शनि आदि की भाँति देर से नहीं देता।

बृहस्पति का कारकत्व

भूदेवस्वगुरुस्वकर्मरथगो पादातनिक्षेपका
मीमांसो निधिवाजिमाहिषबृहद्गात्रप्रतापा यशः।
तर्कज्योतिषपुत्रपौत्रजठरव्याधिद्विपात्सम्पदो
वेदान्तप्रपितामहादिपुरुषप्रासादगोमेधिकाः ॥३८॥
ज्येष्ठभ्रातृपितामहेन्द्रशिशिरर्तुग्राणि रत्नं वणिग्
देहारोग्यविचित्रहर्म्यं नृपसन्मानोरुदेवास्तपः।
दानं धर्मपरोपकारसमदृक्चोदङ्मुखो वर्तुलपीतं
ग्रामचरोत्तरप्रियसखान्दोलादिवाग्धोरणीः ॥३९॥
मेदो मध्यपटौ नवीनगृहसौख्यं वृद्धमन्त्रद्विजास्तोर्थं
जानुसुवर्गलोकसरणं सौख्यप्रदानं गृहम्।
धीः प्रज्ञाधिककाव्यगोपुरसभासन्मोदसिंहासन-
ब्रह्मस्थापनसार्वकालबलमासाः पात्रवैडूर्यकौ ॥४०॥
अग्निष्टोममहाफलं मधुरसः सत्त्वं सुखासौख्यके
दोर्घं सौम्यपरेङ्कितं च कनकालङ्कारतन्त्रादिकः।
वातश्लेष्मसुपुष्यरागनिगमाभासामृदुप्रस्तरं
शैवोपासननैष्ठिकत्वचतुरन्ताख्यप्रयाणं गुरोः ॥४१॥

बृहस्पति से विचार करने योग्य बातें

ब्राह्मण, शिक्षक, कर्त्तव्य, रथ, गौ, प्यादा, सेना, जोड़ा हुआ धन, मीमांसा, निधि, घोड़ा, दही, बड़ा शरीर, प्रताप, कीर्ति, तर्क, ज्योतिष, पुत्र, फौज, पेट की बीमारी, हाथी की सम्पत्ति, वेदान्त, पिता का पिता आदि गुरुजन, महल, गोमेदक रत्न, ज्येष्ठ भ्राता, दादा, राजा, शिशिर ऋतु, क्रोध, रत्न व्यापारी, देह का स्वास्थ्य, सुन्दर महल, राज्य की ओर से सम्मान, उरु स्थल, देवता, तप, दान, धर्म, परोपकार, समदृष्टि, उत्तराभिमुख, गोल, पीला रंग, ग्रामचारी, उत्तर दिशाप्रिय, सखा, डोली, व्याख्यान शक्ति, मेदा, मध्यम दर्जे का कपड़ा, नवीन गृह सुख, वृद्ध, मन्त्र, द्विज, तीर्थ स्थान, जानु, स्वर्गलोक जाना, सुखप्रद घर, धारणात्मक बुद्धि, विशेष ज्ञान, काव्य, मकान का शिखर, सभा को आमोदित करना, सिंहासन, ब्रह्मा की मूर्ति की स्थापना,

नित्यशक्ति, महीने, पात्र, वैदूर्य, रत्न, अग्निष्टोम यज्ञ का महान् फल, मधुरस, सात्विकता, सुख, दु:ख, दीर्घाकार, शुभ, दूसरों के विचारों को भाँप जाना, स्वर्ण भूषण बनाना आदि, वात, कफ, पुखराज, वेद, चमक, मृदु, प्रस्तर (पत्थर) शिव की पूजा, धर्म में निष्ठा, चारों ओर से सुसज्जित गाड़ी में यात्रा।

इस श्लोक में गुरु का 'पति' का कारकत्व छूट गया प्रतीत होता है। हमने देखा है कि कई विद्वान् भी इस बात से अनभिज्ञ हैं कि स्त्री की कुण्डली में उसके पति का कारक गुरु है न कि शुक्र, जैसा कि बहुधा वे लेते हैं।

जैमिनी सूत्र. पाद १ सूत्र २२ में आया है कि—

पितामहः पतिपुत्राविति गुरुमुखादेव जानीयात्

अर्थात् पितामह, पति तथा पुत्र का विचार गुरु ग्रह से करना चाहिए। इसी प्रकार अन्यत्र भी प्रमाण हैं जो अधिक विस्तार से यहाँ लिखे रहे हैं।

गुरु का अर्थ है भारी। यह ग्रह आकार में बहुत बड़ा है। इसके इर्द-गिर्द घूमने वाले अनेक उपग्रह हैं। यही कारण है कि इसको 'बृहस्पति' अर्थात् 'महान पालक' भी कहते हैं। गुरु का गौरव आकार में भी है और गुणों में भी। गुणों में धर्म, नैतिकता, ज्ञान, परोपकार, त्याग, सात्विकता आदि उत्तम गुणों का प्रतिनिधित्व गुरु अपने गौरव ही के कारण करता है। इसका गौरव ही इसे 'गुरु' अर्थात् आचार्य, अध्यापक, शिक्षक वनाता है। इसी गौरव तथा शिक्षा के कारण गुरु एक 'कानून' का ग्रह है, क्योंकि कानून (Law) के अनुसार कार्य करना और करवाना हो तो आचार्य का कार्य है। जिन कुण्डलियों में गुरु तथा शुक्र का सम्बन्ध लग्न लग्नेश तथा द्वितीय द्वितीयेश से होता है वे लोग कानूनदाँ, वकील, न्यायाधीश आदि कानून के कार्य करने वाले व्यक्ति होते हैं। क्योंकि गुरु स्वयं बड़ा है, यह प्रत्येक उस वस्तु को जिससे इसका सम्बन्ध हो बड़ा बनाता है। यही कारण है कि गुरु वृद्धिकारक है और परिवार की वृद्धि के प्रतीक 'पुत्र' का कुण्डली में प्रतिनिधित्व करता है। बड़ा होने से ही गुरु बड़े भाई का प्रतिनिधि है। बड़ा होने से ही बृहस्पति स्त्री की कुण्डली में उसका पति है।

गुरु और शुक्र यह दो ग्रह 'ब्राह्मण' ग्रह कहलाते हैं। जब इनका

प्रभाव युति अथवा दृष्टि द्वारा लग्न लग्नेश, चन्द्र लग्न चन्द्र लग्नेश पर पड़ रहा हो और अन्य किसी प्रकार का प्रभाव न हो अथवा अपेक्षाकृत बहुत थोड़ा हो तो व्यक्ति का जन्म ब्राह्मण कुल में कहना चाहिए।

जब इन्हीं दो ग्रहों अर्थात् गुरु तथा शुक्र का युति अथवा दृष्टि द्वारा प्रभाव द्वितीय भाव तथा उसके स्वामी पर हो और अन्य प्रभावों से बहुत अधिक हो तो कानून की विद्या वाला व्यक्ति होता है। जैसे वकील बैरिस्टर आदि। साथ ही यदि इन दो ग्रहों का प्रभाव लग्न लग्नेश पर भी हो तो कानून (Law) के निमित्त से रोजगार भी चलता है।

गुरु का प्रभाव यदि लग्न चतुर्थ तथा चन्द्रमा पर हो तो मनुष्य में नैतिकता—सन्तुलन, गाम्भीर्य, ज्ञान आदि शुभ गुण रहते हैं। यदि गुरु छठे, आठवें अथवा बारहवें भाव में निर्बल होकर पड़ा हो और उस पर किसी की दृष्टि न हो तो जिगर की बीमारियाँ संग्रहणी आदि रोग होते हैं।

शुक्र कारकत्व—

श्वेतच्छत्रसुचामराम्बरविवाहायद्विपात्स्त्रीद्विजा
सौम्यश्वेतकलत्रकामुकसुखह्रस्वाम्लपुष्पाज्ञकाः।
कीर्तियौवनगर्वयानरजताग्नेयप्रियक्षारका-
स्तिर्यग्दृवकषपक्षराजसदृढा मुक्तायजुर्वैश्यकाः॥ ४२॥
सौन्दर्यक्रयविक्रयाः सरससल्लापो जलस्थानकं
मातङ्गस्तुरगो विचित्रकविता नृत्तं च मध्यं वयः।
गीतं भोगकलत्रसौख्यमणयो हास्यप्रियः केचरो
भृत्यो भाग्यविचित्रकान्तिसुकुमाराराज्यगन्धस्त्रजः॥४३॥
वीणावेणुविनोदचारुगमनाष्टैश्वर्यचार्वङ्गता
स्वल्पाहारवसन्तभूषणबहुस्त्रीसङ्ग्रहप्राङ्मुखाः
नेत्रं सत्यवचः कलानिपुणता रेतो जलक्रीडितो
गाम्भीर्यातिशयस्ततश्चतुरवाद्यं नाटकालङ्कृतिः॥४४॥
केलीलोलकखण्डदेहमदनप्राधान्यसन्मान्यता
युक्तश्वेतपटप्रियो भरतशास्त्रं राजमुद्राप्रभुः
गौरीश्रीभजने रतिर्मृदुरतिक्लान्तो दिवामातृकः
काव्यादौ रचना प्रबन्धचतुरः स्यान्नीलकेशः शुभम्॥४५॥

गुह्यं मूत्रसुनागलोकसरणे तत्रापराह्णं तथा
जामित्रस्थलजं रहस्यमुदितं सर्वं वदेद्भार्गवात् ।

शुक्र से इन विषयों का विचार करना चाहिए—

श्वेत छत्र, सुन्दर झुलाने वाली चौरी अर्थात चँवर, कपड़ा, विवाह, आय (Income), द्विपाद अर्थात मनुष्य, स्त्री, ब्राह्मण, शुभ, श्वेत, भार्या, मैथुन सुख, छोटा कद, खटाई, पुष्प, आज्ञा (Command) यश, यौवन, अहंकार, वाहन, चाँदी, दक्षिण पूर्व दिशा, नमकीन, तिरछी नजर, खुजलाना, पखवाड़ा, राजसी वृत्ति, दृढ़, मोती, यजुर्वेद, व्यापारी; सुन्दरता सम्बन्धी वस्तुओं का क्रय-विक्रय तथा सुन्दरता, प्रेम की बातें, जलीय स्थान, हाथी, घोड़ा, विचित्र, कविता, नृत्य, युवावस्था, गीत, भोग, स्त्री-सुख, मणि, रसिकता, तैराकी, नौकर, भाग्य, सौन्दर्य, सुकुमारता, राज्य, माला, इत्र, वीणा, बाँसुरी, विनोद, सुन्दर चाल, अष्ट (समस्त) ऐश्वर्य, अंगों से सुन्दर, बहुत थोड़ा खाने वाला, वसन्त ऋतु, भूषणं, बहुत स्त्रियों का समूह, पूर्वाभिमुखता, नेत्र, सत्य बोलने वाला, कलाओं में निपुण, वीर्य (Semen), जल में खेलना, गम्भीरता, गाने बजाने तथा नाटक की सजावट, कामुक क्रीड़ाओं में आसक्ति, शरीर, काम में मुख्य रूप से आसक्त, सम्मान, श्वेत वस्त्र प्रियता अभिनेता के गुण, राज्य की मुद्रा, मालिक, पार्वती तथा लक्ष्मी की पूजा, मैथुन प्रियता, मृदुलता, बहुत थकावट या कमजोरी, दिन में माता के कार्य करने वाला, काव्य आदि की रचना में चतुर, काले बाल; शुभ गुह्य अंग, मन्त्र, नाग लोक में फिरना, मध्याह्नान्तर समय, सप्तम स्थान से सम्बद्ध विषय व रहस्य की बातें।

यदि आप रात्रि को शुक्र का निरीक्षण करें तो आपको पता चल जाएगा कि शुक्र की चमक और शान दूसरे ग्रहों से कहीं अधिक है। इसी सुन्दरता के लिए शुक्र विख्यात है। अत: शरीर में सुन्दरता, मुख माधुर्य देखना हो तो कुण्डली में शुक्र की स्थिति का अध्ययन करना चाहिए। इसी सुन्दरता के कारण प्रत्येक उस पदार्थ से शुक्र का सम्बन्ध ज्योतिष में माना है जो सुन्दरता को बढ़ाता है। जैसे पाउडर, लिपस्टिक, क्रीम आदि। पुन: इसी सुन्दरता ही के कारण प्रत्येक वह वस्तु जो उत्तम है, सुन्दर है, परिष्कृत है, सुसंस्कृत है, उसका सम्बन्ध भी शुक्र से माना है

जैसे सब सांस्कृतिक कृत्य, गाना-बजाना, नाचना, चित्रकला, चित्रपट आदि। सुन्दरता पुरुष की अपेक्षा स्त्री में अधिक है। संभवतया इसीलिए शुक्र को आचार्यों ने एक स्त्री ग्रह माना है। सुन्दरता सर्वदा सबको अपनी ओर आकर्षित करती है, अतः जिन लोगों का शुक्र बलवान होता है वह दूसरों को अपनी ओर आकृष्ट करते हैं। स्त्री होने से विवाह, वीर्य, भोग आदि का शुक्र से घनिष्ठ सम्बन्ध है। सुन्दरता तथा भोग का ग्रह होने से भोग्य सामग्री भी शुक्र ही द्वारा प्रतिनिधित्व पाती है। जैसे सुख के साधन वाहन आदि।

शनि का कारकत्व—

जाड्यादिप्रतिबन्धकाश्वगजचर्मायप्रमाणानि सं
क्लेशो व्याधिविरोधदुःखमरणस्त्रीसौख्यदासीखराः ॥४६॥
चण्डाला विकृताङ्गिनो वनचरा बीभत्सदानेश्वरा-
आयुर्दायनपुंसकान्त्यजखगास्त्रेधाग्निदासक्रियाः।
आचारेतररिक्तपौरुषमृषावादित्वदीर्घानिला
वृद्धस्नायुदिनान्तवीर्यशिशिरत्वत्यन्तकोपश्रमाः ॥४७॥
कुक्षेत्रोदितकुण्डगोलकजनिर्मालिन्यवस्त्रं गृहं
तादृग्वस्तुमनोविचारखलमैत्रीकृष्णपापानि च।
क्रौर्यं भस्म च नीलधान्यमणिलोहौदार्यसंवत्सराः
शूद्रो विट्पितृकारकोऽन्यकुलविद्यासङ्ग्रहः पंगुता ॥४८॥
तीक्ष्णं कम्बलवस्त्रपश्चिममुखे सञ्जीवनोपायका
ऽधोदृष्टी कृषिजीवनायुधगृहज्ञातिर्बहिः स्थानकाः।
ईशान्यप्रियनागलोकपतने सङ्ग्रामसञ्चारिता
शल्यं सीसकदुष्टविक्रमतुरुष्का जीर्णतैलेऽपि च ॥४९॥
दारुब्राह्मणतामसे च विषभूसञ्चारकाठिन्यके
भीतिर्दीर्घनिषादवैकृतशिरोजाः सर्वराज्यं भयम्।
छागाद्या महिषादयो रतिरतो वस्त्रादिभृंगारता
मृत्यूपासकसारमेयहरणाः काठिन्यचित्तं शनेः ॥५०॥

शनि से इन विषयों का विचार करना चाहिए—

जड़ता अथवा आलस्य, रुकावट; घोड़ा, हाथी, चमड़ा; आय, बहुत कष्ट, रोग, विरोध, दुःख, मरण, स्त्री से सुख, दासी, गधा अथवा

खच्चर, चांडाल, विकृत अंगों वाले, वनों में भ्रमण करने वाले, डरावनी सूरत, दान, स्वामी, आयु, नपुंसक, अन्त्यज, खग, तीन अग्नियाँ, दासता का कर्म, अधार्मिक कृत्य, पौरुषहीन, मिथ्या भाषण, चिरस्थायी वायु, वृद्धावस्था, नसें, दिन के अन्तिम भाग में बलवान्, शिशिर ऋतु, क्रोध, परिश्रम, नीच जन्मा, हरामी, गोलक, गन्दा कपड़ा, घर, बुरे विचार, दुष्ट से मित्रता, काला, गन्दा, रंग, पाप कर्म, क्रूर कर्म, राख, काले धान्य, मणी लोहा, उदारता, वर्ष, शूद्र वैश्य, पिता प्रतिनिधि, दूसरे कुल की विद्या सीखना, लंगड़ापन, उग्र कम्बल, पश्चिमाभिमुख, जिलाने के उपाय, नीचे देखना, कृषि द्वारा जोवनयापन, शस्त्रागार, जाति से बाहर स्थान वाले, ईशान दिशा का प्रिय, नागलोक, पतन युद्ध, भ्रमण, शल्य विद्या, सीसा धातु, शक्ति का दुरुपयोग, तुरक (Turk), पुराना तेल, लकड़ी, ब्राह्मण, तामस गुण, विष, भूमि पर भ्रमण, कठोरता, डर, लम्बा निषाद, अटपटे बाल, सार्वभौम सत्ता, भय, बकरा, भैंस आदि, कामानन्द इच्छुक, वस्त्रों से सजाना, यमराज का पुजारी, कुत्ता, चोरी, चित्त की कठोरता आदि।

जैसे सौर मण्डल में शनि का स्थान सबसे अन्त में है ऐसे ही गुणों आदि में भी शनि का स्थान अन्त में अर्थात् घटिया, निष्कृष्ट, अधम है। यही कारण है कि शनि निम्न वर्ग का सूचक ग्रह माना गया है। वर्णों में इसीलिए शूद्र की पदवी प्राप्त है। घर में यह नौकर, भृत्य की सी निम्न स्थिति में है। सूर्य से दूर रहने के कारण इसमें प्रकाश कम है। यही कारण है कि यह विद्याहीन, प्रकाशहीन, काला, मूर्ख माना गया है। प्रकाश की रश्मियों से जो पदार्थ वंचित हैं उनकी पूरी उन्नति नहीं हो पाती। अतः शनि अपूर्णता, हीनता, अभाव, आदि का द्योतक है। इसी प्रकाश आदि के अभाव से कई रोगों की उत्पत्ति होती है। इसीलिए शनि को रोग का कारण माना गया है। मन्द गति होने से ही शनि को 'लंगड़े' की उपाधि दी गई है। चलना टाँगों से ही होता है। अतः शनि का टाँगों से घनिष्ठ सम्बन्ध है। शनि की कुण्डली में स्थिति मनुष्य की टाँगों की स्थिति को बहुत हद तक जतला देती है। प्रकाशहीन वनस्पति तथा अन्य जीव मृत पदार्थों, जैसे चमड़ा और पत्थर इनसे भी शनि का घनिष्ठ सम्बन्ध है। मन्दगति होने के कारण कार्यों का विलम्ब से सम्पादन होना स्वाभाविक ही है। अतः विलम्ब से, बहुत काल से, आयु से, दीर्घ रोग

से, दीर्घ आकार से शनि का सम्बन्ध है और इन वस्तुओं का शनि इसी लिए कारक भी है।

राहु का कारकत्व—

छत्रं चामरराष्ट्रसंङ्ग्रहकुतर्कक्रूरवाक्यान्त्यजाः
पापस्त्रीचतुरन्तयानवृषला द्यूतश्च सन्ध्याबलम्।
दुष्टस्त्रीगमनान्यदेशगमनाशौचास्थिगुल्मानृता
ऽधोदृग्भ्रामिकगारुडा यममुखम्लेच्छादिनीचाश्रयाः ॥५१॥

दुष्टग्रन्थिमहाटवी विषमसञ्चाराद्रिपीडा बहिः-
स्थानं नैऋर्तिदिक्प्रियानिलकफक्लेशोऽहिनिण्मारुताः।
तीक्ष्णं दीर्घसरीसृपौ सकलगुप्तार्थाः प्रयाणक्षणो
वृद्धो वाहननागलोकजननीताता मरुच्छूलकाः ॥५२॥

कासश्वासमहाप्रतापवन दुर्गोपासका दुष्टता
सांङ्गत्यं पशुभिस्त्वसव्यलिपिलेख्यं क्रूरभाषा त्वगोः।

राहु द्वारा विचार करने योग्य बातें इस प्रकार हैं—

छत्र, चँवर (जो झुलाई जाती है) राज्य, संग्रह, कुतर्क, मर्मछेदी वाक्य, अन्त्यज, पाप स्त्री, चारों ओर से सुसज्जित यान, अधार्मिक मनुष्य, जुआ, संध्या समय बली, दुष्ट स्त्री गमन, अन्य देश गमन, गन्दगी, हड्डी, प्लीहा का बढ़ जाना, झूठ, अधोदृष्टि, भ्रम, जादू आदि, गरुड़ (Emerald), दक्षिणाभिमुख, म्लेच्छादि तथा अन्य नीचों का आश्रय, सूजन, महान् वन, विषम स्थानों में भ्रमण, पर्वत, पीड़ा, बाहर का स्थान, (Every thing external), दक्षिण पश्चिम दिशा, प्रिय, वायु कफ से क्लेश, सर्प, रात्रि की हवाएँ, तीक्ष्णता, दीर्घ रेंगने वाले साँप आदि, सकल गुप्त वस्तुएं, मृत्यु का समय, वृद्ध, वाहन, नागलोक,(सापों की जगह), माता, पिता अथवा नाना, वायु का तेज दर्द, खाँसी, श्वास की बीमारी, महान् प्रताप, वन, दुर्गापूजा, दुष्टता, पशुओं से मैथुन, दाईं ओर से लिखी जाने वाली भाषा, जैसे उर्दू आदि, कठोर भाषण इत्यादि।

राहु एक छाया ग्रह है। छाया का तात्पर्य है प्रकाशहीन। अतः इसमें शनि की भाँति बल्कि शनि से कुछ बढ़कर प्रकाशहीनता का दोष है। इसलिए इसके गुणों का समावेश एक ही वाक्य में ज्योतिषशास्त्र ने

कर दिया कि 'शनिवत् राहु'। शनि की तरह मूर्ख, शनि की भाँति लम्बा, शनि की भाँति अभावात्मक, शनि की भाँति रोग कारक, शनि की भाँति विलम्ब करने वाला एक ग्रह है। राहु में एक विशेष गुण अथवा दोष है जो शनि में नहीं है, वह यह कि राहु में घटनाओं को अकस्मात् घटाने की शक्ति है। यदि राहु द्वितीय, पंचम, नवम, एकादश, लग्न आदि धन द्योतक भावों में स्थित होकर दृष्टि आदि से बलवान् हो तो वह धन को अचानक, सहसा, बिना आशा के दे देता है। लाटरी आदि के योग प्राय: राहु की ऐसी ही स्थिति के कारण उत्पन्न होते हैं। एक और बात जो राहु के सम्बन्ध में विशेष रूप से ध्यान में रखने योग्य है, वह यह कि राहु अपने छाया अथवा प्रतिबिम्ब स्वभाव के अनुरूप ही फल करता है। अर्थात् इस पर यदि कुण्डली के राजयोग तथा शुभ ग्रहों की युति अथवा दृष्टि द्वारा प्रभाव पड़ता हो तो राहु अपनी भुक्ति में उन शुभ ग्रहों के राजयोग का फल करेगा। अर्थात् धन, यश, पदवी दिलावेगा। इसके विरुद्ध राहु यदि पाराशरीय पाप ग्रहों, जैसे अष्टमेश द्वादशेश आदि से युक्त दृष्ट हो ता धन-हानि, दरिद्रता आदि का फल करता है।

शंनि को भाँति राहु भी 'स्नायु' का प्रतिनिधित्व करता है। स्नायु रोगों में शनि को भाँति इसका भी हाथ रहता है। यदि किसी व्यक्ति की जन्म-कुण्डली में शरीर द्योतक अंगों पर अर्थात् लग्न, लग्नेश, चन्द्र लग्न, चन्द्र लग्नेश, सूर्य लग्न तथा उसका स्वामी, इन सब पर शनि तथा राहु का प्रभाव पड़ता हो तो प्राय: व्यक्ति को वायु रोगों का जीवन में शिकार होना पड़ता है। जन्म-कुण्डली यदि किसी ब्राह्मण आदि द्विज की हो तो फिर यह प्रभाव विशेष रूप से देखने में आता है क्योंकि सूर्य, चन्द्र, गुरु सब राहु के शत्रु हैं शनि (शूद्र वर्ण) के नहीं।

इसी प्रकार राहु और शनि 'अभाव' के ग्रह हैं। षष्ठेश अष्टमेश आदि 'अभाव' द्योतक ग्रहों के साथ इनका प्रभाव भी यदि द्वितीय भाव और उसके स्वामी पर पड़ जाए तो मनुष्य जीवन में रुपया-पैसा बचा नहीं पाता। उसका कोष (Bank Balance) नगण्य होता है।

केतु का कारकत्व —

चण्डीशेश्वरविघ्नपादिसुरवृन्दोपासना वैद्यका
श्वानः कुक्कुटगृध्रमोक्षसकलैश्वर्यक्षयार्तिज्वराः ॥५३॥

गास्नानमहातपोऽनिलनिषादस्नेहभूतिप्रदाः
पाषाणो व्रणमन्त्रशास्त्रचपलत्वब्रह्मवेतृत्वता।
कुक्ष्यक्ष्यार्तिजडत्वकण्टकमृगज्ञानानि मौनव्रतं
वेदान्तोऽखिलभोगभाग्यरिपुपीडोत्पन्नतापाल्पभुक् ॥५४॥
वैराग्यं च पितामहक्षुदतिशूलस्फोटकाद्या रुजः
शृंगीभृङ्गविरुद्धबन्धनकृताज्ञां शूद्रगोष्ठिध्वजात्।

केतु से विचार करने योग्य बातें इस प्रकार हैं—

चण्डीश्वर, गणेशादि देवताओं की उपासना, डॉक्टर, कुत्ता, मुर्गा, गिद्ध, मोक्ष, हर प्रकार का ऐश्वर्य, क्षयरोग, पीड़ा, ज्वर, गंगा-स्नान, महान् तप, वायु-विकार, स्नेह, सम्पदा का प्रदान, पत्थर, घाव, मन्त्रशास्त्र, चंचलता, ब्रह्मज्ञान, कुक्षि, आँख का दर्द, अज्ञानता, काँटा, मृग, आत्मज्ञान, मौनव्रत, वेदान्त, सब प्रकार की भोग सामग्री, भाग्य, शत्रुओं से पीड़ा, थोड़ा खाने वाला, संसार से विरक्त, दादा, भूख, पेट में तीव्र पीड़ा, फोड़े-फुंसी, सींगों वाले पशु, शिव के दास, बन्धन की आज्ञा का रोकना, शूद्रसभा, ध्वज।

केतु अपना 'छायात्मक' प्रभाव रखते हुए भी जब स्वतन्त्र रूप में कुण्डली में कार्य करते हुए पाया जाता है तो यह मंगल की भाँति कार्य करता है। 'कुजवत् केतु' मंगल की भाँति यह ग्रह भी अपनी युति तथा दृष्टि के प्रभाव में आने वाले पदार्थों को चोट अथवा क्षति पहुंचाता है। मंगल की भाँति यह भी तीव्र है बुद्धि में भी और प्रभाव में भी। केतु शब्द वेद आदि शास्त्रों में 'झण्डे' के अर्थ में आया है। 'झण्डा' ऊँचाई का, उच्चता का, महानता के प्राचुर्य का, उत्कृष्टता का प्रतीक है। अतः केतु भी अपने भीतर उत्कृष्टता आदि गुण रखता है। इन उत्कृष्ट गुणों की अभिव्यक्ति उस समय दृष्टिगोचर होती है जब केतु किसी स्वक्षेत्री शुभ ग्रह के साथ स्थित हो। प्रायः लखपतियों की कुण्डली में यह स्वक्षेत्री शुक्र आदि ग्रहों के साथ धन आदि आर्थिक भावों में स्थित हुआ पाया जाता है। हिटलर आदि योद्धाओं की कुण्डली में यह शौर्य स्थान (तृतीय) में स्वक्षेत्री गुरु के साथ पाया जाता है। जवाहरलाल आदि उन व्यक्तियों की कुण्डली में जिनको महानतम शत्रुओं का सामना करना पड़ा यह ग्रह स्वक्षेत्री गुरु के साथ षष्ठ स्थान में मिलता है। राहु का सर्वथा उलट होने से केतु शुभता में इतना उच्च है कि यह मोक्ष का कारक माना गया है।

दशाफल खण्ड

: ६ :

ग्रहों की भुक्ति जानने की विधि, ग्रहों की दशाओं के फल, राहु और केतु के विशेष फल, महादशा-नाथ और अन्तर्दशानाथ की स्थिति, शनि और शुक्र, रवि और शनि, वर्षफल विधि।

ग्रहों की दीप्तादि अवस्थाएँ—

तुङ्गे स्वोयगृहेऽधिमित्रभवने मित्रे समे वैरिणी-
त्येवं पापयुते पराजययुते खेटेऽर्कयुक्ते क्रमात्।
दीप्ता सा स्तिमिता तथा च मुदिता शान्ता च हीना ततो
दुःखा स्याद्विकला खला स्युरपि सा कोपेत्यवस्था नव ॥१॥

जब ग्रह अपने परमोच्च में हो या उच्च राशि में हो तो तारतम्य से दीप्तावस्था मानी जाती है।

अपनी राशि में स्थित होने पर ग्रह स्तिमितावस्था में होता है अधिमित्र की राशि में मुदितावस्था होती है।

अपने मित्र की राशि में हो तो 'शान्ता' अर्थात् स्थिर अवस्था में जब ग्रह समग्रह की राशि में होता है तो वह 'हीना' अर्थात् थोड़े गुणों वाली अवस्था में, जब ग्रह शत्रु की राशि में हो तो 'दुःखा' अर्थात् क्लेशावस्था में, जब ग्रह किसी पापी ग्रह के साथ-साथ होता है तो वह 'विकला' अर्थात् बेचैन अवस्था में, जब ग्रह 'ग्रहयुद्ध' में पराजित हो तो 'खला' अर्थात् दुष्टा अवस्था में तथा जब ग्रह सूर्य द्वारा अस्त हो जावे तो 'कोपा' अर्थात् क्रोधावस्था में माना जाता है।

पूर्वजन्म में अर्जित कर्मों का फल व दशाएँ—

पुण्यं वाप्यथ पापरूपमपिवा कर्मार्जितं प्राग्भवे
तत्पाकोऽत्र तु खेचरस्य हि दशाभुक्त्यादिभिर्ज्ञायते।
तस्मात्खेटदशाविभाग इह चावश्यं क्रमात्तत्फलं
ज्ञेयं तत्तनिष्ठशान्तिकरणादिष्टं सुखं प्राप्नुयात् ॥२॥

पुण्य और पाप जो पूर्वजन्म के कर्मों द्वारा उपार्जित किए गए हैं;

उन्हीं का फल इस जन्म में ग्रहों की दशा भुक्ति आदि द्वारा जाना जाता है। अतः यह आवश्यक है कि दशा भुक्ति को जाना जाए और उसके फल को भी ज्ञात किया जाए ताकि अनिष्ट की शान्ति द्वारा इष्ट की प्राप्ति हो सके।

विंशोत्तरी दशा का ज्ञान

> अर्केन्द्वारतमःसुरेज्यशनिवित्केत्वासुरेज्याः क्रमात्
> षड्दिक्शैलगजेन्दवोष्टचतिधृती चात्यष्ट योगा नखाः।
> दायेशा अपि वत्सराः स्युरथ तज्जन्मेन्दुभं वह्निभा-
> द्यावत्तन्नवहृद्विशेषतुलितोऽर्काद्यो हि दायेश्वरः ॥ ३ ॥

सूर्य, चन्द्र, मंगल, राहु, गुरु, शनि, बुध, केतु तथा शुक्र क्रमशः ६, १०, ७, १८, १६, १९, १७, ७, तथा २० वर्षीय दशा के स्वामी होते हैं। दशा का आरम्भ इस प्रकार है कि कृत्तिका नक्षत्र से जन्म-नक्षत्र (जिस नक्षत्र में जन्म-समय चन्द्र पड़ा हो) तक गिनो। जो संख्या आवे उसको ९ से विभक्त करो, शेष को सूर्य से गिनकर दशा निकाल लो।

उपरोक्त दशा पद्धति 'विंशोत्तरी' के नाम से प्रसिद्ध है। विंशोत्तरी शब्द का अर्थ है १२०, चूंकि इस पद्धति में कुल वर्ष संख्या समस्त ग्रहों की मिलकर १२० बनती हैं इसलिए इस दशा का नाम 'विंशोत्तरी' रखा गया है।

इस दशा को महर्षि पराशर व अन्य आचार्यों ने फल देने में श्रेष्ठ कहा है। दक्षिण भारत में प्रसिद्ध इस ग्रन्थ के कर्ता ने विंशोत्तरी दशा को सर्वप्रथम स्थान देकर इस भ्रम का निराकरण कर दिया है कि दक्षिण भारतीय विद्वान् अष्टोत्तरी दशा क्रम को अधिक महत्त्व देते हैं। यह बात अनुभव सिद्ध है कि विंशोत्तरी दशा घटनाओं के क्रम का निर्णय करने में अधिक सक्षम हैं।[1]

इस दशा में दशेशों के क्रम को ज्योतिषी लोग इस प्रकार याद रखते हैं—

आ, चं, भौ, रा, जी, श, बु, के, शु

कृत्तिका नक्षत्र से लेकर नौ-नौ नक्षत्रों के स्वामी ग्रह इसी उक्त क्रम से होते हैं। इस प्रकार अभिजित् रहित सत्ताईस नक्षत्रों में तीन

आवृत्ति में विंशोत्तरी दशा के नौ दशेशों का क्रम पूरा हो जाता है।

जन्म समय कौन-सो दशा विद्यमान है? इसके लिए देखिए—

कृत्तिका नक्षत्र से जन्म नक्षत्र तक गिनिए। इस संख्या को ९ से भाग देने पर जो संख्या शेष बचेगी, वही दशेश की क्रम संख्या होगी। अर्थात् उस संख्या क्रम पर पड़ने वाले दशेश की ही दशा जन्म समय विद्यमान होगी। क्रम ऊपर बताया जा चुका है। जैसे जन्म समय आर्द्रा नक्षत्र है। कृत्तिका से आर्द्रा तक गिना तो संख्या ४ प्राप्त हुई। इसे ९ से भाग दिया तो शेष ४ अर्थात् चौथी दशा (राहु) जन्म समय विद्यमान थी।

दशा का भुक्त व भोग्य जानना

> **जन्मर्क्षागमनाडिका विघटिकास्तत्तद्दशाताडिता**
> **नाडयः षष्टिहता युता विघटिकास्तच्छेद्यराशिर्भवेत्।**
> **आद्यन्तस्थितनाडिका विघटिकाभिर्भाजिता वत्सराः**
> **शेषं द्वादशभिर्दिनैः खरुतुभिर्निघ्नाच्च मासादिकम्॥ ४॥**

जन्म नक्षत्र में नक्षत्र के शेष भाग को चलने में चन्द्र को जितनी घड़ियाँ लगती हैं उनको जन्म-नक्षत्र के स्वामी ग्रह के दशा-वर्षों की संख्या से गुणा करो, तथा फल को उन घड़ियों से विभक्त करो जो कि चन्द्र को सारे जन्म-नक्षत्र में चलने को लगती हैं, तो उत्तर—जन्म समय की दशा के स्वामी ग्रह की दशा के शेष वर्ष निकल आवेंगे। १२ आदि से शेष को भाग देकर शेष दशा के मास आदि बना लो।

मान लीजिए कि किसी व्यक्ति के जन्म के समय पर चन्द्र स्पष्ट ७-२७-० है। यदि पंचांग में आप देखेंगे तो आपको पता चलेगा कि चंद्रमा ज्येष्ठा नक्षत्र में उस दिन है। चूंकि ज्येष्ठा नक्षत्र का स्वामी बुध होता है। इसलिए हम कहेगे कि व्यक्ति का जन्म बुध की महादशा में हुआ। अब प्रश्न उठता है कि विंशोत्तरी दशा पद्धति में बुध के कुल वर्ष १७ हैं तो जन्म समय पर इस व्यक्ति के १७ में से कितने वर्ष बुध राज्य कर चुका था और कितने वर्ष और इस बुध को राज्य करना था। अब आप पंचांग में देखेंगे तो आपको पता चलेगा कि ज्येष्ठा नक्षत्र किसी विशेष दिन किन्हीं घड़ी पलों से आरम्भ होकर किसी अन्य दिन किन्हीं

विंशोत्तरी दशा के विशेष विवेचन के लिए—दशाफल रहस्य।

घड़ी पलों पर समाप्त हुआ था। मान लीजिए कि ज्येष्ठा नक्षत्र का कुल समय जिसको ज्योतिष की परिभाषा में 'सर्वभोग्य' कहते हैं ६२ घड़ी था। अब देखिए कि जन्म समय से लेकर नक्षत्र की समाप्ति तक कितना समय बनता है। मान लीजिए कि चन्द्रमा को अगामी नक्षत्र तक पहुंचने में १३ घड़ी ५७ पल लगते हैं तो हम गणित करेंगे कि यदि नक्षत्र का सर्वभोग्य ६२ घड़ी बराबर है १७ वर्ष (बुध की महादशा के वर्ष) तो शेष जो १७ घड़ी ५७ पल हैं यह कितने वर्षों आदि के बराबर है

$\frac{१७ \times २७६}{६२ \times २०}$ अतः उत्तर आया ३ वर्ष ६ मास २७ दिन जो कि जन्म समय पर बुध की महादशा के शेष वर्षादि होंगे।

यह विधि श्लोक में बताई गई है। अब इसे सरल ढंग से समझिए। जिस नक्षत्र में जन्म होता है वह नक्षत्र वास्तव में चन्द्रमा का नक्षत्र है। ज्योतिषी लोग जन्म नक्षत्र का चरण जानने व जन्मनाम जानने के लिए भयात व भभोग का साधन करते हैं। भयात का अर्थ है—जन्म नक्षत्र की बीती घड़ियाँ, भभोग का अर्थ है—जन्म नक्षत्र की कुल घड़ियाँ।

सुविधा के लिए भयात व भभोग का साधन समझ लें—

१. गतनक्षत्र के घड़ी पलों को ६० में से घटाएँ। शेष में अपना इष्ट-काल जोड़ें तो भयात ज्ञात हो जाएगा।
२. इसी पूर्वोक्त शेष में जन्म नक्षत्र की घड़ियाँ जो पंचांग में जन्मनक्षत्र के सामने दी हों, जोड़ें तो भभोग ज्ञात हो जाएगा।

दशा के सम्पूर्ण वर्ष पूरे नक्षत्र के लिए भभोग के लिए हैं। अर्थात् पूर्वोक्त दशा में १७ वर्ष भभोग के लिए हैं तो भयात के लिए कितने? अनुपात से जानें। लब्धियाँ दशा के भुक्त वर्षादि होंगे। भुक्त वर्षादि को दशा के सम्पूर्ण मान में से घटाएँ तो दशा के शेष भोग्य वर्ष होंगे।

पूर्वोक्त उदाहरण को ही लीजिए—भोग्य १३ घड़ी ५७ पल व भभोग ६२।०० घड़ी है। जन्म समय ज्येष्ठा नक्षत्र होने के कारण बुध की महादशा विद्यमान है। नक्षत्र की गत घड़ियाँ ६२.००—१३.५७ = ४८.३ गत घड़ियाँ हैं। अर्थात् यह भयात है।

भोग्य प्रकार से क्रिया कीजिए—

१. भोग्य व भभोग को पलात्मक बनाएँ।

१३.५७ भयात	६२.००
×६०	×६०
७८०+५७=	३७२०.००
८३७ पलात्मक योग्य	पलात्मक भभोग

२. पलात्मक भोग्य को जन्म दशा के वर्षों से गुणा कर भभोग का भाग दें। लब्धि दशा के शेष वर्ष होंगे।

८३७×१४२२९÷३७२०=लब्धि ३ वर्ष, शेष ३०६९

३. शेष को १२ से गुणा कर पुनः भभोग का भाग दें। १२ से भाग इसलिए दिया जाएगा, क्योंकि मास १२ ही होते हैं।

३०६९×१२=३६८२८÷३७२०=९ मास, शेष ३३४८

४. शेष को दिन संख्या ३० से गुणा कर पुनः इसी तरह भाग दें—
३३४८×३०=१००४४०÷३७२०=लब्धि २७ दिन, शेष ०

५. यदि शेष कुछ संख्या होतो तो उसे आगे दो बार ६० से गुणा कर बारी-बारी से भभोग का भाग देकर लब्धि घड़ी व पल जानी जा सकती थी। किन्तु यहाँ दशा के शेष वर्ष ३, मास ९, व दिन २७ हुए।

सम्पूर्ण दशा वर्ष १७—शेष दशा वर्ष ३-९-२७=१३-२-३ गत वर्षादि। अर्थात् जन्म समय १३ वर्ष, २ मास, व ३ दिन बुध की दशा बीत चुकी व शेष ३ वर्ष, ९ मास, २७ दिन दशा बाकी थी।

इसी प्रक्रिया को भुक्त प्रकार से कर सकते हैं—

नक्षत्र का पलात्मक भुक्त (गत) मान=२८८३ पलात्मक भयात।
पलात्मक भयात २८८३×दशावर्ष १७=४९०११ भाज्य राशि।
४९०११÷३७२०=१३ वर्ष लब्धि, शेष ६५१
शेष ६५१×१२=७८१२÷३७२०=२ मास लब्धि, शेष ३७२
शष ३७२×३०=१११६०÷३७२०=३ दिन लब्धि व शेष ०
अतः दशा के गत वर्षादि १३ वर्ष, २ मास, ३ दिन हैं।

आप यथेच्छ भुक्त या भोग्य प्रकार से क्रिया कर सकते हैं। आजकल चन्द्रमा के स्पष्ट रेखांश द्वारा भी चार्ट से दशा के भोग्य वर्षादि जाने जाते हैं। आधार वही चन्द्र नक्षत्र ही है। जो लोग एफेमेरीज से

क्रिया करते हैं उन्हें चन्द्रमा के द्वारा ही सुविधा होगी। यह चार्ट सभी एफेमेरीज (अंग्रेजो पंचांग) में दिया होता है।

ग्रहों की भुक्ति (अन्तर्दशा) जानने की विधि

तत्तत्खेटदशादशा विनिहता मासाः पुरोङ्कस्तत-
स्त्वन्त्याङ्कस्त्रिगुणो दिनानि सततं त्वेवं हि चान्तर्दशाः।
तद्‌भुक्तिस्तु दिनीकृता करहृता तत्तद्‌शाताडिता
नाड्याद्या विदशा वियद्रसहृता चेत्सा दिनाद्या भवेत्॥ ५॥
तद्वत्सूक्ष्मदशाद्वयोऽपि गदिताश्चैको विशेषोऽस्ति तद्
घस्राद्या घटिकादिरूपमिह चाधोऽथो व्रजन्ति क्रमात्।

जिस ग्रह की भुक्ति निकालनी हो उसकी श्लोक ३ में उक्त वर्ष संख्या को महादशा के स्वामी ग्रह की वर्षसंख्या से गुणा करो, दाईं ओर से प्रथम अंक के अनन्तर दशमलव लगाओ। दशमलव के बांई ओर भुक्ति के मास निकल आवेंगे।

दशमलव से दाईं ओर वाले अंक को तीन से गुणा करो तो भुक्ति नाथ के दिन निकल आयेंगे। विविध ग्रहों की भुक्तियाँ (अन्तर्दशा) इस प्रकार निकालें—यदि किसी ग्रह की प्रत्यन्तर दशा निकालनी हो तो भुक्तिकाल के दिन बनाकर उसको प्रत्यन्तर नाथ के दशावर्षों से गुणा करो और फल को दो पर विभक्त करो। उत्तर घटिकाओं में प्रत्यन्तर दशा होगी। इनको ६० आदि पर भाग देकर दिन आदि बना लो। सूक्ष्म दशा निकालने के लिए भी प्रत्यन्तर दशा के दिनों को सूक्ष्म दशा के ग्रह की वर्ष संख्या से गुणा कर, दो पर विभक्त करने से सूक्ष्म दशा की घड़ियाँ निकल आती हैं।

उदाहरण—(१) शनि की महादशा में गुरु की भुक्ति ज्ञात करो।

$$\frac{\text{शनि के दशा वर्ष} \times \text{गुरु के दशा वर्ष}}{१२०}$$

$$१९ \times १६ = \frac{३०४ \times १२\text{मास}}{१२०} = \frac{३०४}{१०} = ३०.४ \text{ मास}$$

अर्थात् २ वर्ष, ६ मास व १२ दिन अन्तर्दशा है। अन्तिम अक ४ को ३ से गुणा कर ग्रहण किया गया है, यही विधि सर्वत्र अपनानी चाहिए।

यह प्रकार सरलतम है। इसे और संक्षेप में समझिए। जिस ग्रह की महादशा में, जिसकी अन्तर्दशा निकालनी है उन्हें परस्पर गुणा कर १२० का भाग दें। लब्धि वर्ष है। शेष में दहाई का अंक मास है व इकाई का अंक तीन गुना करने से दिन है।

शनि में शनि की अन्तर्दशा जाननी है। दशा वर्षों को गुणा किया १९ × १९ = ३६१ ÷ १२० = लब्धि ३ वर्ष, शेष ०१।

यहाँ ० मास व १ × ३ = ३ दिन। अतः शनि में शनि की अन्तर्दशा ३ वर्ष, ० मास, ३ दिन की है।

सूर्यदशा का फल—

सूर्योत्कृष्टदशा करोति सुतधीप्रज्ञाधिकारोच्छ्रय-
ज्ञानार्थागमकीर्तिपौरुषसुखप्राप्तीश्वरानुगृहान् ॥६॥
भानोः पापदशातिकष्टविबलोद्योगार्थहान्यामया-
रातिक्षोभमहीशमोपजनकारिष्टादिबाधोऽयान् ।

सूर्य शुभ हो तो उसकी दशा में पुत्र धारणात्मक और विवेचनात्मक बुद्धि, अधिकार, आत्मज्ञान, धन, यश, पुरुषार्थ, सुख, ईश्वर की कृपा की प्राप्ति होतो है। सूर्य यदि अशुभ हो तो अतीव कष्ट, दुर्बलता, पुरुषार्थ में निष्फलता, धन का नाश, शत्रु से पीड़ा, राजा का कोप; पिता को रोग आदि घटनाएँ होंगी।

चन्द्रदशा का फल—

चन्द्रोत्कृष्टदशा करोति जननीश्रेयस्तटाकादिकः
क्षेत्रारामगृहापसद्विजवरश्रीशोभनान्दोलिकान् ॥७॥
इन्दोः पापदशान्नहीनकृपणानन्दार्थनाशामय-
प्रज्ञाहीनजुगुप्समातृहरणक्रोधादिशीतज्वरान् ।

चन्द्र शुभ हो तो उसकी दशा में माता को सुख, तालाब आदि, खेत, बगीचा, भवन, सात्विक ब्राह्मणों का आशीर्वाद, धन, अच्छी सवारी आदि प्राप्त होते हैं। यदि चन्द्र अशुभ हो तो मनुष्य अन्न हीन, दुःखी, माता को कष्ट, क्रोधी, शीत ज्वर से पीड़ा आदि होती है।

मंगल की दशा का फल—

भौमोत्कृष्टदशा करोति वसुधाप्राप्तीष्टवस्त्वागम-
प्रज्ञास्वच्छमनः पराक्रमधनारातिक्षयांश्चानुजान् ॥८॥
पापाङ्गारदशानुजार्तिकलहं क्षेत्राग्निबाधाव्रणा-
क्षिक्षीणादिमहीशपीडसुजनक्रोधासिवेधामयान् ।

मंगल यदि शुभ हो तो उसकी दशा में भूमि की प्राप्ति, इष्ट वस्तु की प्राप्ति, प्रखर बुद्धि, पवित्र मन, पराक्रम, धन की प्राप्ति, शत्रुनाश, तथा छोटे भाइयों की प्राप्ति होती है। यदि अशुभ हो तो छोटे भाइयों को कष्ट, झगड़ा, भूमि तथा अग्नि से हानि, भय, घाव, आँखों की कमजोरी, राजा से कष्ट, सज्जनों की ओर से क्रोध, तलवार से घाव तथा व्याधि आदि होते हैं।

बुध दशा का फल—

सौम्योत्कृष्टदशा करोति वसनानन्तार्थधान्योच्छ्रय-
श्रेयः सौख्यगृहस्वबन्धुविजयप्राप्तीष्टवस्त्वागमान् ॥९॥
बोध्या पापदशा विदेशगमनक्रोधस्वबन्धुक्षय-
प्रज्ञाहीनवणिग्जनार्तिकलहक्षेत्रार्थनाशापदः ।

बुध यदि शुभ हो तो उसकी दशा में कपड़े, अनन्त धन, धान्य, पदवी, कल्याण, सुख, गृह, बन्धु, विजय, इष्ट वस्तुओं को प्राप्ति होती है। यदि बुध अशुभ हो तो विदेश-यात्रा होती है, क्रोध, बन्धु नाश, बुद्धि की हीनता, व्यापारी वर्ग से कष्ट, झगड़ा, भूमि, धन आदि का नाश तथा अन्य आपदाएँ होती हैं।

श्लोक में "बन्धु" शब्द आया है। बन्धु से तात्पर्य उन निकट सम्बन्धियों से है जो अपने परिवार अर्थात् माता-पिता, पत्नी तथा सन्तान और भाई-बहिनों को छोड़कर हों। ऐसे सम्बन्धियों का बुध कारक है। अब क्योंकि बन्धुओं का विवेचन जन्म-कुण्डली के चतुर्थ भाव से किया जाता है। अतः कुल मिलाकर बन्धुओं का विचार चतुर्थ भाव, चतुर्थ भाव का स्वामी और सम्बन्धियों का कारक इनसे करना होगा। यदि यह तीनों निर्बल और पीड़ित हों तो बन्धुओं से कष्ट की सम्भावना होती है, उनसे किसी प्रकार की सहायता की आशा नहीं होनी चाहिए।

हाँ, यदि यही तीनों अर्थात् चतुर्थ भाव, चतुर्थेश तथा बुध बलवान् और शुभ दृष्ट हों तो सम्बन्धी जहाँ स्वयं समृद्धिशाली होते हैं वहाँ वह जातक के प्रति भी सहानुभूति रखने वाले सहायक होते हैं।

बृहस्पति की दशा का फल—

जीवोत्कृष्टदशा करोति विपुलग्रामाधिकारात्मज-
श्रीसौभाग्यगुणाकराश्रितजनाश्वान्दोलिकावैभवान् ॥१०॥
जैवी पापदशा महीसुरभयाधिव्याधिधैर्यच्युता
धान्यानर्थमहोसुरातिजनकक्रोधाशनार्तिक्षयान्।

गुरु यदि शुभ हो तो उसकी दशा में बहुत से गाँवों का मुखिया बनना, पुत्र प्राप्ति, धन, सौभाग्य प्राप्ति, शुभ गुणों की प्राप्ति, नौकरों का सुख, वाहन आदि का सुख तथा अन्य वैभव होते हैं। यदि गुरु अशुभ हो तो राज्य की ओर से कष्ट, भय, मानसिक क्लेश तथा रोग, धैर्य का नाश, धान्य तथा धन की कमी, ब्राह्मण वर्ग से कष्ट, पिता की ओर से क्रोध, खाने से कष्ट तथा क्षय आदि रोग होते हैं।

गुरु 'सुख' का कारक है। अत: जिन कुण्डलियों में गुरु निर्बल हो, विशेषतया निर्बल लग्न वाली कुंडलियों में, उन व्यक्तियों को शारीरिक कष्ट बना रहता है।

इसीलिए देव केरल ग्रन्थ में पृष्ठ ३४ पर कहा है—

देहे पापे देहपीडा, जीवे पापे तथैव च।

अर्थात् लग्न स्थान पाप प्रभाव में हो तो देह में पीड़ा रहती है और गुरु पाप प्रभाव में हो तो भी ऐसा ही कष्ट होता है।

शुक्र दशा का फल—

शौक्री श्रेष्ठदशा करोति सुखसौभाग्योच्छ्रयान्दोलिका-
दृष्टैश्वर्यायतधर्मबुद्धिकनकारामाश्वगीतोत्सवान् ॥११॥
शौक्री पापदशा कलत्रभयकृन्नोचार्थहानिप्रदा-
त्यन्नस्तेयमहाप्रदोषविपुलस्त्रीवर्गरोगोद्भवान्।

शुक्र यदि शुभ हो तो उसकी दशा में सुख, सौभाग्य, उच्च पदवी, वाहन से सुख, हर प्रकार का ऐश्वर्य, महान् धार्मिक प्रवृत्ति, स्वर्ण, बाग,

घोड़े, संगीत, खुशी के उत्सव होते हैं। शुक्र यदि अशुभ हो तो अपनी दशा में स्त्री को कष्ट, नीचता तथा धन हानि का होना, घर में बड़ी चोरी हो जाना, बहुत दोषयुक्त जीवन, बहुत स्त्रियों के साथ सम्भोग से उत्पन्न होने वाले रोग होते हैं।

शनि दशा का फल —

मन्दोत्कृष्टदशा करोति विभवप्रज्ञादियज्ञादिक-
क्षेत्रग्रामपुराधिनायकबहुव्यापारदक्षोत्सुकान् ॥१२॥
मान्दी पापविषप्रयोगधनहृद्देहाद्यानर्थोदयान्
राजक्रोधविरुद्धकार्यविकलान् रोगादिबाधोदयान्।

शनि यदि शुभ हो तो अपनी दशा में वैभव तथा प्रखर बुद्धि देता है। यज्ञादिक करवाता है, मनुष्य को खेत, गाँव शहर आदि का मुखिया और बहुत प्रकार के व्यापारों में चतुर बनाता है तथा उत्सुक करता है। जब शनि अशुभ हो तो पाप, विष का प्रयोग करना, धन का नाश, देह में कष्ट, राज्य की ओर से क्रोध, निषिद्ध कर्मों में लगना, अंगहीन (लंगड़ा आदि) होना तथा रोग आदि अनेक बाधाएँ देता है।

राहु दशा का फल

राहूत्कृष्टदशा करोति सकलश्रेयोमहद्राज्यकृ-
द्धर्मार्थागमपुण्यतीर्थचलनज्ञानप्रभावोदयान् ॥१३॥
राहोः पापदशाऽहिभीतिविषजः सर्वाङ्गरोगार्तिकृ-
च्छस्त्राग्न्यन्त्यविरोधवृक्षपतनारातिप्रपीडोदयान्।

राहु जब शुभ हो तो अपनी दशा में सब प्रकार की भलाई करता है, महान् राज्य देता है। धर्म तथा धन की प्राप्ति, पुण्य तीर्थों की यात्रा, ज्ञान तथा प्रभाव आदि को देता है। यदि अशुभ हो तो उसे सर्पविष से भय, सब अंगों में रोग, शस्त्र तथा अग्नि से भय, नीचों से विरोध, वृक्ष से गिरना तथा शत्रु से पीड़ा देता है।

केतु दशा का फल —

केतूत्कृष्टदशा करोति विजयक्रूरक्रियार्थागम-
म्लेच्छक्ष्मापतिलब्धभाग्यकवनप्रारम्भशत्रुक्षयान् ॥१४॥

केतोः पापदशाऽतिकष्टविफलानर्थक्रियोद्योगहृ-
च्छूलास्थिज्वरकम्पनद्विजजनद्वेषातिमूर्खक्रिया ।

यदि केतु शुभ हो तो अपनी दशा में विजय देता है। क्रूर कार्य द्वारा धन प्राप्ति देता है, अन्य देश के राज्य द्वारा भाग्य देता है, पद्यरचना का आरम्भ करना तथा शत्रु-नाश देता है। यदि केतु अशुभ हो तो महान् कष्ट, असफलता, हानि, उद्यम का नाश, हृदय में पीड़ा, टी० बी०, कम्पन आदि नसों के रोग, ब्राह्मण वर्ग से द्वेष तथा महान् मूर्खता के कार्य आदि देता है।

राहु व केतु की दशाओं की विशेषता—

लग्नात्कोणगतौ च वित्तमदनस्थानेश्वराभ्यां तमः
खेटौ संयुतवीक्षितौ निजदशाकाले हि मृत्युपदौ ॥१५॥
नेत्रद्यूनगतौ त्रिकोणपतियुग्दृष्टौ धनायुःप्रदौ
तद्भावेश्वरयुक्तपापखचरो मृत्युं विधत्ते नृणाम् ।

यदि राहु अथवा केतु पंचम अथवा नवम भाव में स्थित हों और द्वितीयेश अथवा सप्तमेश से युक्त अथवा दृष्ट हों तो अपनी दशा में मृत्यु देते हैं। यदि वे द्वितीय अथवा सप्तम स्थान में स्थित हों और उससे त्रिकोण (५, ६) भाव के स्वामी की युति अथवा दृष्टि हो तो धन तथा आयु को देने वाले होते हैं। यदि राहु अथवा केतु द्वितीय अथवा सप्तम भाव में हों और द्वितीयेश अथवा सप्तमेश पापी ग्रह (तृतीय, षष्ठ तथा लाभ भाव के स्वामी) से युक्त हो तो वह पापी ग्रह भी मृत्यु करता है।

त्रिकोण सम्बन्ध से योग कारक—

स्यातां केतुविधुन्तुदौ द्वितनुभे केन्द्रत्रिकोणेश्वरै-
र्युक्तौ वा तदधीश्वरौ यदि तयोः पाकेऽर्थराज्यप्रदौ ॥१६॥
तावेव व्ययशत्रुरन्ध्रसदनाधीशैश्च युक्तेक्षितौ
नृणामल्पफलप्रदौ च जननीं तद्वर्गसंहारकौ ।

यदि राहु अथवा केतु द्विस्वभाव राशियों में स्थित हों और वे अथवा उनसे अधिष्ठित राशियों के स्वामी यदि केन्द्र तथा त्रिकोण भावों

के स्वामी (राजयोग कारक) से युक्त अथवा दृष्ट हों तो अपनी दशा में धन तथा राज्य देते हैं। परन्तु ऐसी स्थिति में यदि द्वादश, षष्ठ, अष्टम भावों के स्वामियों से भी वे युक्त अथवा दृष्ट हों तो मनुष्यों को धन तथा राज्य का अल्प फल देते हैं और माता तथा मातृ पक्ष की हानि करते हैं।

योग कारक व महामारक—

तावेव स्थिरचञ्चलर्क्षसहितौ केन्द्रत्रिकोणाधिपै-
र्युक्तावप्युभयोश्च यः शुभगृहे स स्यान्महाभाग्यदः ॥१७॥
पापर्क्षस्थतमोग्रहौ विफलदौ केचिज्जगुः सौख्यदौ
तौ द्वौ पापगृहस्थितौ शुभयुतौ स्यातां महामारकौ।

याद राहु अथवा केतु स्थिर अथवा चर राशि में स्थित हों और केन्द्र तथा त्रिकोण भावों के स्वामी (राजयोग कारक) ग्रह से युक्त हों तो उन राहु केतु में से जो शुभ स्थान में स्थित हो, उसकी दशा में महान् भाग्य की प्राप्ति होती है। यदि राहु और केतु दोनों अशुभ स्थानों में स्थित हों और उपरोक्त रीति से केन्द्र तथा त्रिकोण स्वामी से युक्त हों तो कोई अच्छा फल नहीं देते। परन्तु कुछ विद्वानों की सम्मति है कि ऐसी स्थित में भी राहु केतु शुभ फल ही देते हैं (हम भी शुभ फल की प्राप्ति के पक्ष में हैं)। परन्तु यदि राहु और केतु पाप भाव में स्थित हों और शुभ ग्रह से युक्त हों तो महान् मारक सिद्ध होते हैं। (सम्भवतया इसका कारण यह है कि शुभ ग्रह ऐसी स्थित में दुगुने पीड़ित होंगे—एक तो अनिष्ट भाव में आने के कारण, दूसरे राहु से युक्त होने के कारण)।

रिःफाष्टारिगृहस्थितौ तदधिपैर्युक्तेक्षितौ हिंसकौ
स्यातां मारकसंयुतौ तदधिपैस्तावेव मृत्युप्रदौ ॥१८॥
तद्भावेषु च केन्द्रकोणपतिभिर्युक्तौ क्वचित्सौख्यदौ
चेद्व्याधिव्रणदुःखखड्गसलिलाच्चोद्बन्धनान्मृत्युदौ।

राहु और केतु यदि छठे, आठवें अथवा बारहवें भाव में स्थित हों और उन ही भावों के किसी स्वामी से युक्त अथवा दृष्ट हों तो अपनी दशा में शरीर को रोग द्वारा कष्ट पहुँचाते हैं। यदि राहु और केतु

मारक भाव में हों अथवा मारकेश ग्रहों के साथ स्थित हों, जब त्रिक भावों के स्वामियों से भी युक्त हों तो अपनी दशा में मृत्यु देते हैं। यदि त्रिक भावों में राहु और केतु केन्द्र तथा कोण के स्वामियों (राजयोग कारक ग्रहों) से युक्त हों तो थोड़ा-सा सुख देते हैं, परन्तु पुनः रोग, घाव, दुःख, तलवार, पानी, बन्धन आदि से मृत्यु देते हैं।

त्रिषडाय में राहु केतु विशेष भोगदाता—

भ्रातृप्राप्तिचतुष्टयेषु बलिभिर्योगग्रहैरन्वितौ
सम्पत्सौख्यसुतार्थराज्यकरिणौ यानोत्कटानिच्छतः ॥१६॥
तावेव स्मरराशिपेन यदि वा वित्ताधिपेनाश्रितौ
ताभ्यां दृक्पथगौ तदा धनहरौ स्यातां महामारकौ।

यदि राहु और केतु तृतीय, एकादश तथा केन्द्र (१, ४, ७, १०) स्थान में स्थित हों और वहां बलवान् योगकारक ग्रहों से युक्त हों तो संपत्ति, सुख, पुत्र, धन, तथा राज्य देने वाले, वाहन तथा अधिकार की प्राप्ति करवाने वाले होते हैं। वही केन्द्रादि उपरोक्त स्थानों में स्थित राहु केतु यदि द्वितीय अथवा सप्तम भाव के स्वामी से युक्त अथवा दृष्ट हों तो धन का नाश करने वाले तथा मृत्यु देने वाले होते हैं।

राहु केतु की उच्चादि राशियां—

तुङ्गं तद्वृषभश्च वृश्चिक इति स्याद्राहुकेत्वोर्गृहौ
कुम्भोऽलीमिथुनाङ्गने तु भवतो मूलत्रिकोणाभिधे ॥२०॥
सिंहः कर्कटको द्वयो रिपुगृहौ तौली मृगो मित्रभे
ऽजोदेवेज्यगृहे समेऽखिलबलं तुङ्गादिगौ तौ यदि।

राहु तथा केतु वृषभ तथा वृश्चिक राशि में क्रमशः उच्च होते हैं उनकी स्वक्षेत्र राशियां क्रमशः कुम्भ तथा वृश्चिक हैं। उनकी मूल त्रिकोण राशियां क्रमशः मिथुन तथा कन्या हैं। सिंह तथा कर्क उनके लिए क्रमशः शत्रु राशियां हैं। तुला तथा मकर उनके लिए मित्र राशियां हैं। मेष तथा गुरु को दो राशियाँ अर्थात् धनु तथा मीन उनके लिए तटस्थों की राशियां हैं। जब यह छाया ग्रह उच्च हों तो अतीव बलवान्

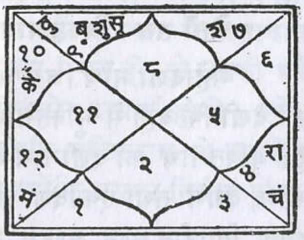
होते हैं। अन्य स्थानों में इनका बल स्थान की शुभता अथवा अशुभता के अनुरूप होता है।

यद्यद्भावगतौ यदीशसहितौ प्राग्वत् त्रिसम्बन्धगौ
तद्दाहे दिशतोऽत्र वीर्यसहितौ खेटान्निरस्येतरान् ॥२१॥
तौ द्वौ यस्य गृहे खगस्य वसतस्तद्वीर्यमेवानयो-
र्भावत्याप्यखिलं शुभाशुभफलं नाथानुसाराद्वदेत् ।

राहु और केतु जिस भाव में बलवान् होकर स्थित हों, अथवा जिस भाव के स्वामी के साथ बलवान् होकर स्थित हों, अथवा उनसे पूर्वोक्त युति, दृष्टि अथवा व्यत्यय से सम्बन्धित हों तो उस-उस भाव के स्वामी की दशा में अपना फल करते हैं। वह फल अन्य ग्रहों की अपेक्षा अधिक बली होता है। (क्योंकि ऐसी स्थिति में ग्रह अपना तथा राहु केतु का सम्मिलित फल करते हैं)। यह छाया ग्रह जिस ग्रह की राशि में स्थित हों उस राशि के स्वामी के बलानुसार ही इनका बल भी समझा जायेगा। जिस भाव में स्थित हों उस भाव के स्वामी की शुभता अथवा अशुभता के अनुसार ही उस भाव का सारा फल कहना चाहिए।

यह साधारण नियम है कि जो भाव आदि पाप युक्त पाप दृष्ट होते हैं वे अनिष्ट फल करने वाले होते हैं। अतः राहु तथा केतु जो कि पापी तथा क्रूर ग्रह माने गये हैं—का दृष्टि योग भी पाप फल ही उत्पन्न करेगा। राहु तथा केतु की दृष्टि का जानना इसलिए अत्यावश्यक है। महर्षि पराशर के अनुसार राहु और केतु की दृष्टि का प्रभाव उनसे अधिष्ठित राशि से सप्तम राशि के अतिरिक्त उन भाव आदियों पर भी पड़ता है जो कि राहु अथवा केतु से पंचम अथवा नवम हों। दूसरे शब्दों में राहु तथा केतु की गुरु की भांति पंचम नवम भाव पर पूर्ण दृष्टि होती है। अतः स्पष्ट है कि यदि मंगल की महादशा हो और केतु भुक्ति हो और दोनों किसी भाव भावेश को अपनी युति अथवा दृष्टि से प्रभावित कर रहे हों तो उस भाव की हानि होती है और उसको चोट आदि से कष्ट होता है। यही स्थिति केतु की महादशा में मंगल की भुक्ति की होगी जबकि दोनों एक ही भाव भावेश को प्रभावित कर रहे हों। इस बात को हम एक उदाहरण से स्पष्ट करेंगे। इस व्यक्ति को

जन्म के समय बुध की महादशा के शेष वर्षादि १४-५-३ थे। २१ वर्ष की आयु में केतु की महादशा में जब शनि की भुक्ति चल रही थी तो इस सज्जन को घुटनों में चोट लगी जिसके फलस्वरूप वह कई मास बीमार रहा। कुण्डली में केतु, शनि की मकर राशि में स्थित है, अतः स्पष्ट है कि शनि भी केतु



अधिष्ठित राशि का स्वामी होने के कारण केतु ही का अथवा दूसरे शब्दों में मंगल का फल करेगा (कुजवत् केतु)। अतः अपनी भुक्ति में शनि अपनी तृतीय दृष्टि द्वारा सूर्य लग्न तथा उसके स्वामी गुरु पर अपनी दृष्टि का फल देगा। इसी प्रकार शनि की केतुमयी दृष्टि के अनिष्ट प्रभाव का फल चन्द्र लग्न तथा उसके स्वामी द्वारा, जो दोनों शनि से दशम दृष्टि द्वारा प्रभावित हैं, व्यक्त होगा। सूर्य तथा चन्द्र क्योंकि शरीर है, अतः शनि शरीर पर चोट करेगा, इतना स्पष्ट हो जाता है, अब आप देखेंगे कि काल पुरुष के अंगों में से दशम अंग (घुटने) पहले हो केतु की स्थिति द्वारा पीड़ित हैं। उसी मकर राशि पर केतु अधिष्ठित राशि के स्वामी शनि का प्रहारात्मक प्रभाव है। उधर मकर के स्वामी शनि पर मंगल की दृष्टि पहले ही विद्यमान है। इस प्रकार केतु की दशा तथा शनि की भुक्ति में काल पुरुष की दस संख्या की राशि और उसका स्वामी पीड़ित सिद्ध होते हैं। अब रह गयी बात दशम भाव तथा उसके स्वामी सूर्य की। सूर्य पर तो केतु तथा शनि की दृष्टि द्वारा प्रभाव है ही। दशम भाव के आस-पास भी केतु तथा शनि अपना प्रभाव डाल रहे हैं क्योंकि शनि की दृष्टि दशम के एक ओर नवम भाव पर है और केतु की दृष्टि दूसरी ओर एकादश भाव पर। इस प्रकार केतु में शनि की दशा भुक्ति ने काल पुरुष के दशम भाव, दशमेश, दशम राशि तथा दशम राशि के स्वामी सभी को पीड़ित किया और घुटनों की चोट दी।

दशेश व अन्तर्दशेश का सम्बन्ध महत्वपूर्ण—

दायेशस्थगृहं प्रकल्प्य च तनुं तस्माच्च भुक्तीश्वर-
स्थानाद्यं युतिदृग्भवं बलमपोहालोच्य तच्चोभयोः ॥२२॥

नान्योन्यं यदि षष्ठनैधनगृहस्थित्यादिकं शोभनं
चेतौ तत्र विरुद्धभावसहितौ वीर्यानुसाराद्वदेत् ।

महादशा नाथ जिस भाव में स्थित हो उस भाव को लग्न समझ कर देखो कि वहां से भुक्तिनाथ कहाँ (अच्छे अथवा बुरे भावों में) स्थित है। भुक्तिनाथ का दशानाथ से द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पञ्चम, सप्तम, नवम, दशम तथा एकादश अथवा साथ-साथ होना शुभ ग्रहों में तथा इसके विपरीत षष्ठ, अष्टम तथा द्वादश भावों में होना अशुभ ग्रहों में होना समझ तथा उन पर पड़ने वाली युति दृष्टि आदि के फलस्वरूप समझना कि उनका कैसा बल है।

यदि यह दशानाथ तथा भुक्तिनाथ परस्पर षडष्टक स्थिति में न हों तो फल शुभ होगा। अन्यथा ग्रहों के बलानुसार अशुभ फल होगा।

दशानाथ तथा भुक्तिनाथ के पारस्परिक शत्रु आदि सम्बन्ध के विषय में 'फलदीपिका' ग्रंथ का निम्नलिखित श्लोक अवलोकनीय है—

दशेशशत्रोररिगेहभाजो लग्नेशशत्रोरपि वाऽथ भुक्तौ
शत्रोर्भयं स्थानलयं तदास्य स्निग्धोऽपि शत्रुत्वमुपैति नूनम्

—अध्याय २० श्लोक २८

अर्थ—दशानाथ के शत्रु की अन्तर्दशा तथा लग्नेश के शत्रु की अन्तर्दशा में शत्रुओं से भय, पदवी की हानि होती है तथा प्रेम करने वाले भी शत्रुता करने लग जाते हैं, इस श्लोक में दशा अन्तर्दशा का फल कहने के लिए दो आवश्यक बातों का उल्लेख है।

यदि ग्रह अपनी राशि से भी शत्रु (छठे) आदि स्थान में हो तो भी अनिष्ट फल करेगा। यह तीसरी बात भी ध्यान में रखनी चाहिए। इसके अतिरिक्त यदि कोई ग्रह लग्न से शत्रु आदि स्थानों में स्थित है तो वह भी कुछ अंशों में बुरा फल करेगा।

इस प्रकार दशाफल कहने का प्रकार यह हुआ कि यदि कोई ग्रह अपनी राशि से, लग्न से, दशानाथ से, अनिष्ट स्थानों में दशानाथ का शत्रु होकर स्थित है तो उसका फल बहुत अनिष्ट होगा। यद्यपि वह लग्न-विशेष का मित्र ही क्यों न हो। ऐसे ग्रह का शुभ फल देना तभी संभव हो सकेगा जबकि कम से कम पांच प्रकार से वह बलवान हो। जैसे—केन्द्र स्थिति द्वारा, उच्चादि राशि में स्थिति द्वारा, वर्गोत्तमांश स्थिति द्वारा, शुभ दृष्टि द्वारा, बलत्व द्वारा।

हां, यदि भुक्तिनाथ कुण्डली के अशुभ भावों का स्वामी होकर अपनी राशि से षष्ठादि स्थान में, लग्न से अनिष्ट स्थान में, दशानाथ से अनिष्ट स्थान में, दशानाथ का शत्रु होकर स्थित हो तो उसकी भुक्ति बहुत शुभफल करने वाली 'विपरीत राजयोग दायक' होगी। ऐसे ग्रह की भुक्ति में तब अशुभ फल मिलेगा जबकि भुक्तिनाथ को कम से कम उपरोक्त पाँच प्रकार से बल मिलता है क्योंकि उसका निर्बल होना ही शुभकारी है।

भावेशों के अनुसार दशाफल—

केन्द्राधीश्वरकोणनायकदशाश्चान्तर्दशाः शोभनाः
सामान्याश्च धनत्रिलाभभवनाधीशग्रहाणां दशाः ॥ २३ ॥
षष्ठाष्टव्ययभावनायकदशाः कष्टा भवेयुः सदा
नेतुर्लग्नमपीक्ष्य तत्र च वदेत्तत्तद्दशाभुक्तिषु ।

एक ग्रह जो केन्द्राधिपति तथा त्रिकोणाधिपति साथ-साथ हो, उसकी दशा तथा अन्तर्दशा शुभ फल करने वाली होती है। द्वितीय, तृतीय तथा एकादश भावों के स्वामियों की दशा सामान्य रूप से फल करती है। षष्ठ, अष्टम तथा द्वादश भावों के स्वामियों की दशा सदा कष्टकारी होती है। ग्रहों की भुक्तियों का फल महादशा नाथ से अधिष्ठित भाव की शुभता-अशुभता को देखकर कहना चाहिए।

दशेश व अन्तर्दशेश का सम्बन्ध—

पाकेशाध्युषितान्त्यशत्रुनिधने संस्थो विपाकेश्वरः
तच्छत्रुर्भवतीह लाभधनभे सोत्थात्मजे बन्धुभे ॥ २४ ॥
भाग्ये वा दशमे समन्वितखगस्तच्छोभनाख्यो महान्
तत्कामान्वितखेचरश्च शुभदः पाकेशयुक्तोऽपि च ।
पाकेशस्तु खलोऽयुतः शुभखगः पापं युतः शोभनो
मिश्रं चायुतयोगकृद्दिशति तत्पापाधिकं दीनताम् ॥ २५ ॥

यदि दशानाथ से भुक्तिनाथ छठे, आठवें, बारहवें हो तो वह दशानाथ का शत्रु हो जाता है। दशानाथ से भुक्तिनाथ एकादश, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पंचम, नवम, अथवा दशम भाव में हो तो बहुत

शुभ फलकारी होता है। भुक्तिनाथ दशानाथ के साथ हो, अथवा उससे सप्तम हो तो शुभ फल ही करता है।

यदि महादशानाथ दुष्ट पापी ग्रह हो तथा अन्तर्दशानाथ शुभ ग्रह हो, परन्तु ये दोनों आपस में पूर्वोक्त पाराशरीय सम्बन्धों से हीन हों तो फल प्राय: अशुभ ही होता है।

यदि इन दोनों का परस्पर सम्बन्ध बैठता हो तो अवश्य ही मिश्रित फल होता है।

यदि अन्तर्दशानाथ योगकारक भी हो, किन्तु दशानाथ से सम्बन्ध न बना रहा हो तो कुछ अधिक दुष्ट फल करता है। अत: दशा व अन्तर्दशा का फल दोनों ग्रहों के पारस्परिक सम्बन्ध पर निर्भर करता है।

दशानाथ के एक साथ कारक व मारक होने पर—

योगं चैव मृति यदा युगपदेवेकस्तु दातुं क्षम-
स्तस्यादौ स्वविपाक एव सुमहद्योगं प्रकुर्यादसौ।
यादृक्खेटमहादशा सुफलदा कृत्स्ना खला भुक्तय-
स्तद्वच्छोभनदास्तदीयमरणं दूरादपास्यत्यसौ
अन्यत्र द्युचर: शुभफलं कुत्रापि नो यच्छति
स्याद्यच्छेद्यदि सर्वतोऽपि हि दशा सा निष्फलेत्यूचिरे॥२६॥

जब एक ही दशानाथ में योग देने और मारने के गुण पाये जावें तो वह पहले अपनी दशा और अपनी ही भुक्ति में योग फल प्रदान करता है।

यदि उपरोक्त योग तथा मृत्युदायक ग्रह की समस्त दशा शुभ हो और उसमें प्रत्येक भुक्ति का फल भी शुभ हो तो ग्रह मृत्यु को पीछे डाल देता है। ऐसा दशानाथ मिश्रित फल कदापि नहीं करता। यदि ऐसा हो तो उसकी दशा हर प्रकार से निष्फल कही जाती है।

आशय यह है कि दशानाथ एक साथ कारक व मारक सिद्ध होता हो तो फल का प्रकार इस प्रकार समझना चाहिए। ध्यान रखें—एक ही ग्रह यदि कारक सिद्ध होता है और उसे ही मारकत्व भी प्राप्त हो तो दोनों फल एक दूसरे को नहीं काटते। अर्थात् दोनों फल मिलेंगे।

दशानाथ अपनी ही अन्तर्दशा में शुभ योग कारक फल देगा यदि वह कारक व मारक दोनों हो।

अब शेष अन्तर्दशाओं के स्वामियों को देखें कि वे कुण्डली में शुभ फल देने वाले हैं या अशुभ फल देने वाले। यदि अगली अन्तर्दशायें अशुभ हैं तो मारक फल उन्हीं अन्तर्दशाओं में मिलेगा।

यदि अगली अन्तर्दशाएं भी योगकारक ग्रहों की आ रही हों तो मृत्यु रूपी फल पीछे हटता जाएगा। अर्थात् मृत्यु नहीं होगी।

अतः दशेश व अन्तर्दशेशों के आधार पर कारक व मारक फल की व्यवस्था कर लेनी चाहिए।

गुरु व शुक्र की दशा की विशेषता—

देवेज्यो भृगुजे भृगुः सुरगुरौ तौ चेन्मिथो पाकगा-
वन्योन्यं शुभभावगौ बलयुतौ सत्खेटयुग्वीक्षितौ
राजा स्यात्सचिवोऽथवा बहुधनी स्त्रीपुत्रसौख्यान्वितो
यज्ञादिक्रतुकृत्सुतोदयविवाहाद्युत्सवानन्दितः ॥ २७ ॥

गुरु की भुक्ति शुक्र में अथवा शुक्र की भुक्ति गुरु में हो, दोनों शुभ भावों में हों और एक ग्रह दूसरे ग्रह की राशि में हो, दोनों बलवान् हों, शुभ ग्रह से युक्त अथवा दृष्ट हों तो राजा अथवा मन्त्री होता है और बहुत धनवान्, स्त्री और पुत्र के सुख से युक्त, यज्ञ आदि शुभ कर्मों को करने वाला, पुत्र प्राप्ति तथा विवाह आदि उत्सवों से आनन्दित होता है।

तावन्योन्यरिपुव्ययाष्टमगतौ तद्भेशदृष्टौ युतौ
तद्भेशत्वयुतौ खलेक्षणयुतौ स्थानादिवीर्योनितौ ।
दारापुत्रवियोगदौ च बलवद्विप्रेन्द्रविद्वेषदौ
स्त्रीसंसर्गभवार्तिदौ नृपभयापस्मारभीतिप्रदौ ॥ २८ ॥

वही गुरु और शुक्र एक-दूसरे से छठे, आठवें अथवा बारहवें हों, उन तीनों (छठे आदि) भावों के स्वामियों से दृष्ट हों अथवा युक्त हों, अथवा उन तीन अनिष्ट भावों में से किसी के स्वामी बनते हों, पापी ग्रहों से युत अथवा दृष्ट हों, स्थान बल थोड़ा प्राप्त किये हों तो स्त्री तथा पुत्र के वियोग को देने वाले, बलवान् ब्राह्मण मुखिया से झगड़ा करा

देने वाले, स्त्री के संग से उत्पन्न हुई पीड़ा के देने वाले, राज्य से भय तथा मिरगी का डर देने वाले होते हैं।

शनि व शुक्र की दशान्तर्दशा (एक विचित्र नियम)—

भृग्वार्की यदि तुङ्गभे स्वभवने वर्गोत्तमादौ स्थितौ
तुल्यौ योगकरौ तथैव बलिनौ तौ चेन्मिथो पाकगौ।
भूपालो धनदोपमोऽपि सततं भिक्षाशनो निष्फल:
तत्रैकस्तु बली परस्तु विबलश्चेद्वीर्यवान्योगदः ॥ २९ ॥

शुक्र तथा शनि यदि दोनों उच्च, स्वक्षेत्री, वर्गोत्तम आदि में तुल्य योगकारक होकर बलवान् होकर स्थित हों और एक दूसरे की दशा तथा भुक्ति हो तो ऐसे समय में, यदि कुबेर समान राजा भी क्यों न हो तो भी, भिक्षा को भक्षण करने वाला (अर्थात् निर्धन) तथा दुःखी हो। हां, यदि उनमें से एक बलवान् तथा दूसरा बलहीन हो तो बलवान ग्रह अपने योग का फल देने वाला होता है।

सभी जानते हैं कि शनि व शुक्र दोनों मित्र हैं। यदि दो मित्र ग्रह उत्तम स्थिति में हों तो अपनी दशा व अन्तर्दशा में बहुत अच्छा फल देते हैं। यह बात युक्ति संगत है। किन्तु ग्रन्थकार का दृढ़ विश्वास है कि इस स्थिति में अर्थात् दोनों उच्चगत, वर्गोत्तमी, स्वक्षेत्री आदि हों तो कुबेर को भी भीख माँगनी पड़ती है। यह सिद्धान्त देखने सुनने में अट-पटा लगता है किन्तु व्यवहार में इसे आप खरा पायेंगे। इनकी दशा व अन्तर्दशा में किसी एक के निर्बल होने पर ही बली ग्रह अपना शुभ फल देता है। यह नियम अगले श्लोक में बताया जा रहा है।

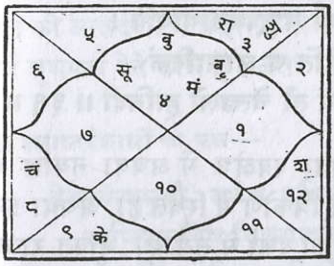
निर्बल शनि शुक्र की दशा में श्रेष्ठफल—

तौ द्वावप्यबलौ व्ययाष्टरिपुगौ तद्भावपौ वाऽपि तत्
तद्भावेशयुतौ तदा शुभकरौ सौख्यप्रदौ भोगदौ ॥
एकः सद्भुवनाधिपस्तदपरश्चेद्दुष्टभावेश्वर-
स्तावप्यत्र सुयोगदावतिखलौ तौ चेन्महासौख्यदौ ॥ ३० ॥

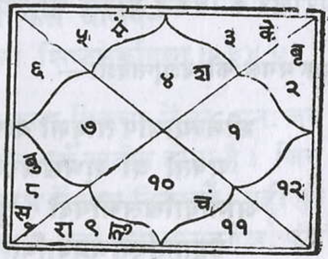
यदि उपरोक्त शनि तथा शुक्र बलरहित हों, लग्न से द्वादश, अष्टम अथवा षष्ठ स्थान में स्थित हों, अथवा इन त्रिक भावों के स्वामी

हों, अथवा इन त्रिक भावों के स्वामियों से युक्त हों, तब दशा भुक्ति में शुभ फल, सुख और भोग के देने वाले होते हैं। यदि उनमें से एक शुभ भाव का स्वामी हो और दूसरा अशुभ भाव का हो तो भी अच्छे योग का फल (धन-सुख आदि) देते हैं और यदि दोनों महान् अशुभ हों तो और भी महान् सुख के देने वाले होते हैं।

इस नियम की पुष्टि के लिए हम अपनी पुस्तक 'दशाफल रहस्य' के



पृष्ठ ८९ पर अंकित कुण्डली का हवाला देना चाहते हैं। यह व्यक्ति १५-४-१९३४ को टायफायड का शिकार हुआ व साढ़े सात मास तक इससे ग्रस्त रहा जिससे इसे शरीर कष्ट के साथ आर्थिक कष्ट भी हुआ। यहां शनि त्रिकोण में सामान्यत: अशुभता को खो चुका है। दशेश अन्तर्दशेश से केन्द्र सम्बन्ध रखता है। बारहवें शुक्र स्वयं योगकारक है। शुक्र की उच्च राशि में शनि वृहस्पति से दृष्ट है। अत: दोनों बली हैं। इनकी दशा (शुक्र दशा-शनि अन्तर्दशा) में उक्त भयानक फल हुआ। शनि त्रिकेश होने से भयंकर अशुभ नहीं हुआ। अब श्रीमती इन्दिरा की कुण्डली देखिए। दिसम्बर १९७९ में इन्हें शनि महादशा में शुक्र की अन्तर्दशा शुरू हुई। कुण्डली में शनि केन्द्रस्थ होकर बली है और शुक्र षष्ठ स्थान में चन्द्रमा से द्वादश व लग्न से षष्ठ होने के कारण लग्नाधियोग व अनफादि योगकारक है। इनकी दशा अन्तर्दशा में इन्दिरा गांधी की चुनावों में जबर्दस्त हार, पदच्युति, बदनामी, अधिकार हानि, संसद से निष्कासन, मानसिक यातना, गिरफ्तारी, शाह कमीशन का संकट आदि भुगतना पड़ा। कुण्डली इस प्रकार है—



यहां भी शनि त्रिकेश व शुक्र त्रिकस्थ है; परन्तु श्लोक ३० में बताए गए सिद्धान्तानुसार शुभ फल नहीं हुआ। अत: हमें समझना चाहिए कि उत्तरकालामृत का सिद्धान्त है कि शुक्र बारहवें स्थान में योगकारक है।

दूसरी जगह षष्ठ स्थान में शुक्र गुरु से क्षेत्र सम्बन्धी होकर बली है। अत: बल का तारतम्य यदि अधिक हो तो अधिक अशुभ व दोनों निर्बल हों तो शुभ फल ऐसी व्यवस्था समझनी चाहिए।

सूर्य व शनि की दशान्तर्दशा में विशेष—

शन्यर्को निजराशितुंगभगयोस्तत्तन्नवांशेऽपि वा
संस्थौ कोणचतुष्टयाख्यगृहगौ तद्भावनाथावपि।
भुक्तौ तु द्युमणेः सदा नृपजनप्रीतिं च लाभादिकं
चेन्मन्दस्य सुखं धनं च विजयं तौ चेत्खलौ हानिदौ॥ ३१॥

शनि तथा सूर्य यदि उच्च अथवा स्वक्षेत्र में अथवा नवांश में अपनी राशियों के हों तथा केन्द्र अथवा त्रिकोण में स्थित हों, अथवा इन केन्द्र त्रिकोणों के स्वामी हों, तो शनि की दशा में सूर्य की भुक्ति राज्य की ओर से कृपा, धन आदि तथा सूर्य की दशा में शनि की भुक्ति सुख, धन तथा विजय देगी। परन्तु यदि दोनों ग्रह अशुभ हों तो जातक को दु:खदायी होते हैं।

इस सिद्धान्त की पुष्टि भी इन्दिरा गांधी की कुण्डली से होती है। जनवरी १६८० में शनि में सूर्य की अन्तर्दशा शुरू हुई। शनि केन्द्रेश है। सूर्य त्रिकोण गत है। शनि भी लग्न त्रिकोण में है। अत: सुख, धन व विजय मिली। वे पुन: सत्तारूढ़ हो गई थीं। यह तो एक पक्ष हुआ। पहले बताया गया है कि एक ही ग्रह का कारकत्व व मारकत्व परस्पर बाधित नहीं होता है। अत: शनि व सूर्य दोनों परस्पर त्रिकोण सम्बन्धी होने पर भी अष्टमेश में मारकेश सूर्य की दशा में जून १६८० को श्री संजय गांधी की अचानक मृत्यु से इन्हें अपार शोक सहना पड़ा। इस प्रकार आप देख रहे हैं कि अनेक स्थानों पर उत्तरकालामृतकार पराशर के विरुद्ध जाकर भी व्यवहार में खरा है।

गुरू मंगल की दशान्तर्दशा—

भौमेज्यावपि तादृशौ बलयुतौ सुस्थानगौ वीक्षितौ
युक्तौ वा शुभखेचरैर्बलयुतैस्तौ राजयोगप्रदौ॥ ३२॥
आनन्दाखिलभोगदौ सुखकरौ जीवत्सुपुत्रप्रदौ
उद्वाहादिशुभप्रदावितरथा चेद्व्यत्ययं स्यात्क्रमात्।

यदि उपरोक्त प्रकार से मंगल तथा गुरु बलवान् शुभ स्थानों में स्थित बलवान् शुभ ग्रहों से युक्त अथवा दृष्ट हों तो राजयोग का फल करते हैं और हर प्रकार का आनन्द और भोग सामग्री देते हैं, सुख देते हैं, दीर्घजीवी पुत्र देते हैं, विवाह आदि का शुभ फल देते हैं। यदि बलहीन हों तो उक्त फल से विपरीत फल करते हैं।

फिर इन्दिरा गांधी की कुण्डली देखिए। बृहस्पति की दशा में मंगल की अन्तर्दशा में प्रधानमंत्री (पहली बार) बनी थीं। मंगल व गुरु दोनों शुभफल देने वाले हैं। अतः राजयोग का फल मिला था।

अन्य दशान्तर्दशाओं का फल—

देवेज्येन्दुसुतौ तथैव बलिनौ सत्कर्मविद्यायुतं
वाणिज्यादिषु विक्रयाक्रयपटुं स्त्रीपुत्रसौख्यान्वितम्
शुक्रज्ञावपि तद्वदिज्यशशिनौ चन्द्रासुरेज्यौ पुन-
जीवार्कौ रविमंगलौ रविबुधौ स्यादिज्यसौम्योक्तिवत् ॥३३॥

गुरु और बुध यदि उपरोक्त प्रकार से बलवान् हों तो अपनी दशा भुक्ति में जातक को शुभ कर्म करने वाला, विद्वान्, व्यापार आदि में लेन देन में चतुर, स्त्री तथा पुत्र के सुख से युक्त करते हैं। जो फल गुरु तथा बुध की परस्पर दशा भुक्ति का कहा है वही फल शुक्र तथा बुध, गुरु तथा चन्द्र, चन्द्र तथा शुक्र, गुरु तथा सूर्य, सूर्य तथा मंगल, सूर्य तथा बुध आदि ग्रहों की परस्पर दशा भुक्ति का कहना चाहिए।

वर्षफल विधि—

जन्मार्केण समो यदा स्फुटरविर्नाड्यादिभिः स्यादसौ
सौराब्दादिरिह ग्रहांस्तनुमुखान् भावांश्च जन्मोक्तिवत्
कृत्वा तन्मुनिवर्गसम्भवबलं तस्मात्फलं योजये-
ज्जन्मर्क्षादिशरन्मुखेन्दुभमजाप्तं शिष्टमर्कादृशा ॥ ३४ ॥

सूर्य जन्म-समय जिस राशि अंश कला विकला में हो, पुनः जब उसी राशि अंशादि में आता है तो एक सौर वर्ष व्यतीत होता है। जिस सौर वर्ष का फल जानना हो उसके आरम्भ में लग्न निकालो, ग्रहों की स्थिति ज्ञात करो, भाव स्पष्ट करो तथा ग्रहों का सप्तवर्गज फल

निकालो तब फल कहो। वर्षारम्भ में चन्द्र जिस नक्षत्र में हो उसको जन्म नक्षत्र से गिनकर नौ (९) का भाग दो, जो शेष बचे उससे सूर्य से गिनकर प्रथम दशा का ग्रह निकाल लो।

वर्ष के आरम्भ में वर्ष प्रवेश की लग्न निकालने की जो विधि इस श्लोक में दी गईहै वह सर्वोत्तम है, इसलिये वर्ष प्रवेश का लग्न निकालने के लिये हमको देखना होगा कि जीवन के जिस वर्ष में वर्ष प्रवेश का प्रश्न है उसमें सूर्य बिल्कुल जन्मकालीन स्थिति में किस समय है। मान लीजिये कि किसी व्यक्ति के जन्मकालीन सूर्य का स्पष्ट ३-२३-१० है और हम उसकी आयु के ४७वें वर्ष के प्रवेश का लग्न निकालना चाहते हैं तो पंचांग में देखिए कि जिस दिन व्यक्ति के ४७ वर्ष पूरे होते हैं उस दिन के सूर्य की क्या स्थिति है? जब उस दिन के समीप सूर्य उतने ही अंश कला विकला पर होगा तो उस समय वर्ष प्रवेश समझा जायेगा। यह समय आसानी से निकाला जा सकता है, क्योंकि प्राय: पंचांगों में प्रात: समय (जैसे साढ़े पांच) का सूर्य का स्पष्ट दिया रहता है। उस स्पष्ट से तथा सूर्य की दैनिक गति द्वारा हम उस क्षण को जान सकते हैं कि कब सूर्य का जन्मकालीन स्पष्ट होगा।

आजकल एफेमेरीज में इसी पद्धति से वर्ष प्रवेश कालिक लग्नादि का साधन किया जाता है। वह सरलतम प्रकार है। आप सुविधानुसार पंचाँग में दी गई वेधसिद्ध नई वर्ष प्रवेश सारणी में गत वर्षों के नीचे दिए गए ध्रुवांक को लेकर उसमें जन्मकालिक वार व इष्ट घड़ी पल जोड़कर वर्षेष्ट व वर्ष प्रवेश वार जान सकते हैं। उस इष्टकाल से लग्न निकाल लीजिये वही वर्ष प्रवेश लग्न होगा। वर्षफल के विशेष अध्ययन के लिए हमारी पुस्तक 'वर्षफल विचार' देखें।

विशोत्तरी पद्धति पर ही वर्ष में भी मुद्दा दशा होती है। इसमें दशेशों का क्रम विंशोत्तरी वाला ही रहता है। इसे जानने का सीधा प्रकार है—

जन्मर्क्षसंख्यासहिता: गताब्दा: नेत्रोनिता: नन्दहृतावशेषात्।
आचंभौराजीश बुकेशुमध्ये मुद्दादशा किल वर्षप्रवेशे॥

जन्म नक्षत्र की संख्या में गत वर्षों की संख्या को जोड़ें। योगफल में से २ घटाकर ९ का भाग दें। शेष संख्यानसार मुद्दादशा होगी। इस

दशा में जन्म दशा की तरह चन्द्रमा के गत व भोग्य अंशों के आधार पर दशा का भुक्त व भोग्य निकालना आवश्यक है। यह विषय अगले श्लोक में बताया जा रहा है। किन्तु मुद्दादशा से यह प्रकार भिन्न है। हम समझते हैं कि प्रचलित प्रकार से यह अधिक सूक्ष्म वर्ष है।

दशा में भुक्तभोग्य साधन—

द्वन्दोर्भैष्यघटी दशादिनहता भाद्यन्तनाडीहृता
दायैष्यं दिननाडिकाद्यमिति तद्वर्षप्रवेशादितः।
खैकेलाः खरसास्ततस्तु दशनाः शून्याब्धयोऽह्यब्धयः
षड्वाणाश्रितयः शरादिगिनचन्द्रारज्ञजीवा भृगुः॥ ३५॥
मन्दागू च तनुर्ग्रहक्रम अयं वाणाङ्गरामैर्दिनैः
प्रागुक्तैर्दिनखण्डकैः फलमथाग्रे वार्षिकं तूच्यते
तत्तत्खेटदशाफलं बलवशाद्वर्षप्रवेशोदयाद्भा-
वाद्यं स्थितिदृग्भवं च सकलं वाच्यं शुभं वाऽशुभम्॥३६॥

वर्ष के आरम्भ में चन्द्र को देखो कि वह जिस नक्षत्र में स्थित है उसमें उसको कितनी घड़ियाँ चलना शेष है। इन घड़ियों को निम्न-लिखित ग्रहों की अपनी-अपनी दशा, जो दिनों में है, से गुणा करो और उन घड़ियों पर विभक्त कर दो जो चन्द्र को उपरोक्त सारे नक्षत्र के चलने में लगती हैं। जो उत्तर होगा वह आरम्भ दशा के वे दिन होंगे जो उसके वर्षारम्भ पर शेष हैं।

वर्ष में दशाओं का क्रम सूर्य ११० दिन, चन्द्र ६० दिन, मंगल ३२ दिन, बुध ४० दिन, गुरु ४८ दिन, शुक्र ५६ दिन, शनि ४ दिन, राहु ५ दिन और लग्न १० दिन, इस प्रकार होगा। दशा का फल, शुभ अथवा अशुभ ग्रहों की स्थिति, बल वर्ष, के आरम्भ की लग्न तथा दृष्टि आदि का विचार कर कहना चाहिए।

वर्ष में गोचर व दशा का समन्वय आवश्यक—

जन्मेन्द्वृक्षवशाद्विचिन्त्य खचरस्तात्कालिकैरुक्तव-
दृगोचरोदितवर्त्मना तदुभयोर्योगार्थसंवादतः
एकस्यैव हि वत्सरस्य च तथा दायेश्वरैश्चाखिलं
वक्ष्येऽत्यन्तसुलाघवं स्फुटतरं चित्रं फलं दायजम्॥ ३७॥

गोचर पद्धति के अनुसार जन्म राशि से तात्कालिक ग्रहों के फलों का ध्यान रखते हुए, वर्ष की दशाओं तथा गोचर में एक जैसा प्राप्त होने वाला फल कहना चाहिए। अब मैं एक वर्ष में विविध दशा स्वामियों की दशा का विचित्र फल संक्षेप से परन्तु स्पष्ट रूप से कहता हूं।

सूर्य व चन्द्र की दशा का फल—

वीर्याढ्ये दिननायके धनचयं भूषाम्बरं चैधते
वीर्योने कलिशत्रुवृद्धिमपि तद्वित्तक्षयं पीडनम्।
वीर्याढ्ये शशिनीनपूज्यमनिशं वित्ताधिकं गौरवं
वीर्योने रिपुवृद्धिरोगचलनासौख्यं विरोधस्वकैः॥ ३८॥

वर्ष में जब सूर्य की दशा हो और सूर्य बलवान् हो तो धन का संचय, भूषण तथा कपड़ों की प्राप्ति, परन्तु यदि सूर्य निर्बल हो तो झगड़ा, शत्रुओं की वृद्धि, धन का नाश, पीड़ा होती है। चन्द्र बलवान् हो तो राज्य से कृपा की प्राप्ति, धन की सतत वृद्धि, गौरव की प्राप्ति होगी। यदि निर्बल हो तो शत्रुओं की वृद्धि, रोग, यात्रा, दुःख और अपने सम्बन्धियों से विरोध होता है।

मंगल व बुध की दशा का फल—

भूपुत्रे बलसंयुते नृपजनप्रीतिर्जयः स्यात्सुखं
वीर्योने नृपभीतिपुत्रकलहस्त्रीवैरवित्तक्षयाः
सौम्ये पूर्णबले प्रतापशुभसौख्याधिक्यता लाभकृत्
वीर्योने सहजादिवैरकुपथाश्च ब्राह्मणद्रोहकृत्॥ ३९॥

यदि मंगल बलयुक्त हो तो राज्य की ओर से कृपा रहेगी, जीवन में सफलता प्राप्त होगी और घरेलू जीवन सुखी रहेगा। परन्तु जब मंगल निर्बल हो तो राज्य के क्रोध का शिकार होना पड़ेगा, अपने पुत्रों से कलह होगी, अपनी स्त्री से शत्रुता होगी और धन का ह्रास होगा।

जब बुध अच्छा बलवान् हो तो मनुष्य में कार्य शक्ति की प्रचुरता रहेगी। उस व्यक्ति को अधिक मात्रा में सुख तथा लाभ की प्राप्ति होगी। परन्तु यदि बुध निर्बल हो तो अपने भाइयों से भ्रान्ति, कलह आदि होंगे। वह व्यक्ति कुपथ-गामी होगा और ब्राह्मणों को धोखा देने वाला होगा।

बृहस्पति व शुक्र की दशा का फल—

जीवे पूर्णबले रथाश्वधनदः स्याद्बुद्धिवृद्धिर्धनं
वीर्योने चलनं धनक्षयमपि स्यात्पापदुःसंगती
शुक्रे पूर्णबले धनागमयशः शुक्लाम्बरस्त्रीसुखं
हीने स्याद्धननाशनं रिपुभयं स्त्रीरोगकृच्चायशः ॥ ४० ॥

जब गुरु पूर्ण बली हो तो अच्छे वाहन, रथ, घोड़े, धन की प्राप्ति बुद्धि में वृद्धि हो। यदि बलवान् न हो तो यात्रा, धन का नाश, पाप तथा दुःख की संगति होती है। शुक्र यदि पूर्ण बली हो तो धन की आय, यश, श्वेत वस्त्र तथा स्त्री का सुख होता है। बल से हीन हो तो धन का नाश, शत्रु से भय, स्त्री को रोग और अपयश होता है।

शनि व राहु की दशा का फल—

मन्दे पूर्णबले गृहादिसुखकृद्भिल्लाधिपत्यं भवे-
न्न्यूने वित्तहरः शरीरकृशता रोगोऽपकीर्तिर्भवेत् ।
राहौ पुण्यसुकर्मलाभशुभकृच्चोद्योगवृद्धिस्तथा
पापत्वे सति चाशुभं पितृमृतिर्नीचारिगोष्ठिर्भवेत् ॥ ४१ ॥

जब शनि बलवान् हो तो अपनी वार्षिक दशा में मनुष्य को शुभ गृह देता है, सुख देता है, किसी भील आदि नीच जाति अथवा वर्ग का मुखिया बना देता है। यदि बलहीन हो तो धन नाश, शरीर का सूखना अथवा निर्बल होना, रोग तथा अपयश होता है। राहु बलवान् शुभ हो तो पुण्य, शुभ कर्म, लाभ, शुभ कर्मों तथा उद्योग में वृद्धि। यदि पापी अर्थात् अशुभ हो तो अशुभकारी, पिता की मृत्यु तथा नीच शत्रुओं से बातचीत करनी पड़ती है।

लग्न की दशा का फल—

लग्ने वार्षिककालजे शुभफलं मध्यं च कष्टं भवेद्
द्रेक्काणत्रितये क्रमात्तदधिपात्सम्बन्धयोगाद्भवेत् ।
एवं वार्षिकजं दशाफलमपि प्रोक्तं लघुत्वं त्विदं
तत्तत्खेटबलाबलाच्छुभयुतेरूह्यं सुधीभिस्तथा ॥ ४२ ॥

जब लग्न की दशा का आधिपत्य हो तो शुभ है, मध्यम अथवा अशुभ लग्न में द्रेक्काण की प्रकृति तथा उस द्रेक्काण के स्वामी के सम्बन्ध से उत्पन्न योगों पर निर्भर होता है। इस प्रकार संक्षेप से वार्षिक दशा-फल कहा। बुद्धिमान् को दशा का फल, ग्रह के फल तथा शुभ युति आदि का विचार कर कहना चाहिए।

उत्तर कालामृतकार ने वर्ष दशा में लग्न की भी दशा मानी है। वार्षिक दशा का यह संक्षिप्त फल बताया गया है। विद्वानों को ग्रहों के पारस्परिक सम्बन्ध, गोचर व दशा का समन्वय करके वर्ष का फल कहना चाहिए।

यहाँ श्लोक में इस क्रम को नहीं अपनाया गया है। ग्रन्थकार के मत से वारादि क्रम से राहु व लग्न सहित आठ वर्ष दशा होती है। सूर्य, चन्द्रमा, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु व लग्न। अष्टक वर्गदशा में भी यही क्रम रहता है तथा गोचर के साथ समन्वय करते हुए अष्टक वर्ग दशा का फल कहा जाता है। यहां इस पद्धति में दशाओं के दिन भी अलग हैं जैसा कि अगले श्लोकों में बताया जा रहा है। अत: पाठकों को इसे विंशोत्तरी मतानुसारी मुद्दा दशा समझने का भ्रम नहीं करना चाहिए।

प्रश्न खण्ड

:७: जन्म पत्री न हो तो प्रश्न तथा उनके उत्तर : घड़ी के बिना भी सही प्रश्न लग्न की प्राप्ति : नष्ट जन्म-पत्र रचना, जन्म कब हुआ : प्रश्न किस वस्तु के सम्बन्ध में है ? वस्तु किधर गई ? काम बनेगा या नहीं ? यदि बनेगा तो कब तक ?

जातक व प्रश्न की समानता (इष्ट लग्न निर्णय)—

एवं जन्मखगोदयः फलमिदं सर्वं वदेज्जातके
तन्नो चेदथ जन्मपत्रमपि वा तत्प्रश्नलग्नाद्भवेत् ।
प्रश्नो जातकतुल्य एव न भवेद्भेदोऽथवा दुर्दिने
न ज्ञाते घटिकादिके गृहनवांशादींश्च पृच्छाद्भवेत् ॥१॥

इस प्रकार जातक शास्त्र में जन्मकालीन ग्रहों तथा लग्न से सब फल कहे। यदि जन्म-कुण्डली न हो तो प्रश्न लग्न से फल कहना चाहिए। जन्म-कुण्डली तथा प्रश्न-कुण्डली के फलों में कोई अन्तर नहीं होता। यदि प्रश्न-समय बादल हों और सूर्योदय से गत घटिका आदि (इष्ट) का ज्ञान न हो तो विविध राशियों तथा नवांशों का निश्चय पूछने वाले से प्रश्न द्वारा करे।

सभी विद्वान् इस विषय में एकमत हैं कि जातक की तरह ही प्रश्न से फल समझना चाहिए। जो नियम जातक में प्रभावी होते हैं वे ही नियम प्रश्न में भी लगेंगे। अस्तु, प्राचीन काल में जब शंकुसाधनादि के द्वारा इष्ट लग्न का निर्णय किया जाता था तब तो यह बात तर्क संगत थी कि प्रश्नकर्त्ता के प्रश्न के अक्षरों आदि से लग्न व नवांश का निर्णय करना चाहिए। आजकल कलाई घड़ी आदि का उपयोग बहुतायत से होता है व और भी कई साधन हैं जिनसे समय का ज्ञान किया जा सकता है। पाठकों को प्रचलित पद्धति से लग्न साधन में सुविधा होगी। फिर भो एक बात हम बता देना चाहते हैं कि दक्षिण भारत की इष्ट लग्न निर्णय की वह पद्धति वास्तव में प्रशंसनीय है जिसमें प्रश्नकर्त्ता के उच्चारित अक्षरों से ही लग्न का निर्णय सफलता पूर्वक किया जाता है। अत: यह पद्धति ज्ञातव्य है।

प्रश्न पूछने की रीति (नष्ट जातक)

पश्नार्थी फलहेमपाणिरथवा कार्तान्तिकस्यान्तिकं
प्रष्टागत्य नवघ्नभास्करमितात्संख्यामभीष्टां वदेत्।
तामेव ध्रुवकं प्रकल्प्य सकलं त्रैकालिकं दैवविद्
ब्रूयादिष्टमनिष्टमत्र तु गुरोः पादं शरण्यं भवेत्॥२॥

प्रश्नकर्त्ता ज्योतिषी के पास फल तथा दक्षिणा लेकर उपस्थित हो और ज्योतिषी द्वारा पूछे जाने पर १ से १०८ के बीच में कोई अंक कहे। जो अंक वह पृच्छक कहे उसे ध्रुवांक अथवा आधार मान कर भूत, वर्तमान तथा भविष्यत् सबका वृत्तान्त कहे। ज्योतिषी अपने गुरु को नमस्कार करके शुभ अथवा अशुभ कहे।

ध्रुवांक से प्रश्न लग्न व नवांश का ज्ञान—

पूर्वोक्ताद्ध्रुवकात् खगैः परिहृताल्लब्धं क्रियाद्यातभं
तच्छेषस्त्वथ वर्तमानभवने स्युस्तन्नवांशाः क्रमात् ।
तत्कालग्रहचक्रभाववशतः प्रष्टुः शुभं वाऽशुभं
प्राग्वत्खेचरभावकारकगणाद्वीर्याधिकात्संवदेत् ॥३॥

पृच्छक से बोला हुआ ध्रुवांक ९ से विभक्त करो, जो फल हो वह मेष से लेकर उन राशियों की संख्या होगी जो प्रश्न समय पर लग्न से पहले बीत चुकी है और शेष वे नवांश होंगे जो प्रश्न लग्न में व्यतीत हो चुके हैं । कुण्डली के भावों तथा ग्रहों के स्पष्ट करन के अनंतर पूववत् शुभ अथवा अशुभ फल को भावेश ग्रह, भाव तथा भाव के कारक के बल को देखकर कहे ।

मान लीजिये कि कोई प्रश्नकर्त्ता (पृच्छक) १४-९-१९७० को ज्योतिषी के पास अम्बाला में आकर अपना नष्ट जातक बनवाने के लिए प्रातः सवा आठ बजे प्रश्न करता है और ज्योतिषी के पूछने पर १०७ की संख्या को कहता है। उक्त नियमानुसार यह १०७ का अंक ध्रुवांक (आधार) माना जायेगा। १०७ को ९ पर विभक्त करने पर फल ११ तथा शेष ८ रहे। अतः प्रश्न लग्न मीन होगी जिससे पूर्व ११ राशियां कुम्भ तक बीत चुकी हैं और मीन लग्न में ८ नवांश भी व्यतीत हुए समझे जायेंगे ।

पहले बता चुके हैं कि जिस व्यक्ति को जन्म पत्री न हो तब उसका फल कथन प्रश्न लग्न के आधार पर तैयार की गई नष्ट जन्म पत्री से किया जाएगा। एतदर्थं ध्रुवांक से प्रश्न लग्न व नवांश का साधन बताया गया है। यह लग्न व नवांश नष्ट जन्म पत्र रचना में उपकरण के रूप में काम आएगा ।

जन्म कालीन बृहस्पति का ज्ञान—

तात्प्रष्ट्रार्पितहेमपुष्पधनजा सख्या ध्रुवघ्नार्कहृ-
त्तच्छेषोन्मितभे स्थितिः सुरगुरोः स्यात्प्रष्टुजन्मन्यथ ।
तच्चारात्तु वयोनुमानभगणान् सञ्चिन्त्य वर्षं पुन-
र्जन्मार्याशमुखाच्च मासकदिनाद्यर्काच्च मासादयः ॥४॥

पृच्छक ने फूल, नोट तथा सिक्के आदि जितनी संख्या में दिये हों उनको ध्रुवांक से गुणा करो और फल को १२ पर विभक्त करो। जो शेष रहे, मेष से गिनकर उतनी राशि में पृच्छक के जन्म के समय बृहस्पति की स्थिति होगी। गुरु की चाल से तथा आयु के अनुमान से गुरु के गत भगणों (१२ राशियों में से गुजरने का समय) का विचार करके वर्ष का निर्णय करें। प्रश्न के समय गुरु ने राशि में जितने अंशादि चले हैं उनसे मासादि को जानें जोकि गत जन्म-दिन से बीत चुके हैं। इस प्रकार कुल समय को प्रश्न-समय सूर्य के स्पष्ट से घटाने से जन्म का वर्ष मास आदि निकल आयेगा।

मान लीजिये पृच्छक ने गुलाब के दो फूल, पाँच का नोट और ५० पैसे का एक सिक्का भेंट रूप में अर्पण किया। अतः भेंट की कुल संख्या २+१+१=४ हुई। अतः १०७ को ४ से गुणा किया। उत्तर ४२८ को १२ पर विभक्त किया तो उत्तर ३५ भगण (बारह-बारह राशियों का समूह) हुआ। शेष ८ वचे। अतः जन्म समय बृहस्पति, वृश्चिक राशि में था—ऐसा माना जायेगा। अव मान लीजिये कि पृच्छक की आयु लगभग ४५ वर्ष है। ४५ वर्ष की आयु यदि समझी जाये तो जन्म वर्ष १९२५ के लगभग होगा। पंचांग देखने पर पता चला कि बृहस्पति अक्टूबर १९२३ में वृश्चिक राशि में प्रविष्ट हुआ था। अतः जन्म अक्टूबर १९२३ के बाद का समझा जायेगा। अब प्रश्न के समय अर्थात् १४-९-१९७० को प्रातः सवा आठ बजे बृहस्पति का स्पष्ट ६-११-२०-१६ था। प्रश्न-समय गुरु के गत अंश ११°-२०′-१६″ का अर्थ यह है कि यदि वर्ष में ३६५.२५६३६ दिन हों तो जन्म दिन से १३८ दिन ५७ मिनिट १८ सेकिण्ड व्यतीत हो चुके हैं। अतः १४-९-१९७० से १३८ दिन ५७ मिनिट ८१ सेकिण्ड पीछे जाने पर २९ अप्रैल १९७० की प्रातः ७ बजकर १७ मिनिट ४२ सेकिण्ड का समय जन्म का समय बनता है जिस पर कुण्डली बनाई जा सकती है।

मासो वारघटीमुखं भवति तत्सौराच्च मासादिदं
चैव जन्म भवाब्दमासदिनतोऽपि स्युस्ततो जातकम्।
इत्थं चोदितनष्टजातकमिदं स्वल्पं रहस्यं भवे-
देवं जातकपद्धतिर्विरचिता ह्येषास्तिकानां मुदे ॥५॥

पूर्वोक्त प्रकार से ज्ञात मास, वार, घड़ी आदि सौरमान से समझनी चाहिएं। इससे गणना करके सौरमान को चान्द्रमान में परिवर्तित करके जन्मकालिक चान्द्र वर्ष, मासादि भी जान जा सकते हैं। इस प्रकार जन्म वर्ष, मास, दिन, समय आदि जान लेने पर सरलता से जातकोक्त पद्धति द्वारा जन्मपत्री का निर्माण कर लिया जाएगा।

इस प्रकार संक्षेप से नष्ट जातक के सम्बन्ध में रहस्य कहा। इस प्रकार यह नष्ट जातक को विधि आस्तिकों के विनोदार्थ कही है।[1]

ध्रुवांक से मूक प्रश्न विचार—

पूर्वोक्तं ध्रुवकं करघ्नगुणहच्छेषेऽसमे जीवयु-
ग्युग्मे धातुरितीह मूलमुदितं चेच्छून्यशेषे भवेत्।
मेषे पादयुगं वृषे तु पशवः स्याद्गर्भचिन्ता युगे
राशौ कर्कटके भवेद्व्यवहृतिः स्याद्राजचिन्ता हरौ ॥६॥

पूर्वोक्त ध्रुवांक को २ से गुणा करो और ३ से विभक्त करो। यदि शेष एक बचे तो प्रश्न किसी जीव के सम्बन्ध में होगा। यदि शेष दो हो तो प्रश्न किसी धातु के सम्बन्ध में होगा। यदि शेष शून्य हो तो प्रश्न किसी वृक्ष आदि "मूल" के सम्बन्ध में है। जब प्रश्न लग्न मेष हो तो प्रश्न द्विपद अर्थात् मनुष्यों सम्बन्धी है। यदि प्रश्न लग्न वृषभ हो तो प्रश्न चतुष्पद अर्थात् पशुओं के सम्बन्ध में है। प्रश्न लग्न यदि मिथुन हो तो गर्भ सम्बन्धी प्रश्न है। यदि प्रश्न लग्न कर्क हो तो कानूनी झगड़े के सम्बन्ध में प्रश्न है। यदि लग्न सिंह हो तो प्रश्न राज्य से सम्बन्धित है।

कन्यायां तु परांगना घटगृहे वाणिज्यकं वृश्चिके
लग्ने दुष्टभयं धनुष्यपि धनं नष्टं कलिर्नक्रभे।
कुम्भे कर्मसु चिन्तन त्थानिमिषे स्थानस्य चिन्ता भवे-
देवं वीर्ययुताद्गृहान्नवलवात्प्रोचुर्जटाधारिणः ॥७॥

यदि प्रश्न लग्न कन्या निकले तो प्रश्न भार्यातिरिक्त किसी स्त्री सम्बन्धी है, यदि प्रश्न लग्न तुला हो तो व्यापार सम्बन्धी प्रश्न है, यदि

१. नष्ट जन्मपत्री बनाने के लिए विस्तृत अध्ययन हेतु—नष्ट जातकम्।

वृश्चिक हो तो दुष्ट मनुष्यों से भय का प्रश्न है, यदि लग्न धनु हो तो नष्ट हुए धन का प्रश्न है, यदि लग्न मकर हो तो कोई झगड़े का विषय प्रश्न से सम्बन्धित होगा, यदि लग्न कुम्भ हो तो कर्म के चिन्तन का प्रश्न होगा और यदि लग्न मीन हो तो स्थान अथवा पदवी का प्रश्न होगा। इस प्रकार लग्न अथवा उसका नवांश जो अधिक बली हो, उससे फल कहना चाहिए।

स्वर्क्षेऽर्के नृपराज्यचिन्तनमथो चन्द्रे तटाकादयो
भौमे वह्निनृपारिभीर्विधुसुते वाणिज्यकृष्यादयः।
जीवे मित्रनृपादयो भृगुसुते सौख्याधिकं त्वर्कजे
संस्थे मानुषचिन्तनं स्थिरधनं स्वर्क्षे ततोंऽशादपि ॥८॥

प्रश्न के समय सूर्य यदि अपनी राशि अथवा अपने नवांश में स्थित हो (जो दोनों में से अधिक बली हो) तो प्रश्न राजा तथा राज्य से सम्बन्धित होगा। यदि चन्द्र इस प्रकार की स्थिति में हो तो तालाब आदि से सम्बन्धित होगा। यदि मंगल इस प्रकार की स्थिति में हो तो प्रश्न अग्नि, राजा अथवा शत्रु के भय से सम्बन्धित होगा। बुध ऐसी स्थिति में प्रश्न को व्यापार तथा कृषि से सम्बन्धित करता है। गुरु ऐसी स्थिति में प्रश्न का सम्बन्ध मित्रों तथा राजा आदि से बतलायेगा। शुक्र ऐसी स्थिति में सुख और खुशी की बात कहेगा। शनि हो तो प्रश्न किसी मनुष्य अथवा स्थिर धन (Immovable Property) से सम्बन्धित होगा।

फल की मात्रा का निश्चय—

एवं स्वोच्चगते खगे द्विगुणितं नीचे तु शून्यं फलं
मित्रर्क्षेऽर्द्धमितं फलं प्रभवति स्याद्भे समे हीनतः।
द्वावुच्चर्क्षगतौ तथा स्वगृहगौ तद्वर्गवीर्याधिकात्
संज्ञाकारकभावयोगजवशात्प्रश्नं वदेद् बुद्धिमान् ॥९॥

यदि ग्रह उच्च हो तो फल दुगना, यदि नीच हो तो फल शून्य, यदि मित्र राशि में हो तो फल आधा, यदि तटस्थ ग्रह (सम ग्रह) की राशि में हो तो फल बहुत थोड़ा, दोनों ग्रह उच्च हों, अथवा दोनों स्वक्षेत्र में हों तो बुद्धिमान् को दोनों में से जो बली हो, लेकर तथा उनके मान तथा कारक का ध्यान कर बली निश्चय कर फल कहना चाहिए।

फल प्राप्ति का समय—

तत्काले खचरे स्वतुङ्गभवने तन्नाडिकाभिर्भवेत्
कार्यं स्वर्क्षगते दिनैरपि सुहृद्भे मासतोऽब्दोऽन्यथा।
कार्यं नेतरथा खलेक्षणयुते लग्ने शनौ तुङ्गगे
चेच्छीघ्रं बलवच्छुभेक्षणयुतौ लग्नेशकार्येश्वरौ ॥१०॥

यदि प्रश्न-कुण्डली में कोई ग्रह उच्च हो तो कार्य-सिद्धि घड़ियों में हो जाएगी, यदि स्वक्षेत्र में हो तो दिनो में, यदि मित्र राशि में हो तो महीनों में, यदि इतर राशियों में हो तो वर्ष लग जाएगा। अन्य राशियों में वह ग्रह पाप युत दृष्ट भी हो तो कार्य होगा। यदि शनि लग्न में उच्च हो अथवा लग्नेश तथा कार्येश बलवान् शुभ ग्रहों से दृष्ट हों तो कार्य शीघ्र हो जाता है।

नवांशों की दिशा का निर्धारण—

खाङ्गाज्यांशलवात्मकं कुवलयं तद् द्वादशारं भवेत्
तत्र स्युर्नवमांशका वसुवियच्चन्द्रा स्थिरा कुण्डली।
तद्दिक्षु द्वितयं विदिक्षु च भवेदेकैकक मेषतः
प्रागाद्याः क्रमतः खगान् गणितजात्राश्यंशजान् संलिखेत् ॥११॥

क्षितिज का तल (Horizon) ३६० अंशों का होता है और उस में प्रति ३० अंश पर एक आरा (Spoke)है। इन द्वादश आरों में १०८ नवांश आते हैं। मेष से आरम्भ करके दो-दो चर तथा स्थिर राशियों के चार जोड़े क्रमशः पूर्व आदि दिशा के परिचायक हैं। जैसे, मेष तथा वृषभ पूर्व के, कर्क तथा सिंह दक्षिण के, तुला तथा वृश्चिक पश्चिम के, मकर तथा कुम्भ उत्तर के। चार द्विस्वभाव राशियाँ क्रमशः दक्षिण-पूर्व, दक्षिण-पश्चिम, पश्चिमोत्तर तथा पूर्वोत्तर की परिचायक हैं। प्रश्न के समय के ग्रहों को नवांश सहित उक्त राशियों में ज्योतिषी को लिखना चाहिए।

आरुढ़ लग्न से प्रश्न निर्णय—

यौ वै पुष्पफलादिपाणिलसितौ मर्त्योऽपि यस्मिन् गृहे
तिष्ठन् पृच्छति तद्गृहे त्वभिहितं कोष्ठं दिगारूढकम्।
तस्मात्खेचरदृष्टियोगवशतः प्रश्ने शुभं वाऽशुभं
प्रश्नेष्वप्यखिलेषु कार्यपतनुस्थानेश्वराभ्यां वदेत् ॥१२॥

फूल-फलादि को स्पष्ट रूप से हाथ में लेकर जब कोई मनुष्य ज्योतिषी के पास आता है तो उस स्थान की दिशा निश्चित करे तथा पूर्वोक्त दिशा कुण्डली में उस स्थान को आरूढ़ लग्न समझे। आरूढ़ लग्न के स्वामी, तथा कार्येश को तथा उन ग्रहों को जो इन से युत हों अथवा इन पर दृष्टि डालते हों, ध्यान में रखकर शुभ-अशुभ फल को कहे।

आरूढ़ लग्न से प्रश्न के फल का कथन करना दक्षिण भारतीय विद्वानों की विशेषता है। आरूढ़ क्या है। इसका शब्दार्थ है चढ़ना, स्थिर होना। पहले श्लोक में राशियों की दिशाओं में स्थापना बताई गई है जो इस प्रकार है—

॥ आरूढ़ लग्न चक्र ॥

ईशान कोण		पूर्व दिशा			अग्नि कोण
	मीन	मेष	वृष	मिथुन	
	कुम्भ			कर्क	
उत्तर दिशा		ज्योतिषी			दक्षिण दिशा
	मकर			सिंह	
	धनु	वृश्चिक	तुला	कन्या	
वायव्य कोण		पश्चिम दिशा			नैऋत्य कोण

दक्षिण भारत में कुण्डली लिखने का जो प्रकार है वही प्रकार व राशियों की स्थिति सर्वत्र आरूढ़ लग्न के निर्णय में काम में आएगी। दैवज्ञ के पास प्रश्नकर्ता आकर जिस दिशा में बैठे या खड़ा हो और प्रश्न करे, उसी दिशा की राशि को 'आरूढ़ लग्न' माना जाएगा। इसके आधार पर भी प्रश्न लग्न की तरह फलादेश किया जाता है।

अब आरूढ़ लग्न कुण्डली बनाकर उस आरूढ़ लग्न से प्रश्न के विषय से सम्बन्धित भाव (आरूढ़ लग्न) के स्वामी अर्थात् कार्येश के

सम्बन्धानुसार जातक पद्धति से फलादेश करना चाहिए। जैसे—पुत्र का प्रश्न होने पर आरूढ़ लग्न से पंचमेश, स्त्री प्रश्न में सप्तमेश ही कार्येश होगा। इसी प्रकार सर्वत्र समझना चाहिए।

अब कभी प्रश्नकर्ता दो राशियों के स्थान विभाग के बीच में बैठा हो अर्थात् कभी स्पष्ट रूप से न तो ईशान में और न ही पूर्व के वाम भाग में बैठा हो तो लग्न मीन माने या मेष ? इस विसंगति को दूर करने के लिए दक्षिण भारतीय दैवज्ञों में यह विधि प्रचलित है। सुवर्णादि धातु निर्मित पट्टिका पर भूमि चक्र लिखवाकर रखते हैं। ऐसी शंका होने पर उस धातु निर्मित भूमिचक्र का गन्धोपचारादि से पूजन कर प्रश्नकर्त्ता से उस चक्र का स्पर्श करवाते हैं। तब जिस राशि को प्रश्नकर्त्ता स्पर्श करे, वही आरूढ़ लग्न मानी जाएगी।

आरूढ़ लग्न को स्पष्ट करने का प्रकार भी है। प्रश्न लग्न अर्थात् आकाश चक्र में प्रश्न समय उदित राशि के गतांशादि को (राशि रहित) आरूढ़ लग्न की पूर्वोक्त पद्धति से ज्ञात राशि के समक्ष रखने से आरूढ़ लग्न स्पष्ट हो जाता है। कल्पना कीजिए, प्रश्न लग्न मार्च मास में प्रातः काल मेष लग्न में किया गया। मेष लग्न स्पष्ट इस प्रकार है—००।१२।१४।४८ स्पष्ट प्रश्न लग्न आरूढ़ लग्न की राशि वृश्चिक है। तो वृश्चिक राशि के सामने प्रश्न लग्न के अंशादि स्थापित कर लेने पर स्पष्ट आरूढ़ लग्न होगा—७. १२. १४. ४८ स्पष्ट आरूढ़ लग्न।

दोनों लग्नों व इनके नवांशों से फल कहना चाहिए।

प्रश्नकालिक चन्द्रलग्न साधन—

अङ्कघ्ना नखभाजिताश्च घटिकाः सूर्योदयात्प्राश्निके
तल्लब्धं भघटीमुखं स्फुटविधुः प्रश्नोपयोगी भवेत्।
पञ्चाङ्गस्थविधुस्फुटश्च भघटी वक्त्रस्तु संज्ञातयो
स्थूलः सूक्ष्म इतीरिता तदुभयोर्ग्राह्यं नवांशादिकम्॥ १३॥

प्रश्न-लग्न के दिन सूर्योदय से लेकर प्रश्न काल तक जितनी घड़ियां बीती हों, उनको ९ से गुणा कर २० से भाग दें। जो उत्तर हो उन घड़ियों में प्रश्न-समय चन्द्र की स्थूल स्थिति होगी, जो कि प्रश्नोपयोगी है। पंचांग में दी गई चन्द्र की प्रश्न-समय की स्थिति सूक्ष्म कहलाती है। दोनों के नवांश भी निकालने चाहियें।

स्थूल व सूक्ष्म चन्द्र से प्रश्न का फल—

स्थूलेन्दौ त्वपरेन्दुसौम्यगुरुदृष्टे जीवचिन्ता भवे-
द्धातुभूमिजसंहिकेयरविजैर्मूलं सितार्केक्षिते ।
मिश्रं जीवसितागुभिस्त्वथ पुनश्चेद द्वय्यं घ्रिचिन्ता तुला-
कन्यायुग्मनवांशकेऽङ्घ्रिबहुलं कर्कालिमीनांशके ॥ १४ ॥
चापांशे च घटांशके चरणहीना मेषसिंहांशके
नक्रोक्षांशगते चतुष्पद इह स्थूलेन्दुनन्दांशकात् ।
द्रेक्काणत्रितये क्रमात्प्रतिगृहे बाला तथा यौवना
वृद्धा चेति वदन्ति पूर्वमुनयोऽवस्थात्रयं प्राश्निके ॥ १५ ॥

यदि स्थूल चन्द्र को सूक्ष्म चन्द्र तथा बुध और गुरु देखते हों, तो प्रश्न जीव सम्बन्धी होगा। यदि मंगल, राहु, शनि देखें तो धातु सम्बन्धी और यदि सूर्य और शुक्र देखें तो -'मूल' (Vegitable) सम्बन्धी होता है। जब स्थूल चन्द्र को गुरु, शुक्र, तथा राहु देखें तो प्रश्न मिश्रित वस्तु के सम्बन्ध में होता है। यदि स्थूल चन्द्र तुला, कन्या अथवा मिथुन नवांश में हो तो प्रश्न जीव सम्बन्धी, यदि कर्क वृश्चिक अथवा मीन का नवांश हो तो बहुत पांव वाले जीव सम्बन्धी, यदि धनु अथवा कुम्भ नवांश में हो तो किसी पादहीन जीव सम्बन्धी, यदि मेष, सिंह, मकर अथवा वृषभ नवांश हो तो प्रश्न चतुष्पद सम्बन्धी होता है। पुरातन मुनियों का कथन है कि ग्रहों की बाल, यौवन अथवा वृद्धावस्था ग्रह की क्रमशः प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय द्रेक्काण से समझनी चाहिए।

खोई वस्तु की दिशा का निर्णय—

मेषादेश्चरभं स्थिरं द्वितनुभं गर्भाह्वयाः स्युश्चराः
द्वारा स्युः स्थिरराशयो द्वितगुना बाह्याः क्रमाद्राशयः ।
गर्भद्वारभयोस्ततस्त्वितरभे स्थाद्दक्षिणे वामके
हस्ते वस्तु विनिर्दिशेन्मुहुरिति स्यान्मुष्टिचिन्ताविधौ ॥ १६ ॥

मेषादि राशियां चर, स्थिर, द्विस्वभाव इस क्रम से होती हैं। चर राशियों को "गर्भ", स्थिर राशियों को "द्वार" और द्विस्वभाव राशियों को "बाह्य" राशियाँ भी कहते हैं। गर्भ तथा द्वार राशियों से जतलाई हुई वस्तु दाहिने हाथ में, तथा बाह्य से जतलाई हुई वस्तु बाएं हाथ में कहें। इस प्रकार मुष्टिगत वस्तु के हाथ का निर्णय करना चाहिये।

मुष्टि प्रश्न का निर्णय —

एवं मुष्टिगतस्य वस्तुन इह स्यादध्रस्वदीर्घादिकं
राशेर्मानवशाद्भवेयुरथ तद्रूपादयस्त्वंशतः।
राशिस्थग्रहसौम्यपापवशतस्तत्सौम्यपापत्वके
भूम्याकाशजलादिषु प्रसरणं तद्धातुकत्वादिकम् ॥ १७ ॥

मुष्टिगत वस्तु की लम्बाई अथवा छोटाई विचाराधीन राशि के मान के अनुरूप कहनी चाहिए और मुष्टिगत वस्तु का रूप आदि नवांश राशि से, वस्तु का शुभ अथवा अशभ होना राशि में स्थित ग्रहों के शुभ अथवा अशुभ होने से ज्ञात करें। इसी विधि से इस बात का भी निश्चय करें कि उस वस्तु का प्रसारण (गमन) भूमि आकाश, जल, वन किस में होता है तथा वह किस धातु की है।

कार्य कब तक सिद्ध होगा ?—

पूर्वोक्तं ध्रुवमक्षहृत्कुनयनाग्न्यब्ध्यक्षशेषे क्रमा
न्नाडीवासरघस्रमासशरदस्तल्लब्धयुकपञ्चधा।
स्थाप्योऽसौ ध्रुवकः खतर्कखगुणाऽवार्काभ्रषड्भिर्हृत
स्तत्तत्प्रस्तुतकावधिर्भवति तत्सर्वेषु कार्येष्वपि ॥ १८ ॥

पूर्व में कहे हुए ध्रुवाङ्क को पाँच ५ पर विभक्त करो। यदि शेष १, २, ३, ४, ० हो तो क्रमशः पूछा हुआ कार्य उतनी घड़ियों, तिथियों, दिनों, महीनों अथवा वर्षों के अन्दर होगा।

ऊपर पाँच से विभक्त करने पर जो उत्तर आया था, उसको ध्रुवांक

में जोड़ो और फल को क्रमशः ६०, ३०, ७, १२ तथा ६० पर पृथक्-पृथक् विभक्त करो। जो शेष बचें वह क्रमशः घड़ियाँ, तिथि, वार, मास, व वर्ष आदि होंगी जो उस कार्य को पूर्ण होने में लगेंगी। यह विधि प्रत्येक प्रकार के प्रश्न में उपयोग में लानी चाहिए।

लग्नेश-कार्येश सम्बन्ध व सर्वप्रश्न समाधान—

प्राग्वल्लग्नपकार्यपौ शुभखगौ सुस्थानगौ चेन्मिथो
दृष्टौ तौ तु कयाचिदर्कलवतो दृष्ट्याधिकारत्रयात् ।
भावं भावपतिं च कारकमपोह्यालोच्य तत्तादृशं
पूर्वोक्तावधितः फलं तु कथयेद्वा मध्यवर्तीवशात् ॥ १९ ॥

यदि लग्नेश तथा कार्येश शुभ ग्रह हों, शुभ भावों में स्थित हों, परस्पर देखते हों, और दृष्टि १२ अंश के भीतर हो, तो ज्योतिषी कार्य की सफलता को कहे। सफलता की मात्रा दोनों ग्रहों के बल तथा शुभता के अनुसार इस का ध्यान रखकर कहे कि दृष्टि उत्तम, मध्यम अथवा कनिष्ठ दर्जे की है (देखिये श्लोक ३३ खण्ड ४)। कारक ग्रह के बल का भी साथ-साथ विचार करके फल कहना चाहिए। और यदि उपरोक्त दो ग्रहों अर्थात् लग्नेश कार्येश में १२ के भीतर वाली दृष्टि हो और उन दो के बीच में कोई तीसरा ग्रह विद्यमान हो तो उस तीसरे ग्रह के प्रकृति, कारकत्व आदि देखकर उसी से फल कहना चाहिए। कार्य की अवधि श्लोक १८ के अनुसार कहनी चाहिए।

लग्नेश व कार्येश के सम्बन्ध से प्रश्न विचार के सिद्धान्त का विस्तार हमें ताजिक शास्त्र में देखने को मिलता है। लग्नेश कार्येश के इत्थशाल, मुंथशिल व कम्बूल योगों के आधार पर प्रश्न के फल का निर्णय वहाँ मुख्यता से किया जाता है। इस विषय के विस्तृत अध्ययन के लिए ताजिक ग्रन्थों का अध्ययन करें।

प्रकीर्ण खण्ड : विविध फल

: ८ : गर्भाधान कब करें : चन्द्र की स्थिति के फल : अमृत घटी का फल: दत्तकपुत्र : निमन्त्रण पत्र : विविध फल : कौन-सा कार्य कब करें :

गर्भाधान का उचित समय —

गर्भाधानमतीव पुत्रशुभदं ब्रह्मेन्दुपूर्वत्रये
रौद्रत्रीणि करादिपञ्चकहरित्रीण्युत्तराख्यत्रये ।
भद्रापूर्णजयासु शोभनगृहेऽप्यष्टम्यमापूर्णिमा
हित्वार्येन्दुजयोर्भृगोः शशिदिने स्याल्लग्नशुद्धौ तथा ।। १ ।।

यदि गर्भाधान रोहिणी, मृगशिर, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वाभाद्रपद, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, चित्रा, स्वाति, विशाखा, अनुराधा, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद नक्षत्रों में, द्वितीया, सप्तमी, द्वादशी, पञ्चमी, दशमी, तृतीया, त्रयोदशी तिथियों में, गुरु, बुध, शुक्र अथवा सोमवार में, और शुभ लग्न में, जो पाप प्रभाव से रहित हो, किया जाये तो बहुत शुभप्रद तथा पुत्रदायक सिद्ध होता है ।

स्त्रीपुंसोः प्रथमो निषेक उदितः सम्भोग आद्यार्तवे
गर्भाधानमिति ब्रुवन्ति विबुधास्तन्मासि मास्येव हि ।
हस्तस्वात्यनुराधमूलवरुणश्रीशप्रजेशोत्तरा-
स्वन्त्ये चैव निषेक उत्तम इति प्राग्वच्च शुद्धादिकम् ।। २ ।।

स्त्री जब विवाह के बाद पहली बार ऋतुमती हो तो उसके अनन्तर होने वाला स्त्री-पुरुष का संभोग 'निषेक' कहलाता है । उसके बाद होने वाले मासिक धर्मों के अनन्तर किया हुआ संभोग 'गर्भाधान' कहलाता है । चन्द्र जब हस्त, स्वाति, अनुराधा, मूला, शतभिषा, श्रवण, रोहिणी, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद अथवा रेवती नक्षत्र में हो और लग्न पूर्ववत् शुद्ध हो तो उस समय किया हुआ निषेक बहुत शुभ होता है ।

कैसी स्त्री से विवाह शुभ होगा—

या नारी सुतनुः कुचोन्नतयुताप्याषोडशाब्दं रजो
दृष्टं नो यदि शोभने च दिवसे तां सन्निवेश्यादरात् ।
रम्ये चास्तरणे सिताम्बरयुतां स्वर्णादिभिर्भूषितां
पंनीरादिमिलत्कुङ्कुमरजोलिप्ताङ्गजातालयाम् ।। ३ ।।

कृत्वा पुष्पवतीमिव त्रिदिवसं नीत्वा चतुर्थे दिने
स्नातां तां वरयेत्पतिः शुभगृहे शुद्धे सुते पूर्ववत् ।
एवं चेदचिरात्सतीनमुखकृत्स्यात्पुष्पिणी पुत्रिणी
सम्भोगाखिलदैवपैतृकमहाकर्मार्हितां सा त्वियात् ।। ४ ।।

यदि कोई नारी आयु के १६वें वर्ष में होती हुई तथा उन्नत कुचों वाली भी, यदि रजोधर्म से युक्त न हो तो किसी शुभ दिन उसे आदर-पूर्वक एक अतीव सुन्दर आसन पर, श्वेत कपड़ों तथा स्वर्ण आदि भूषणों से सुसज्जित कर और उसके शुक्र स्थल को कुङ्कुम तथा गुलाब के पानी तथा अन्य सुगन्धित इतर आदि से गीला करके तथा तीन दिन तक यह समझकर कि वह वास्तव में ही रजोधर्म से युक्त है उसको चतुर्थ दिन स्नान करवाया जावे और पांचवें दिन शुद्ध तथा शुभ लग्न में उसका पति उसके पास जावे। ऐसा करने से तुरन्त उसे रजोदर्शन होगा और वह स्त्री अपने पति के लिए एक अच्छी सहधर्मिणी सिद्ध होगी। वह संभोग के योग्य हो जावेगी तथा पति के साथ सब धर्म कृत्यों (देव तथा पितृ अर्चन आदि) के करने की अधिकारिणी हो जाएगी।

जन्म नक्षत्र का विशेष फल—

सार्पे तत्पितृभे भवेद्यदि जनिः सम्प्रोच्यते तत्फलं
भौजङ्गे धनसोदराम्बजनकारिष्टं तदन्ते शिशोः ।
रुद्रे कालमथान्तकं च विधिवन्मृत्युं समभ्यर्चये-
देकद्वित्रिचतुष्पदेषु पितृभे व्यस्तं समस्तं भवेत् ।। ५ ।।

यदि जन्म-समय चन्द्र आश्लेषा अथवा मेघा नक्षत्र में हो तो उस का फल इस प्रकार है कि यदि आश्लेषा के प्रथम चरण में हो तो धन का नाश, द्वितीय चरण में भाई का नाश, तृतीय में माता की मृत्यु, चतुर्थ चरण में पिता की मृत्यु कहनी चाहिए। यदि जन्म आश्लेषा नक्षत्र के बिलकुल अन्त में हो तो स्वयं जातक की मृत्यु होती है। उपरोक्त दोष की निवृत्ति के अर्थ रुद्र, काल, अन्तक तथा मृत्यु की क्रमशः विधिवत् पूजा की जावे। यदि जन्म मघा के प्रथम चरण में हो तो पिता की मृत्यु, द्वितीय में हो तो माता की मृत्यु, तृतीय में हो तो भ्राता की मृत्यु और चतुर्थ में हो तो धन का नाश कहना चाहिए।

तद्वच्चक्रसुरद्विषोः फलमिदं पूषाश्विनोरप्यथो
युग्मेषु त्रिषु चान्तिमादिमघटी गण्डान्तरालाभिधा।
तत्र स्याद्यदि जन्मकालसदनं गच्छेच्छिशुः सत्वरं
नो चेत्स्यादसमानवीर्यनृपतिर्निः शेषभूपालकः ॥ ६ ॥

यदि चन्द्र ज्येष्ठा तथा मूला में अथवा रेवती तथा अश्विनी में हो तो भी चन्द्र की चरण स्थिति का फल आश्लेषा, मघा के उपरोक्त फलानुसार कहना चाहिए। ऊपर कहे ग्रहों के तीन जोड़ों (Pairs) में आश्लेषा, ज्येष्ठा, तथा रेवती का अन्तिम अंश तथा मघा, मूला तथा अश्विनी का आदि अंश 'गण्डान्तराल' कहलाता है। वह काल यदि जन्मकाल हो अर्थात् चन्द्र की स्थिति अथवा लग्न की स्थिति वहां हो तो जातक शिशु की शीघ्र मृत्यु हो जाएगी और यदि वह बच जाता है तो विशेष बल युक्त राजा अथवा राजाधिराज होता है।

श्लोक संख्या ५ तथा ६ में 'गण्डान्तराल' का उल्लेख है। आश्लेषा नक्षत्र के अन्त में जहां आश्लेषा नक्षत्र समाप्त है वहां साथ ही साथ कर्क राशि भी समाप्त हो जाती है। ज्येष्ठा नक्षत्र की समाप्ति न केवल इस नक्षत्र की समाप्ति है अपितु वृश्चिक राशि का भी अन्तिम भाग है। इसी प्रकार रेवती नक्षत्र का अन्त मीन राशि का भी अन्त है। अतः यह स्पष्ट हो जाता है कि आश्लेषा का अन्तिम भाग तथा मघा का आदि भाग, ज्येष्ठा का अन्तिम भाग और मूला का आदि भाग रेवती का अन्तिम भाग और अश्विनी का आदि भाग यह उस बिन्दु के समीपवर्ती स्थान हैं जहां न एक राशि है न दूसरी, न एक नक्षत्र है न दूसरा। यह बिन्दु राशि का भी मोड़ है और नक्षत्र का भी, और मोड़ सदा सर्वदा भयानक होते हैं। सब दुर्घटनायें प्रायः सड़कों के मोड़ों पर

होती हैं। बचपन से जब युवा अवस्था का मोड़ आता है तो उस समय भी सभलना कठिन हो जाता है। पराधीनता और स्वाधीनता के बीच का सन्धिकाल भी भयावह होता है जैसा कि१९४७ में भारत और पाकिस्तान के लिए हुआ। ऋतुओं की सन्धियां भी स्वास्थ्य को प्रायः बिगाड़ती हैं। 'ऋतुसन्धिषु व्याधय: जायन्ते' यह आयुर्वेद का सिद्धान्त है। यही कारण है कि जब लग्न और चन्द्र आदि शरीर द्योतक तत्त्व उपरोक्त सन्धिगत हों तो शरीर नाश का कारण बनते हैं। संसार के सभी कामों के लिए सन्धिगत काल जिसे 'गण्डान्तराल' भी कहते हैं बुरा माना है।

गण्ड नक्षत्रों में रजस्वला होने पर—

गण्डान्ते च रजस्वला यदि भवेद्वैधव्यमाप्नोत्यरं
सापत्यार्थसुखाम्बरैर्विरहिता पित्रोः कुलघ्नी खला।
कल्पोक्त्या जपहोमखेचरमखाद्भूदेवदेवार्चना-
च्छान्ति यात्यचिरात्समस्तसुखकृत्सौभाग्यपुत्रान्विता ॥ ७ ॥

गण्डान्त में यदि कोई स्त्री राजस्वला हो तो शीघ्र ही विधवा हो जाती है। ऐसी स्त्री सन्तान, धन, सुख, वस्त्र आदि से रहित, कुल का नाश करने वाली दुष्टा होती है। शास्त्रोक्त विधि से जप, होम आदि से यदि देवताओं, ब्राह्मणों तथा ग्रहों की पूजा की जाए तो विपत्तियों की शान्ति होकर सुख सौभाग्य तथा सन्तान की प्राप्ति होती है।

त्याज्योत्पन्नघटी चतुष्टयफलं वक्ष्ये रजोजन्मनो-
स्तातघ्नं जननीहरं धनहरं चात्मक्षयं यच्छति।
रुद्रं चान्तकमग्निहोत्रमथ तं मृत्युं च सम्पूजयेत्
सूर्येन्दुग्रहणोद्भवो यदि पितुर्मातुर्विनाशं क्रमात् ॥ ८ ॥

यदि किसी स्त्री का जन्म अथवा उसको रजोदर्शन त्याज्य काल की चार घड़ियों में हो तो त्याज्य काल की प्रथम, द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ घड़ी में जन्म से क्रमशः पिता की मृत्यु, माता की मृत्यु, धन का नाश तथा स्वयं का नाश होता है। इस अशुभता के निवारणार्थ मनुष्य को चाहिए कि वह क्रमशः (१) रुद्र भगवान् की पूजा, (२) यम की पूजा,

(३) अग्निदेव की पूजा (होम), (४) मृत्यु देव की पूजा करे। जब जन्म अथवा रजोदर्शन सूर्य ग्रहण अथवा चन्द्र ग्रहण के समय हो तो क्रमशः पिता तथा माता की मृत्यु होती है।

दवा बनाने व खाने का श्रेष्ठ समय—

शस्तं चामृतनाडिकासु रचितं दिव्यौषधं प्राशितं
तत्पीयूषसमं ज्वरामयहरं दोषत्रयघ्नं तदा।
आरोग्यपदमिन्द्रियस्फुटकरं चायुःप्रदं भेषजं
कार्यं तद्बहुधा जगाद भगवान्धन्वन्तरिश्चाब्धिजः ॥ ९ ॥

जो औषधि चन्द्र के किसी नक्षत्र में अमृत नाडियों में स्थिति के समय बनाई जाए अथवा खाई जाए वह अमृत की भांति प्रभाव करती हुई रोग को बिलकुल शान्त कर देगी। इस औषधि से कफ, पित्त, वात के समस्त दोष दूर हो जाएंगे। यह औषधि पूर्ण स्वास्थ्यप्रद, पुष्टि-दायक तथा आयु प्रदान करने वाली सिद्ध होगी। यह भगवान धन्वन्तरि का कथन है।

दत्तक पुत्र की आवश्यकता—

आषष्ट्यब्दमपुत्रको यदि तदा तज्जन्मपत्रादिभि-
श्चेदल्पायुरिति स्वजन्मखचरैर्ज्ञाते तदिच्छाब्दके।
आयुष्मन्तमपीह कीर्तितनयप्रज्ञादिवृद्धयन्वितं
ज्ञात्वा सर्वविधैः सुतं शुभदिने प्राह्णे च सौम्यायने ॥ १० ॥

यदि किसी व्यक्ति की आयु ६० वर्ष हो और उसके कोई पुत्र न हो अथवा जन्म पत्र के ग्रहों से यदि ज्ञात हो कि उसकी अल्पायु है तो दत्तक पुत्र को गोद लेने की इच्छा वाला वह किसी आयुष्मान् यशस्वी, तीव्र बुद्धिमान्, वृद्धि युक्त को सब प्रकार से निश्चित कर उत्तरायण में किसी शुभ वार को मध्याह्न से पहले इस कार्य को कर ले।

नाडीकूटमुखार्णवादिविहितं तं स्वीयगोत्रोद्भवं
स्वीकुर्यादनिलादितीज्यविधिमित्रार्कान्त्यभेष्वादिभे।
दैत्यारित्रयभोत्तरासु च खलैर्लग्ने सुते वर्जिते
ताराचन्द्रबलान्विते शुभखगैर्युक्तेक्षिते चोदये ॥ ११ ॥

व्यक्ति तथा दत्तक पुत्र के कूट (योनी नाड़ी आदि) परस्पर मिलने चाहियें, लड़का अपने ही गोत्र का हो। उस समय चन्द्र स्वामी, पुनर्वसु, पुष्य, रोहिणी, अनुराधा, हस्त, रेवती, अश्विनी, श्रवण, धनिष्ठा शतभिषा अथवा उत्तरा भाद्रपद नक्षत्रों में से किसी नक्षत्र में हो, लग्न तथा पञ्चम भाव में कोई पाप ग्रह न हो, उस दिन चन्द्र की राशि तथा नक्षत्र जन्म राशि तथा जन्म नक्षत्र के अनुकूल हो और लग्न शुभ ग्रहों से युक्त अथवा दृष्ट होना चाहिए।

विवाहांग कृत्यों में सौभाग्यवती स्त्रियों का महत्व—

उद्वाहाशिमुखक्रियामदितिभे तिष्ये तथा दस्रभे
मंत्रेऽर्कत्रयवैष्णवत्रययुते पुण्याङ्गनाभिस्तदा।
भृग्वारोज्झितवासरे सुतनवस्थाने च शुद्धे शुभे
लग्ने खेटमखादिकं त्वपि चरेत्तद्गीतवाद्यादिभिः ॥१२॥

धार्मिक स्त्रियों द्वारा विवाह के सम्बन्ध में शुभ कार्यों का प्रारम्भ करना चाहिए। जब चन्द्र पुनर्वसु, पुष्य, अश्विनी, अनुराधा, हस्त, चित्रा, स्वाति, श्रवण, धनिष्ठा अथवा शतभिषा में से किसी नक्षत्र में हो, शुक्र तथा मङ्गल वार को छोड़कर, अन्य वारों में, जब लग्न से पञ्चम तथा नवम भाव शुद्ध हों, और लग्न शुभ हो, उस समय ग्रहों की पूजा होनी चाहिए और वह शुभ प्रारम्भ सङ्गीत, नृत्य आदि द्वारा करना चाहिए।

निमन्त्रण पत्र कब लिखें—

पूर्णन्दोरखलेन्दुजस्य च गुरोः शुक्रस्य वारे तथा
भद्रापूर्णतिथौ जयाह्वयतिथावृक्षे चरे क्षिप्रभे।
लग्ने विद्गुरुशुक्रवीक्षितयुते शुद्धे सुते तल्लिखे-
दाह्वानार्थमिदं मृदूक्तिघटितं मांगल्यपत्रं शुभम् ॥ १३ ॥

शुभ कार्य के सम्बन्ध में निमन्त्रण पत्रों को ऐसे दिन लिखना चाहिये जबकि चन्द्र पूर्ण हो, उस बुधवार को जबकि बुध पाप युति अथवा पाप दृष्टि में न हो अथवा बृहस्पति अथवा शुक्रवार का जब

भद्रा, पूर्णा अथवा जया तिथियों को चन्द्र चर नक्षत्रों स्वाति, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा और शीघ्र गति वाले (क्षिप्र) नक्षत्रों अश्विनी, अथवा हस्त दृष्ट हो, जब पञ्चम भाव शुद्ध हो।

उपरोक्त श्लोक संख्या १३ में 'निमन्त्रण पत्रों' के आरम्भ कार्य का मुहूर्त बतलाया गया है। आप देख रहे हैं कि इसमें एक शर्त यह भी है कि वार बुध हो और ग्रह बुध पाप युति अथवा पाप दृष्टि में न हो। जिस किसी भी कार्य के लिए मुहूर्त का निश्चय करना हो, उस कार्य को जन्म कुण्डली में जो भाव अथवा ग्रह प्रदर्शित करते हैं उनका उस मुहूर्त में बलवान् होना आवश्यक है। यदि पुत्र के विवाह का लग्न मुहूर्त रूप से निकालना है तो वह मुहूर्त ऐसा होना चाहिए जिसमें कुण्डली में सप्तम भाव अधिक शुभ बन जाये। अर्थात् सप्तम भाव पर किसी पापी ग्रह की युति अथवा दृष्टि न हो। बल्कि यह भाव शुभ युक्त शुभ दृष्ट हो। इसी प्रकार सप्तमेश भी होना चाहिए। यही शुभ स्थिति सप्तम कारक शुक्र की भी होनी चाहिए। इसी प्रकार द्वितीय स्थान भी जो कि सप्तम का आयु स्थान है, पाप प्रभाव से शुद्ध होना चाहिए। इसी प्रकार यदि पुत्री का विवाह हो तो अन्य बातों के अतिरिक्त यह देखना मुख्य होगा कि सप्तम भाव तथा सप्तमेश के साथ-साथ द्वितीय भाव तथा द्वितीयेश और सबसे बढ़कर गुरु कहीं पाप प्रभाव में तो नहीं है। गुरु का देखना इसलिए आवश्यक है कि स्त्रियों की कुण्डली में गुरु पति होता है। नव गृह निर्माण में चतुर्थ भाव, चतुर्थेश तथा मङ्गल का बलवान् होना अपेक्षित रहेगा। यदि यात्रा का मुहूर्त देखना हो तो ग्रहों की जो दिशायें नियत हैं (सूर्य = पूर्व, चन्द्र = उत्तर पश्चिम, मंगल = दक्षिण, बुध = उत्तर, बृहस्पति = उत्तर पूर्व, शुक्र = दक्षिण पूर्व, शनि = पश्चिम, राहु = दक्षिण पश्चिम) हो सके तो उस दिशा में उसी वार को यात्रा करें—जैसे सूर्य की दिशा पूर्व है तो पूर्व को रविवार को यात्रा करें। और रवि से विरुद्ध दिशा पश्चिम की ओर रविवार को न जावे। इसी प्रकार मंगलवार को दक्षिण में जाना शुभकर है, परन्तु मंगल अर्थात् दक्षिण के विरोधी उत्तर दिशा के स्वामी अर्थात् बुधवार को दक्षिण में नहीं जाना चाहिए। इसी प्रकार अन्य वारों में दिशा का

मुहूर्त देख लें। विद्या ग्रहण अथवा आरम्भ करने की मुहूर्त में विद्या के वार, बुध, गुरु आदि होने चाहिएं और विद्या तथा मन्त्रणा शक्ति के द्योतक द्वितीय तथा पञ्चम भाव जन्म कुण्डली में पाप प्रभाव से शुद्ध होने चाहियें। कहने का भाव यह है कि इष्ट स्थिति से सम्बन्धित ग्रह आदि को गोचर में बलवान् देखकर ही मुहूर्त के निश्चय करने की विधि है।

पांच-पांच तिथियों का समूह बनाकर उनको नन्दा आदि नाम दिये गये हैं। प्रथमा तिथि को नन्दा, द्वितोया को भद्रा, तृतीया को जया, चतुर्थी को रिक्ता और पंचमी को पूर्णा तिथि कहते हैं। इसी प्रकार अग्रिम पांच तिथियों अर्थात् छठी से दशमी की दशा है। छठी फिर नन्दा सप्तमी भद्रा, अष्टमी जया, नवमी रिक्ता और दशमी पूर्णा तिथि होगी। इसो प्रकार एकादशी को नन्दा, द्वादशो को भद्रा, त्रयोदशी को जया, चतुदशी को रिक्ता औरपचदशी अथवा पूर्णिमा को पूर्णा तिथि कहलाएगी। पूर्णिमा के अनन्तर भी कृष्णपक्ष की प्रथमा नन्दा, द्वितीया भद्रा, तृतोया जया, चतुर्थी रिक्ता और पंचमी पूर्णा कहलाती है। यही हाल छठो से दशमी और एकादशी से अमावस्या तक का होगा। नन्दा तिथि का स्वामी शुक्र है, भद्रा का बुध, जया का मंगल, रिक्ता का शनि और पूर्णा का बृहस्पति और इसीलिए इन नन्दा आदि तिथियों के गुण-दोष भी क्रमशः शुक्र आदि ग्रहों के गुण दोषों के अनुरूप ही समझने चाहियें।

विवाहादि में कूर्म वास का ज्ञान—

शंकुस्थापनजा तिथिः शरगुणा तत्रानलाद्भं युतं
योज्यं द्वादशभिः पुनर्नवहृतं शिष्टं नगाब्धीन्दव.।
कीलालेऽहिकरेषवो भुवि ततोऽन्यङ्कृतनः खे भवे-
ल्लाभो हानिमृती क्रमात्फलमिदं कौर्मे तु चक्रे स्मृतम् ॥ १४ ॥

विवाह मण्डप के बांस गाड़ने के समय की तिथि को ५ से गुणा करो। कृत्तिका से उस समय तक की नक्षत्र संख्या को जोड़ो, फल में पुनः १२ जोड़ो और अन्तिम फल को ९ से विभक्त करो। यदि शेष ७, ४ अथवा १ रहे तो कूर्म जल में होता है, फल शुभ तथा लाभ है; यदि शेष ८, २ अथवा ५ रहें तो कूर्म स्थल पर होता है—फल धन आदि की

हानि, और यदि शेष ३, ६ अथवा ० बचे तो कूर्म आकाश में होता है। फल मृत्यु कही है।

गृहनिर्माणोपयोगिगृहकर्णिकाचक्र—

निर्माणे नवसद्मनः प्रथमतो लिङ्गत्रयं संलिखेत्
तिर्यक्चार्गलकाश्चतस्र अपि चाद्ये वामरेखादितः।
आरोहादपि दस्रभाच्छुभकरं चारोहभं मस्तगं
रेखायां खलखेचरे यदि मृतिर्नेतुः शुभे शोभनम् ॥ १५ ॥

नवगृह निर्माण के समय तीन आयत या अंडाकार आकृतियां स्थापन करो। प्रत्येक में चार तिर्यग् (Horizontal) लाइनें लिखो। ऐसा करने से प्रत्येक आकार पर चार एक ओर, चार दूसरी ओर, और एक ऊपर, कुल नौ नक्षत्र लिखने का स्थान बन जावेगा। बायीं ओर नीचे से ऊपर अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, रोहिणी, सबसे ऊपर मृगशिरा, पुनः लाइनों पर आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य तथा आश्लेषा लिखो, इसी प्रकार आरोहण-अवरोहण विधि से दूसरे तथा तीसरे आकार में शेष नौ-नौ नक्षत्र लिखो। जो नक्षत्र आरोही हैं तथा जो नक्षत्र चोटी पर लिखा है वे शुभ हैं। परन्तु यदि आरोही नक्षत्र पर कोई पापी ग्रह स्थित हो तो मृत्यु सूचित करता है। यदि ग्रह शुभ हो तो परिणाम शुभ होता है।

घर बनाते समय या किसी अन्य भवन का निर्माण करते समय आरोही व शिखर स्थित नक्षत्र शुभ फल देते हैं, अर्थात् इनमें से किसी नक्षत्र में मुहूर्त्तानुसार मासादि का निश्चय कर निर्माण कार्य शुरू करना चाहिए। अवरोही नक्षत्रों में निर्माण नहीं करना चाहिए।

अब देखिए कि आरोही नक्षत्रों में निर्माणारम्भ के समय जिस नक्षत्र में नैसर्गिक पापी ग्रह गोचर कर रहा हो तो मुखिया की मृत्यु होती है। अतः उस नक्षत्र को छोड़ देना चाहिए। यदि इन आरोही व शिखरस्थ नक्षत्रों में शुभ ग्रह हो तो शुभ फल होता है। इसे मुहूर्त्त-शास्त्र में गृहकर्णिकाचक्र कहते हैं।

वृषभ चक्र व कलश चक्र—

उक्षाख्ये फलमेवमुक्तमभिजित्साकं प्रवेशेऽर्कभा
च्चन्द्रर्क्षंगिरिवेदरामसुरपाश्च-सच्छुभासच्छुभम् ।
तद्वत्प्रोक्तमिदं फलं तु कलशे वाणारिनागारयः
संवेशे सुखदं शुभप्रदमपि स्याच्चक्रयुग्मं लघु ॥ १६ ॥

नूतन गृह-प्रवेश अथवा नगर-प्रवेश अथवा कार्यारम्भ के समय सूर्य के नक्षत्र से चन्द्र का नक्षत्र गिनो। गिनती में अभिजित् नक्षत्र को भी सम्मिलित करो, यदि नक्षत्र सूर्य से सात नक्षत्रों के मध्य में आ जाये तो अशुभ, अग्रिम ४ नक्षत्रों में हो तो शुभ, अग्रिम ३ में हो तो अशुभ और अन्तिम १४ नक्षत्रों में हो तो पुनः शुभ फल होता है। इस को वृषभ चक्र कहते हैं। इसी प्रकार नक्षत्र सूर्य नक्षत्र से पहले ५ नक्षत्रों में हो तो अशुभ, अग्रिम ८ नक्षत्रों में हो तो शुभ, अग्रिम ८ नक्षत्रों में अशुभ तथा अन्तिम ६ में शुभ फल देता है। इसको कलश चक्र कहते हैं। इस रीति से कार्य का शुभ अथवा अशुभ फल जान लेना चाहिए।

इन चक्रों का प्रयोग गृह-प्रवेश, नगर-प्रवेश, देश-प्रवेश, नूतन स्थान प्रवेशादि के समय करना चाहिए। प्रवेश के समय जो नक्षत्र हो वह सूर्य के नक्षत्र से सात नक्षत्रों के भीतर हो तो अशुभ होता है। यदि सूर्य के नक्षत्र के आठवें नक्षत्र से ११ वें नक्षत्र के बीच हो तो शुभ। इसी प्रकार पूर्वोक्त प्रकार से समझना चाहिए।

कलश चक्र में वर्तमान नक्षत्र से सूर्य नक्षत्र तक गणना कर फल जाना जाता है।

सेवक स्वामी सम्बन्ध के चक्र—

चक्रे मानुषरूपके हि शिरसि त्रीण्यर्थलाभो मुखे
नाशस्त्रीणि हृदीषवो धनचयो निःस्वं षडङ्घ्र्योर्द्वयम् ।
पृष्ठे प्राणभयं ततः शुभकरं वस्तौ कृताद्विगुदे
भीतिर्दक्षिणवामयोस्तु करयोरेकैककं स्वं मृतिः ॥ १७ ॥
भृत्यर्क्षादिनभान्तकं भवति तद्दासाख्यचक्रं त्विदं
दासीचक्रमपीह तद्वदिति तच्छीर्षे त्रयं लाभदम् ।
हानिस्त्रीणि मुखे द्वयं प्रभुमृतिः स्कन्धे च पुष्टिः शरा
हृत्पद्मे तु नगाश्च हानिरिति भूर्योनौ तिरस्कारता ॥ १८ ॥
त्रीणि त्रीण्यथ पादयोश्च भवति स्याद्दक्षिणे वामके
तद्द्रव्यक्षयमादिशेदिति विभोर्भृत्यस्य योज्यं सदा ।

दास नाम का चक्र पुरुष आकार में है। दास के जन्मकालीन नक्षत्र से स्वामी के जन्मकालीन नक्षत्र तक गिनो। यदि संख्या तीन अथवा तीन से कम हो तो इसे सिर पर समझो, जिसका फल धन की प्राप्ति है। यदि अग्रिम ३ में संख्या पड़े तो यह मुख में हो और इसका फल हानि समझो। अग्रिम ५ को नक्षत्र स्थल कहा है, इससे बहुत धन का संग्रह समझो। यदि अग्रिम ६ के भीतर हो तो पांव में होता है, इसका फल निर्धनता समझो। यदि अग्रिम २ में कहीं हो तो पृष्ठ पर होता है, इसका फल मृत्यु का भय समझो। अग्रिम ४ में वस्ति स्थान कहा है, इसका फल शुभ समझो। अग्रिम २ गुदा पर है और इसका फल भीति समझो। अन्तिम दो क्रमशः दायें तथा बायें हाथ पर हैं और इनका फल और उनका फल क्रमशः धन-प्राप्ति तथा मृत्यु समझना चाहिए।

दासी चक्र भी उपरोक्त प्रकार का है, परन्तु वह स्त्री के आकार का है। इस चक्र में प्रथम तीन नक्षत्र सिर पर हैं, उनका फल लाभ है। अग्रिम ३ मुख पर हैं, उनका फल हानि है। अग्रिम २ कन्धों पर हैं और उनका फल स्वामी की मृत्यु है। अग्रिम ५ पृष्ठ पर हैं और उनका फल वृद्धि है। अग्रिम ७ वक्षःस्थल में हैं। उनका फल हानि है। अग्रिम १ गुह्य स्थान में है और उसका फल अपमान है, अग्रिम ६ पांव पर तीन-तीन करके हैं और इसका फल धन का नाश है।

नौकर या नौकरानी के जन्म नक्षत्र को ज्ञात करो। अब दास-दासी चक्र में जैसा प्रसंग हो, उसके नक्षत्र से स्वामी के जन्म नक्षत्र तक अभिजित् सहित गिनो। निम्न प्रकार से फल समझो। स्वामी नक्षत्र जिस वर्ग में पड़े तदनुसार फल समझा जाएगा—

(i) प्रथम	३ नक्षत्र	सिर में	शुभ फल, धन लाभ
(ii) अग्रिम	३ नक्षत्र	मुख में	हानिकारक
(iii) ,,	५ नक्षत्र	छाती में	धन एकत्रित होना
(iv) ,,	६ नक्षत्र	पैरों में	धन नाश
(v) ,,	२ नक्षत्र	कमर में	मृत्यु
(vi) ,,	४ नक्षत्र	बस्ति में	शुभ फल
(vii) ,,	२ नक्षत्र	गुदा में	भयकारक
(viii) शेष	२ नक्षत्र	क्रमशः दाएं बाए हाथ में	क्रमशः धन लाभ व मृत्यु

यह दास चक्र बताया गया है। अब दासी चक्र को समझिए।

(i)	प्रथम ३ नक्षत्र	सिर में	लाभ
(ii)	अग्रिम ३ "	मुख में	हानि
(iii)	" २ "	कन्धों में	स्वामी की मृत्यु
(iv)	" ५ "	कमर में	वृद्धि
(v)	" ७ "	छाती में	हानि
(vi)	" १ "	गुप्तांग में	अपमान
(vii)	" ६ "	पैरों में	धन हानि

दोनों चक्रों में सेवक का जन्म नक्षत्र गिनती में नहीं लेना है। उससे अगले-अगले नक्षत्र समझने चाहियें। अतः २७ नक्षत्र ही चक्र में दिखाये गए हैं।

पशु खरीदने पर चक्र शुद्धि—

स्वीकारे महिषीगवां गुणकराष्टौ वाणनागेन्दवो
लाभो हानिरथो स्वलाभसुखकृल्लाभो महाभीतिकृत्।
मूर्द्धास्यङ्घ्रिष हृत्स्तनेषु च भगे त्वर्यम्ण आनित्यभं
गृह्णीयाच्च चतुष्पदान् वृषमुखान् सञ्चिन्त्य चक्रादिकम् ॥१९॥

जब कोई गाय अथवा भैंस दान में लेनी हो अथवा खरीदनी हो तो उसका फल इस प्रकार होगा। यदि उत्तरा फाल्गुनी से गिनने पर दान लेने या खरीदने के दिन का नक्षत्र पहली तीन संख्या में हो तो लाभ का द्योतक है। यदि अग्रिम २ में हो तो हानि का, अग्रिम ८ में लाभ का, अग्रिम ५ में सुख का, अग्रिम ८ में पुनः लाभ का, और अन्तिम १ भीति का द्योतक है। उपरोक्त ६ विभाग क्रमशः शिर, मुख, दो पाँव, वक्ष-स्थल, स्तन, गुह्य अंग हैं। बैल आदि पशुओं का उपरोक्त चक्रानुसार विचार कर लेना चाहिये।

अश्वचक्र व उसका फल—

अर्कर्क्षान्निजभान्तमेव गणयेत् स्कन्धे शराः पृष्ठतो
दिक्पुच्छे द्वितये चतुर्ष्वपि पदेष्वब्धिः शरास्तूदरे।
वक्त्रे तु द्वितयं क्रमात्सुभगकृल्लाभोऽङ्गनानाशकृद्
भङ्गो नाशकृदर्थलाभ इति चाश्वादेः समारोहणे ॥२०॥

घोड़े की सवारी आरम्भ करने के दिन सूर्य के नक्षत्र से अपने जन्म नक्षत्र तक गिनो। गिनती में अभिजित् नक्षत्र सम्मिलित करो। यदि नक्षत्र-संख्या पहली पांच में हो तो नक्षत्र पृष्ठ पर, यदि अग्रिम १० में हो तो पिछले भाग पर, अग्रिम २ में हो तो पूँछ पर, अग्रिम ४ में हो तो जंघाओं पर, अग्रिम ५ में हो तो पेट पर, अन्तिम २ में हो तो मुख पर समझो। इन स्थितियों का फल क्रमशः ऐश्वर्य, लाभ, स्त्री का नाश तथा धन-लाभ कहा है।

अश्व चक्र के विषय में और विशेष बताते हैं। मुँह, आँख, कान, सिर, पूँछ व दो-दो पैरों में घोड़े के नाम नक्षत्र से गिनकर अभिजित् सहित दो-दो नक्षत्रों की स्थापना करें। फिर पेट व पीठ पर पाँच-पाँच नक्षत्र स्थापित करें। तब देखिए कि शनि उस समय किस नक्षत्र में है। शनि का नक्षत्र घोड़े के जिस अंग पर पड़ता हो तदनुसार फल कहें।

मुँह, आँख, कान, सिर में यदि शनि हो तो उस घोड़े पर सवारी करने से शत्रु वश में होते हैं व शत्रुओं का नाश होता है।

पेट, पूँछ, पैर और पीठ में शनि होने पर युद्ध में वह घोड़ा पराजय दिलाने वाला व मतिभ्रम करने वाला होता है। अतः ऐसे घोड़े को युद्ध व अभिषेक काल में त्याग देना चाहिए। यह चक्र श्लोकोक्त चक्र से भिन्न है। अतः दोनों चक्रों से पाठक फल जान सकते हैं।

गज चक्र का उद्धार—

सूर्यर्क्षान्निजभान्तकं करकताश्व्यक्ष्यक्षिवेदाब्धयो
वेदाङ्गान्यथ कर्णमस्तकरदे पुच्छे करे पृष्ठके।
हृद्वक्त्राङ्घ्रिषु लाभलाभकमहालाभाश्च हानिः शुभं
सम्पद्रोगसमायकस्त्वपि गजारोहे तु सञ्चिन्तयेत् ॥२१॥

हाथी की सवारी के आरम्भ करने के दिन सूर्य जिस नक्षत्र में हो, वहाँ से व्यक्ति के जन्म-नक्षत्र तक गिनो। यदि संख्या (१) प्रथम २ में (२) अग्रिम २ में (३) अग्रिम २ में (४) अग्रिम २ में (५) अग्रिम २ में (६) अग्रिम ४ में (७) अग्रिम ४ में (८) अग्रिम ४ में (९) अन्तिम ६ में हो तो नक्षत्र के अङ्ग तथा उनका फल क्रमशः इस प्रकार होगा—(१) कान—लाभ (२) शिर—लाभ (३) दाँत—बहुत लाभ (४) पूँछ—नाश (५) सूँड—शुभ (६) पृष्ठ—धन (७) छाती—रोग (८) मुख—न हानि न लाभ (९) पाँव—लाभ।

इन चक्रों के विशेष ज्ञान के लिए पाठकों को प्राचीन ग्रन्थ 'रणवीर ज्योतिर्महा निबन्ध'[1] पढ़ना चाहिए।

पालकी की सवारी का चक्र—

आरोहे शिविकां दिनेश्वरभतस्तत्कालभान्तं क्रमात्
तुर्यांशादिषु पञ्च च लिखेदृक्षाणि सप्तान्तरे
आरोग्यं त्वतिकष्टतां च कृशतां व्याधिं क्रमान्मध्यमे
कल्याणं दिशतीह चक्रमुदितं चायुश्च पुष्टि सुखम् ॥ २२ ॥

पालकी में बैठने के दिन सूर्य नक्षत्र से चन्द्र नक्षत्र तक गिनो। पूर्व से आरम्भ करके प्रत्येक दिशा के पांच-पांच नक्षत्र रखो और अन्तिम ७ नक्षत्र केन्द्र के लिए सुरक्षित रखो। जो संख्या निकले उसका इन दिशा-विभागों में पड़ने का फल क्रमशः (१) स्वास्थ्य, (२) बहुत कष्ट, (३) दुःखी होकर सूखना, (४) रोग, (५) कल्याण। शुभ समय में डोली पर चढ़ना दीर्घायु, पुष्टिकर तथा सुखदायक होता है।

जिस दिशा में जाना हो, उसी दिशा की ओर मुंह करके पालकी को स्थापित करें। सूर्य के नक्षत्र से चन्द्र नक्षत्र तक गिनें। सूर्य के नक्षत्र से गिनते हुए पांच-पांच नक्षत्र क्रमशः पालकी की पूर्व, दक्षिण, पश्चिम व उत्तर दिशा में स्थापित करें। शेष ७ नक्षत्र पालकी के मध्य में स्थापित करें। अब उस दिन का नक्षत्र जिस भाग में पड़े, तदनुसार निम्नोक्त प्रकार से फल होगा—

(i) पूर्व—आरोग्य लाभ, (ii) दक्षिण—अति कष्ट, (iii) पश्चिम—परेशानी, निर्बलता, (iv) उत्तर—रोग, (v) केन्द्र—शुभ फल, कल्याण।

राजा के छत्र का चक्र—

छत्रस्य ग्रहणे शिवोत्तरविधीज्यश्वीप्रभं वा नवं
वारुण्यं च सदा शुभं त्वथ पुनश्चक्रस्य याते त्रयम् ॥ २३ ॥

---

१. इस प्राचीन ग्रन्थ की हूबहू फोटो कापी उत्तम अवस्था में अब उपलब्ध है।

नाशं सप्त तु दण्डके धनहरं कण्ठे नृपानुगृहं
पञ्चान्तर्वसवो महानृपवरं चाग्रेऽब्धिभं कीर्तिदम् ।
छत्राख्यं त्विदमुत्तमं शुभकरं चक्रं तु छत्राकृति
संलिख्येवमथो स्वभाद्दिनकरर्क्षान्तं क्रमाद्विन्यसेत् ॥ २४ ॥

जब (राजा का) छत्र उठाना हो तो आर्द्रा, उत्तरा फाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तरा भाद्रपद, रोहिणी, पुष्य, श्रवण, धनिष्ठा तथा शतभिषा सदा शुभ होते हैं। जन्म-नक्षत्र से उस दिन के सूर्य नक्षत्र तक गिनो। पहले तीन नक्षत्र निम्न भाग के, अग्रिम ७ दण्ड के, अग्रिम ५ ऊपर निकले हुए दण्ड के, अग्रिम ८ छत्र के आन्तरिक भाग के और अन्तिम ४ शिखर के। उनका फल क्रमशः (१) नाश (२) धन हानि (३) राज्य की ओर से अनुग्रह (४) राजा का महान् तथा शुभ होना (५) यश होता है।

जो व्यक्ति राजा का छत्र उठाएगा उस व्यक्ति के जन्म नक्षत्र से गणना कीजिए। वहां से गिनते हुए सूर्य के नक्षत्र तक देखना है। जन्म नक्षत्र से प्रथम ३ नक्षत्र छत्र के हत्थे में, अग्रिम ७ नक्षत्र डण्डे में, अग्रिम ५ नक्षत्र डण्डे के ऊपरी भाग में जहां छाता खुलता है, अगले ८ नक्षत्र छतरी के घेरे के अन्दर और शेष ४ नक्षत्र छत्र के ऊपर स्थापित करें। सूर्य का नक्षत्र जिस भाग में पड़े नदनुसार ही छाता उठाने वाले को फल मिलेगा।

मञ्चकया खट्वा (खाट) चक्र—

सूर्यर्क्षाद्विधुभान्तमेव गणयेच्चत्वारि चत्वारि त-
न्मूलेष्वत्र लिखेच्चतुर्ष्वपि तथा गात्रेषु चैकैकभम् ।
मध्ये सप्त विनिर्दिशेदतिसुखं मूलेषु गात्रेषु चेद्
भीतिं सत्सुतभाग्यदं निगदितं मञ्चाख्यचक्रन्त्विदम् ॥ २५ ॥

उस दिन के सूर्य के नक्षत्र से चन्द्र-नक्षत्र तक गिनो। मञ्च के चारों पायों के लिए चार-चार नक्षत्र और एक-एक चारों पादों के ऊपर वाली गोलाकृति के लिए और ७ मञ्च के केन्द्र के। फल (१) केन्द्र में

सुख, (२) चार पायों में भीति, (३) चारों कोनों में अच्छी सन्तति तथा सुख। यह मञ्च चक्र है।

जिस समय मंच पर बैठना हो या पलंग आदि पर बैठना हो अर्थात् विशेष अवस्थाओं में जब पलंग पर आरोहण किया जाए। जैसे प्रथम स्त्री संगम पर, विवाहोपरान्त ससुराल में खट्वारोहण आदि के समय या नेताओं आदि के द्वारा मंच प्रयोग करते समय इस चक्र का विचार करना चाहिए।

उस दिन के सूर्य नक्षत्र से दिन नक्षत्र तक गिनें। ४-४ नक्षत्र पूर्वादि दिशा क्रम से पायों में स्थापित करें। तत्पश्चात् इसी क्रम से १-१ नक्षत्र चारों ऊपरी कोनों के लिए ७ नक्षत्र मंच के मध्य भाग में। इस प्रकार २७ नक्षत्रों की स्थापना कर फल जानें। यदि उस दिन का नक्षत्र मंच के मध्य में हो तो परम सुख, चारों पायों में से कहीं पड़े तो भयकारक, चारों कोनों के एक-एक नक्षत्रों में कहीं हो तो पुत्र सुख व भाग्यवृद्धि होती है।

बाण सहित धनुष चक्र —

जन्मर्क्षान्तमथार्कभाच्छरमुखे पञ्चैव लाभः शरा-
दौ बाणा जयमादिशेच्छरधनुः सन्धाविषुः शौर्यकृत्।
दण्डे भद्वितयं तु भङ्गमिति तच्चापाग्रयोः पञ्चक
हानिः स्यादिति चामनन्ति सशरं चापाख्यचक्रं त्विदम्॥ २६॥

सूर्य-नक्षत्र से व्यक्ति के जन्म-नक्षत्र तक गिनो। ५ नक्षत्र शर के फल पर, ५ उस स्थान के जहां शर, धनुष से मिलता है, ५ नक्षत्र धनुष की डोरी के और पांच-पांच चाप के सिरों के लिए। इनके फल क्रमशः (१) लाभ, (२) विजय, (३) शूरवीरता, (४) दुःख, (५) नाश। इसे सशर-चाप-चक्र कहते हैं।

रथ चक्र विचार—

दण्डे मध्यगते च चक्रशिखराधो स्यन्दनाग्रे युगे
सर्वत्राग्निषड्गुणगुणाग्निः सिद्धिकीर्तौ मृतिः ।
कल्याणं धनलाभभङ्गसुखदं चक्रे रथाख्ये भवेत्
प्रालेयारिगतोऽडुतः स्वजननर्क्षान्तं सुधीर्विन्यसेत् ॥ २७ ॥

जिस दिन रथ पर बैठना हो, किसी बड़े कार्य के लिए यात्रा पर जाना हो, इस चक्र का विचार करना चाहिए। सूर्य नक्षत्र से जन्मनक्षत्र (यात्री का) तक गिनिए। निम्न प्रकार से स्थापना कर फल समझें—

१. प्रथम ३ नक्षत्र	केन्द्रीय दण्ड में (धुरी में)	सफलता
२. अग्रिम ६ नक्षत्र	पहियों में	प्रसिद्धि
३. ,, ३ ,,	रथ शिखर में	मृत्यु
४. ,, ६ नक्षत्र	रथ के नीचे	प्रसन्नता
५. ,, ३ नक्षत्र	रथ के अग्रभाग में	धन लाभ
६. ,, ३ नक्षत्र	जुए में (घोड़े जोतने का स्थान)	बाधा/ असफलता
७. अन्तिम ३ नक्षत्र	रथ के चारों ओर	सुख-प्राप्ति

घूर्णा (कोल्हू) चक्र—

चन्द्रार्क्षान्तिमिनर्क्षतो हि गणयेन्नन्दत्रिकानि स्युरि-
त्येवं हानिमथो विभूतिमरुजं नाशं धनायं ततः ।
राजोपद्रवनिर्धनत्वमृतिदं सौख्यं क्रमात्तत्फलं
घूर्णाचक्रमिदं तिलादिमथने स्यान्नारिकेलादिषु ॥ २८ ॥

उस दिन सूर्य जिस नक्षत्र में हो वहां से चन्द्र जिस नक्षत्र में हो वहां तक गिनो। यदि तीन-तीन के ९ विभागों में संख्या पड़े तो फल क्रमशः (१) नाश, (२) विभति, (३) स्वास्थ्य, (४) नाश, (५) धन-लाभ,

(६) राज्य की ओर से कष्ट, (७) दरिद्रता, (८) मृत्यु, (९) सुख होता है। यह घूर्ण चक्र है। इसका प्रयोग तिलों अथवा नारियल से तेल निकालने के मुहूर्त में होता है।

तेल निकालने के लिए कोल्हू जोतने, तेल का मिल चालू करने आदि के प्रसंग में इस चक्र का विचार करना चाहिए। सूर्य के नक्षत्र से दिन के नक्षत्र तक गिनना है। सूर्य के नक्षत्र से गिनकर ३-३ नक्षत्रों के ९ विभाग बना लें। जिस विभाग में दिन नक्षत्र पड़े तदनुसार फल समझें।

(i) प्रथम तीन नक्षत्र अर्थात् प्रथम त्रयी में नाश, (ii) द्वितीय त्रयी में ऐश्वर्य वृद्धि, (iii) तृतीय त्रयी में स्वास्थ्य वृद्धि, (iv) चतुर्थ त्रयी में नाश (v) पंचम त्रयी में धन लाभ, (vi) षष्ठ त्रयी में राजकीय कोप, (vii) सप्तमी त्रयी में दरिद्रता, (viii) अष्टम त्रयी में मृत्यु, (ix) नवम त्रयी में सुख।

गन्ना पेरने का चक्र (इक्षुघूर्णा चक्र)—

सूर्यर्क्षाद्विधुभान्तभेव गणयेद्वेदाश्विनेत्रेन्दवो
बाणेष्वश्विरसाः क्रमात्फलमथो श्रीहानिलाभोत्कटान्।
नाशं मृत्युशुभे च देहकृशतां वित्ताधिकं चोच्यते
घूर्णाचक्रमिदं शुभर्क्षसहितं चेक्षुद्रवे योजयेत्॥ २९॥

उस दिन के सूर्य-नक्षत्र से चन्द्र के नक्षत्र तक गिनो। यदि संख्या (१) प्रथम ४ में, (२) अग्रिम २ में, (३) अग्रिम २ में, (४) अग्रिम १ में, (५) अग्रिम ५ में, (६) अग्रिम ५ में, (७) अग्रिम २ में, (८) अग्रिम ६ में हो तो फल क्रमशः (१) धन-ऐश्वर्य, (२) हानि, (३) महान् लाभ, (४)नाश (५) मृत्यु (६) शुभ (७) देह का सूखना (८) बहुत धन समझना चाहिए। इस घूर्ण चक्र का प्रयोग गन्ने का रस निकालने की मशीन पर होता है।

चीनी मिल का प्रारम्भ, क्रेशर, कोल्हू चलाना या गन्ने के रस की दुकान आदि खोलते समय इस चक्र का विचार करना चाहिए। दिन के सूर्य नक्षत्र से चन्द्र तक गिनते हुए इस प्रकार स्थापना करें—

(i) प्रथम ४ नक्षत्र—धन ऐश्वर्य लाभ (ii) अगले २ नक्षत्र—हानि (iii) अगले २ नक्षत्र—बड़ा लाभ (iv) अग्रिम १ नक्षत्र—नाशकारी (v) अगले ५ नक्षत्र—मृत्यु (vi) अगले ५ नक्षत्र—शुभ फल (vii) अगले २ नक्षत्र—शरीर की दुर्बलता (viii) अगले ६ नक्षत्र—बहुत धन।

हलचक्र विचार

सूर्याधिष्ठितभाद् द्युभान्तगणनात् त्रिव्यग्निबाणाग्नयो
बाणाग्न्यशिवमितेष्वसच्छुभमसद्भद्रासतौ सत्वसत्।
कल्याणं क्रमतो हलाह्वयमिदं चक्रं स्मृतं शोभनं
बीजानां वपने तथा नवकृषा ऋक्षे शुभे तूक्तवत् ॥३०॥

इस चक्र को हलचक्र कहते हैं। पहले पहल कृषि भूमि में हल जोतते समय या बीज बोते समय इस चक्र का विचार करना चाहिए। उस दिन के सूर्य नक्षत्र से चन्द्र नक्षत्र तक गिनकर स्थापना करें—

(i) प्रथम ३ नक्षत्र—अशुभ (ii) अगले ३ नक्षत्र—शुभ फल (iii) अगले ३ नक्षत्र—अशुभ फल (iv) अगले ५ नक्षत्र—कल्याणप्रद (v) अगले ३ नक्षत्र—अशुभ (vi) अगले ५ नक्षत्र—शुभ फल (vii) अगले ३ नक्षत्र—अशुभ फल (viii) अगले २ नक्षत्र—कल्याणकारक।

इस प्रकार हल चक्र से विचार करना चाहिए।

नौका चक्र

अर्कर्क्षात्तरणेरुपर्यरिमितं स्तम्भे च नाल्यां त्रयं
पृष्ठैकं त्वथ पार्श्वयो रसमितं शुक्काणके तु त्रयम्।
षण्णौकान्तरगन्त्विदं हि गदितं नौयाननिर्माणयो-
रूर्ध्वान्तस्थितभं द्विषट्छुभकरं त्वन्यत्त्वसत्साभिजित् ॥३१॥

उस दिन के सूर्य-नक्षत्र से चन्द्रमा-नक्षत्र तक गिनो। अभिजित् नक्षत्र को भी गिनती में सम्मिलित करो। प्रथम ६ को नाव के ऊपर, तीन आधार स्थान के ऊपर, तीन उसके नीचे, एक पिछली ओर, तीन-तीन करके ६ दोनों ओर, ३ अग्रभाग पर, और ६ अन्दर। यह चक्र उस

समय के प्रयोग के लिए है जब नई नौका बनानी अथवा चलानी हो। ऊपर वाले ६ और ६ अन्दर वाले शुभ हैं। शेष का फल अशुभ है।

इस नौका चक्र का विचार नाव बनाने, पानी का जहाज, पनडुब्बी आदि का उद्घाटन करने के समय करना चाहिए। यहाँ पर अभिजित् सहित २८ नक्षत्रों की गणना करनी है। सूर्य नक्षत्र से चन्द्र नक्षत्र तक गिनना होता है। फल इस प्रकार है—

(i) प्रथम	६	नक्षत्र	नाव के ऊपर	शुभ फल
(ii) अग्रिम	३	"	स्तम्भ पर	अशुभ
(iii) "	३	"	नाव के नीचे	अशुभ
(iv) "	१	"	नाव के पृष्ठ भाग में	अशुभ
(v) "	६	"	दोनों पार्श्वों में	"
(vi) "	३	"	नाव की नोक पर	"
(vii) "	६	"	नाव के अन्दर	शुभ फल

दीपिका चक्र

वह्न्यृक्षाद्दिनभान्तकं हि गणने बाणा मुखे पूज्यता
कण्ठे स्युर्नव लाभदाः प्रभुमृतेर्मध्ये गजा दण्डके।
बाणा राज्यकराः क्रमात्फलमिदं स्याद्दीपिकाख्यं स्मृतं
चक्रं नूतनदीपभाजनविनिक्षेपे त्ववश्यं शुभम् ॥३२॥

कृत्तिका नक्षत्र से मुहूर्त वाले दिन के नक्षत्र तक गिनो। पाँच मुख के, ९ गले के, ८ मध्य के, ५ पिछले भाग के। चारों विभागों का फल क्रमशः (१) सम्मान (२) लाभ (३) स्वामी की मृत्यु (४) राज्य की प्राप्ति। यह दीपिका चक्र है। यह चक्र नये दीप के प्रयोग के समय उपयोगी है।

कूपवापी चक्र

चक्रान्तर्विधिभात् त्रिभं तु विलिखेत्तद्वच्च पूर्वादिषु
त्वेवं संगणितेऽतिशीघ्रजलदं तन्निर्जलं मध्यमम्।
नीराभावजलादिकामृतजलक्षारोदनीरान्वितं
मध्यं स्याद्विधुभात्फलं भवति तत्कूपस्य वाप्याश्च वा ॥३३॥

रोहिणी नक्षत्र से दिन के चन्द्र नक्षत्र तक गिनो। पहले तीन नक्षत्र केन्द्र में, शेष २४ में से तीन-तीन पूर्व से आरम्भ कर प्रत्येक दिशा के लिए। इस चक्र का प्रयोग कूप अथवा तालाब खुदवाने के मुहूर्त के लिए है और फल क्रमशः (१) जल शीघ्र मिले (२) पानी न मिले (३) मध्यम (४) जल का अभाव (५) जल का बाहुल्य (६) स्वादु जल (७) खारा पानी (८) पूर्ण जल (९) मध्यम।

कुआँ या बावड़ी आदि बनवाते समय रोहिणी नक्षत्र से गिनना शुरू करें। दिन के नक्षत्र तक गिनें। फल इस प्रकार समझना है—

(i)	प्रथम	३	नक्षत्र	केन्द्र में	जल शीघ्र मिलेगा
(ii)	अगले	३	"	पूर्व में	पानी नहीं
(iii)	"	३	"	अग्नि कोण में	मध्यम फल
(iv)	"	३	"	दक्षिण में	जल की कमी
(v)	"	३	"	नैऋत्य में	खूब जल
(vi)	"	३	"	पश्चिम में	स्वादिष्ट जल
(vii)	"	३	"	वायव्य में	खारा जल
(viii)	"	३	"	उत्तर में	पूर्ण जल
(ix)	"	३	"	ईशान में	मध्यम जल

स्तम्भ चक्र विचार

स्तम्भाग्रे रसभं मृतिं त्वथ नखा मध्ये यशः सम्पदं
तन्मूले भयुगं धनक्षयमपोनर्क्षाद्विधोर्भान्तकम्।
गेहारंभतटाकवापिखनने चारामसंस्थापने
स्तम्भस्थापनमत्र कीर्तिसुखदं वंशाभिवृद्धिं दिशेत्॥३४॥

सूर्य के नक्षत्र से चन्द्र के नक्षत्र तक गिनो। यदि पहले ६ नक्षत्रों में संख्या पड़े तो मृत्यु, यदि अग्रिम २० नक्षत्रों में नक्षत्र पड़े तो यश तथा वृद्धि, यदि अन्तिम २ में पड़े तो धन का ह्रास। इस चक्र का प्रयोग गृह निर्माण, कूप खोदना, तालाब खोदना, अथवा उद्यान बनवाना आदि कार्यों के प्रारम्भ में है। स्तम्भ का प्रयोग कीर्ति, सुख तथा वंश-वृद्धि देता है।

प्राचीन काल में राजा-महाराजा जब बाग, बगीचे, तालाब, बावड़ी आदि बनवाते थे तो उसके मध्य में स्तम्भ अर्थात् एक खम्बे का

निर्माण भी किया जाता था। इसके पीछे यह समझा जाता था कि निर्माता के वंश की वृद्धि और कीर्ति बढ़ेगी। जब महल, बाग, कुआँ तालाब आदि बनवाना हो तो पहले स्तम्भ पूजा विहित है, अतः इन सब कार्यों में पूर्वोक्त प्रकार से स्तम्भ चक्र से फल जानना चाहिए।

द्वार चक्र

द्वारोर्ध्वं भचतुष्टयं दिशति तद्राज्यं तदन्तस्त्रयं
राज्यं कोणचतुष्टये वसुमितं चोद्वासकं शाखयोः।
अष्टावष्टविभूतयो जलधयो मृत्युं त्वथो चक्रतो
द्वाराख्यं रविभाद्दिनोडुगदितं स्याद्देहलीस्थापने ॥३५॥

सूर्य नक्षत्र से उस दिन के नक्षत्र तक गिनो। चौखट के ऊपरी भाग के पहले चार, केन्द्र के ३, चार कोनों के ८ (२ प्रति कोने के) ८ ऊपरी आधार के, (४ प्रति आधार Hinge) और अन्तिम ४ नक्षत्र चौखट के निचले भाग पर समझें। इनका फल क्रमशः (१) राज्य-प्राप्ति, (२) पुनः राज्य-प्राप्ति, (३) देश निकाला, (४) अष्ट ऋद्धि-ऐश्वर्य, (५) मृत्यु। यह द्वारचक्र है—चौखट बनाने के मुहूर्त में उपयोगी है।

मकान बनाते समय प्रमुख द्वार की देहली स्थापना के समय इस चक्र का विचार करना चाहिए। सूर्य नक्षत्र से दिन नक्षत्र तक गिनना है। पूर्वोक्त प्रकार से स्थापना कर फल जानना चाहिए।

अग्निस्थापनोपयोगी अग्निचक्र—

सैका वारयुता तिथिः कृतहृता शेषेऽग्निशून्ये सुखं
भूनेत्रेऽर्थविनाशनं रविभतश्चाचन्द्रभं त्रित्रिभम्।
सूर्यज्ञास्फुजिदार्किचन्द्रकुजगुर्वग्वन्त्यगैः सच्छुभे
पापेऽसन्नवचुल्लिकाग्रहमखादिष्वग्निसंस्थापने ॥३६॥

जो तिथि हो उसमें वार का अंक तथा १ मिलाओ। योग को ४ पर विभक्त करो। यदि शेष ३ अथवा ० रहे तो शुभता का सूचक है। यदि १ अथवा २ रहे तो धन-हानि का सूचक है।

सूर्य-नक्षत्र से चन्द्र-नक्षत्र तक गिनो। उधर सूर्य-नक्षत्र से २७ नक्षत्रों के तीन-तीन के समूह को सूर्य, बुध, शुक्र, शनि, चन्द्र, मंगल, गुरु, राहु, केतु का समझो। यदि नक्षत्र शुभ ग्रह के गण में पड़े तो शुभता

अन्यथा अशुभता का द्योतक होता है। नयी भट्टी, तन्दूर अथवा यज्ञाग्नि की स्थापना के मुहूर्त में इस चक्र का उपयोग होता है।

जहाँ अग्नि स्थापना का अवसर हो वहीं पर इस अग्निचक्र का प्रयोग किया जा सकता है। यहाँ दो प्रकार बताए गए हैं। पहले जिस दिन अग्नि स्थापना करनी हो, उस दिन की तिथि व वार की संख्या को जोड़ लें तथा इस योग में १ मिला लें व योग में ४ का भाग दें। शेष ३ या ० है तो शुभ, यदि १ या २ शेष तो धन-हानि समझें।

दूसरे प्रकार को इस तरह अपनाएँ—

सूर्य नक्षत्र से प्रथम	३	नक्षत्रों का	अधिपति	सूर्य
अगले	३	"	"	बुध
"	३	"	"	शुक्र
"	३	"	"	शनि
"	३	"	"	चन्द्र
"	३	"	"	मंगल
"	३	"	"	गुरु
"	३	"	"	राहु
"	३	"	"	केतु

यदि दिन का नक्षत्र शुभ ग्रह के आधिपत्य में हो तो शुभ फल अन्यथा अशुभ फल समझना चाहिए।

पेटिका (बक्सा) चक्र—

पेटचायामविशालयोर्विनिहतिर्भक्ता खगैः शेषके
त्वेकादौ तु खगक्रमाद्रविमुखाः स्युः खेचरास्तत्फलम्।
सौम्यासौम्यवशाच्छुभाशुभमिति स्यादङ्गुलाद्येन वै
यत्र स्थाद्द्वियवादिकं ध्वज इहाष्टौ स्युर्यवा अङ्गुले ॥३७॥

पेटी (Box) की इंचों में लम्बाई को चौड़ाई से गुणा करो। फल को ९ पर विभक्त करो। एक आदि जो शेष रहे वह सूर्यादि ग्रह का द्योतक होगा। फल की शुभता अथवा अशुभता शेष प्रदिष्ट ग्रह की शुभता अथवा अशुभता से लेनी चाहिए।

लम्बाई चौड़ाई का मान यव या इंच में ले सकते हैं। इसके लिए १ अंगुल या १ इंच = ८ यव मानकर क्रिया करें। शुभ ग्रह के अंक शेष

बचनें पर शुभ फल होगा। इस चक्र का प्रयोग प्राचीन काल में खज़ाना आदि रखने या गाड़ने में होता था। आजकल भी तिजौरी बनवानें, विशेष मूल्यवान् वस्तुओं को सुरक्षित रखने हेतु बक्स बनवाने या काल-पात्र (Time Capsule) आदि गाड़ते समय इस चक्र का विचार किया जा सकता है।

ग्रामचक्र विचार—

> **चक्रं सावयवं नराकृतिमितं संलिख्य तद्ग्रामभात्**
> **स्वर्क्षान्तं शिरसीषवो धनचयं तन्नाशमास्ये त्रयम्।**
> **हृद्यर्क्षा धनदा रसा यदि पदोर्निस्वं विधुः पृष्ठगः**
> **प्राणापायमथो श्रियं जलधयो वस्तौ तु गुह्ये द्वयम्॥३८॥**
> **पीडां चैव भियं विशेदथ करे स्याद्दक्षिणे वामके**
> **त्वेकैकं बहुलाभकृद्भवति तद्द्वारिद्रचमेवं क्रमात्।**
> **कस्मिंश्चिन्नगरेऽथवा जनपदे वस्तुं यदीच्छेन्नरः**
> **संवीक्ष्यैवमथो विशेद्यदि सुतार्थायुःश्रियश्चाप्नुयात्॥३९॥**

जब कोई व्यक्ति किसी नगर अथवा देश में बसना चाहता हो तो निम्न प्रकार से उसे मुहूर्त निकालना चाहिए, ताकि सन्तान, धन तथा सुख मिल सके। चक्र नराकार है। नगर अथवा गाँव के नक्षत्र (इसे नाम द्वारा ची चू चे लो चक्र में निश्चित करे) से व्यक्ति के जन्म-नक्षत्र तक गिने।

तब निम्न प्रकार से फल समझना चाहिए—

(i)	प्रथम ५ नक्षत्र	सिर में	धन संचय
(ii)	अगले ३ "	मुख में	नाश
(iii)	" ५ "	छाती में	धन लाभ
(iv)	" ६ "	पाँवों में	धन हानि
(v)	" १ "	पीठ पर	जीवन-भय
(vi)	" ४ "	नाभिदेश	सुख
(vii)	" २ "	गुदा में	कष्ट व भय
(viii)	अन्तिम २ "	दायाँ हाथ	धन लाभ
		बायाँ हाथ	धन हानि

उपनयन चक्र—

जन्मार्क्षाद्गुरुभान्तकं हि गणयेच्चक्रे तु वट्वाकृतौ
मूर्ध्नीषुः सुखिनं मुखे त्रयमपि स्वाचारहीनं वटुम्।
हृद्येकं पिशुनं करोति पदयोरष्टौ रुगार्तं क्रमा-
द्दण्डे भद्वितयं सुवर्चसमथाष्टौ चाजिने पण्डितम् ॥४०॥

जिस बालक का यज्ञोपवीत संस्कार हो, उसके जन्म-नक्षत्र से उस दिन में गुरु के नक्षत्र तक गिनो। पहले ५ सिर पर, अग्रिम ३ मुख पर, अग्रिम १ छाती पर, अग्रिम ८ दो पाँवों पर, अग्रिम २ बालक के दण्ड (छाती) पर और अन्तिम ८ मृगचर्म पर होते हैं, निकलने वाली नक्षत्र संज्ञा का फल क्रमशः (१) सुख (२) आचारहीनता (३) चुगलखोर (४) रोगी (५) कान्तिमान् (६) पण्डित होता है।

यह चक्र मनुष्याकृति होता है। इससे वटु अर्थात् उपनयन संस्कार वाले बालक के विषय में फल ज्ञात होता है।

निधिचक्र (छिपा धन जानें)—

गेहादिष्वपि भूगतं मणिधनास्थ्याद्यं किमस्तीति तत्
सद्यः प्रत्ययकारकं निगदितं चक्रं तु निध्याह्वयम्।
तिर्यक्पञ्च तथोर्ध्वगा वसुमिता रेखा लिखेत्साभिजित्
त्वष्टाविंशतिकोष्ठकेषु लिखितेवृक्षेषु तत्पृच्छया ॥४१॥

अन्त्याद्ये यमवह्निभे पितृभगौ तां चोत्तराफाल्गुनीं
सप्तस्वेव भसप्तकं प्रविलिखेत्तत्रादिपङ्क्त्यां ततः।
आहिर्बुध्न्यमजैकपाच्छतभिषग्ब्रह्मोरगेज्याः करो-
धोपङ्क्त्यामभिजिद्धरिर्वसुमृगार्द्रादित्यचित्रास्त्वधः ॥४२॥

चातुर्थ्यामपि विश्वतो यदनुजज्येष्ठाख्यमैत्राख्य
भेन्द्राग्नीस्वातय एव चक्रवशतः सञ्चिन्त्य वस्त्वादिशेत्।
याम्याग्न्यशिवशिवादिती गुरुमघश्लेषाभिजिद्वेवतो
श्रोणाविश्वजलाजपादितिमनूड्ष्वेव चन्द्रो विभुः ॥४३॥

शेषेष्वेव मनूडुषूष्णकिरणो नाथोऽथ तात्कालिकौ
सूर्येन्दू निधिकारकौ तु भवतस्तौ वक्ष्यमाणक्रमात्।

आद्यन्तं रविभस्य हारक इति स्यात्तत्प्रवेशादित-
श्चेष्टान्तं घटिकावियद्रसगुणाहाराप्तलब्धं तु भम् ॥४४॥

गृह अथवा किसी स्थान में मणियाँ- धन अथवा हड्डियाँ छुपाई हुई हैं अथवा नहीं यह जानने के लिए निधि चक्र का प्रयोग करो। पाँच सीधी और आठ ऊपर से नीचे रेखायें खींचो। २८ कोष्ठक बन जायेंगे। अभिजित् समेत २८ नक्षत्रों को इनमें लिखो।

ऊपर की पंक्ति के ७ कोष्ठकों में बाईं से दाईं ओर रेवती, अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, मघा, पूर्वा फाल्गुनी लिखो। इसी प्रकार द्वितीय पंक्ति में उत्तरा भाद्रपद, पूर्वाभाद्रपद, शतभिषा, रोहिणी, आश्लेषा, पुष्य तथा हस्त लिखो। तृतीय पंक्ति में अभिजित्, श्रवण, धनिष्ठा, मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु तथा चित्रा लिखो और चतुर्थ पंक्ति में उत्तराषाढ़ा, पूर्वाषाढ़ा, मूला, ज्येष्ठा, अनुराधा, विशाखा तथा स्वाति लिखो। चन्द्र निम्नलिखित १४ नक्षत्रों का स्वामी है—भरणी, कृत्तिका, अश्विनी, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, मघा, आश्लेषा, अभिजित्, रेवती, श्रवण, उत्तराषाढ़ा, पूर्वाषाढ़ा तथा पूर्वा भाद्रपद। शेष १४ नक्षत्रों का स्वामी सूर्य है। प्रश्न-समय सूर्य तथा चन्द्र छुपे धन के सम्बन्ध में सूचित करेंगे।

निधि चक्र

रेवती	अश्विनी	भरणी	कृत्तिका	मघा	पूर्वा फाल्गुनी	उत्तरा फाल्गुनी
उत्तरा भाद्रा	पूर्वा भाद्रा	शतभिषा	रोहिणी	आश्लेषा	पुष्य	हस्त
अभिजित्	श्रवण	धनिष्ठा	मृगशिरा	आर्द्रा	पुनर्वसु	चित्रा
उत्तरा आषाढ़ा	पूर्वा आषाढ़ा	मूला	ज्येष्ठा	अनुराधा	विशाखा	स्वाति

छुपा धन जानने का प्रकार श्लोक ४६-४७ में बताया जा रहा है। पहले तात्कालिक सूर्य व चन्द्र का साधन करना है—

तच्छेषाद्घटिका नगाश्विनिहता षष्ट्याप्तलब्धं हि भं
तद्यात त्वथ वर्तमानभगतं तात्कालिकोऽर्को भवेत् ।
तत्कालेन्दुरिहैवमिष्टघटिकाः सप्ताश्विनिघ्नाः खषड्-
भक्ता लब्धमिहोडवश्च घटिकाः शेषो विनाडयः क्रमात् ॥४५॥

एक सम्पूर्ण नक्षत्र को आदि से अन्त तक चले जाने में सूर्य को जो समय लगे उसको 'विभाजक' (Divisor) समझिए। सूर्य को नक्षत्र के आदि से चलकर इष्ट काल तक पहुँचने में जितना समय लगे, उसको ६० से गुणा करके पूर्वोक्त विभाजक से भाग दो। जो शेष बचे उसको २७ से गुणा कर ६० पर विभक्त करने से जो उत्तर मिले वह वे नक्षत्र होंगे जो सूर्य-अश्विनी से लेकर इष्ट काल तक चल चुका है, इस प्रकार नक्षत्र की स्थिति सूर्य की राशि अंश कला में स्थिति बतला देगी। जिस नक्षत्र में चन्द्र है यह ज्ञात करो कि उसको उस नक्षत्र के आदि से लेकर इष्ट काल तक चलने में कितने घड़ी, पल लगते हैं। फल को २७ से गुणा करो और फल को ६ पर विभक्त करो। उत्तर जो मिलेगा वह वे नक्षत्र होंगे जो कि चन्द्र-अश्विनी से इष्ट काल तक चल चुका है। घटिका आदि जो शेष रहे विभाजित से चन्द्र के नक्षत्र में अंश आदि निकल आएंगे।

तत्कालेन्दुरिनादिदृष्ट इह तद्धैमं च तारं तथा
ताम्रं पित्तलकं सुवर्णमथ तत्कांस्यं च लोहं त्रपुः ।
सीसं यद्यपि खेचरैः सुबहुभिर्दृष्टा बहून्येव चे-
देकेनापि न वीक्षितः कमपि नास्त्येवेति वाच्यं निधौ ॥४६॥

पिछले श्लोकानुसार चन्द्र की स्थिति मुहूर्त पर ज्ञात करो। यदि चन्द्र सूर्यादि से दृष्ट हो तो निधि में क्रमशः (१) सोने की वस्तुएँ (२) चाँदी (३) ताँबा (४) पीतल (५) सोना (६) काँसी (७) लोहा (८) टिन (९) सिक्का होंगे। यदि कोई बलवान् ग्रहों की दृष्टि हो तो कई प्रकार की धातुएँ होंगी। यदि कोई दृष्टि न हो तो कोई धन नहीं है।

चन्द्रे सर्वखगेक्षिते तु सुमहाभाण्डं लभेच्छीकरं
सूर्यर्क्षे यदि हेमजं रजतजं स्थूलेन्दुराशौ स्थिते ।
भौमर्क्षे यदि ताम्रजं बुधग्रहे रत्नाढ्यकं जीवभे
शैलं शुक्रगृहे तु मृण्मयमिदं तल्लोहजं मन्दभे ॥४७॥

यदि उस समय का चन्द्र सब ग्रहों से दृष्ट हो तो बहुमूल्य निधि से भरा बड़ा बर्तन मिलेगा। यदि उपरोक्त चन्द्र सिंह राशि में हो तो निधि सोने के बर्तन में होगी। यदि यह चन्द्र स्थूल चन्द्र (खण्ड ७ श्लोक १३ के अनुसार) राशि में हो तो बर्तन चाँदी का होगा। यदि मंगल की राशि में हो तो बर्तन ताँबे का, यदि बुध की राशि में हो तो बर्तन किसी मूल्यवान् पत्थरों से जड़ा हुआ होगा। यदि गुरु को राशि में हो तो साधारण पत्थर के बर्तन में, यदि शुक्र की राशि में हो तो मिट्टी के बर्तन में, यदि शनि की राशि में हो तो बर्तन लोहे का होगा।

भे तत्कालविधोः स्थितौ शशिरवी चेदस्ति चार्थं रवे-
श्चेच्छल्यं परिवर्तनेन तु तयोर्नाप्यत्र किं विद्यते।
चन्द्रे क्रूरखगान्विते यदि निधौ स्वं नो लभेतान्यथा
चेदस्त्यत्र शशाङ्कभुक्तलवतः खातं कराद्यं भवेत् ॥४८॥

यदि सूर्य तथा चन्द्र दोनों ऐसे नक्षत्र में हों जिसका स्वामी चन्द्र हो (देखिये श्लोक ४५) तो निधि का होना जानना चाहिए। यदि दोनों ग्रह ऐसे नक्षत्र में हैं जिसका स्वामी सूर्य है तो निधि में हड्डियाँ हैं। यदि सूर्य तथा चन्द्र में स्थान परिवर्तन हो, तो कुछ न मिलेगा। यदि चन्द्र पापी ग्रहों के साथ हो तो निधि न मिलेगी। यदि शुभ ग्रहों के साथ हो तो मिलेगी। छुपी निधि की गहराई उतने हाथ होगी जितने अंश नक्षत्र में चन्द्र चल चुका है।

विवाह-चक्र—

रेखास्तूर्ध्वमुखाश्चतस्र उदितास्तद्वच्च तिर्यङ्मुखा-
श्चक्रं स्यान्नवकोष्ठकं परिणयेऽर्कक्षाद्विधोर्भान्तकम्।
मध्ये प्रागनलादिदिक्षु विलिखेत् त्रीणि क्रमात् त्रीणि वै
तन्मध्यस्थितकोष्ठगत्रिभमिदं हस्त्याशु तौ दम्पती ॥४९॥
प्रागाद्यष्टसु तत्क्रमादतिशुभं तद्वंशहानिं ततो
वैधव्यं कुलवर्धनं बहुऋणव्याधी स्त्रियं जारणीम्।
धान्यार्थेऽखिलसम्पदश्च कुरुते वैवाहिकं चाद्रभं
चैवं चक्रकदम्बमद्रिपतिना श्रीनन्दिने भाषितम् ॥५०॥

चार सीधी और चार खड़ी लकीरें खींचो। ९ कोष्ठक बन जाएँगे। सूर्य नक्षत्र से गिनकर पहले ३ नक्षत्र केन्द्र में रखो, पुन: तीन-तीन नक्षत्रों का स्थान क्रमश: पूर्व दिशा से तथा बाईं ओर से निश्चित करो। सूर्य से उस दिन का चन्द्र-नक्षत्र जितनी संख्या पर पड़े उसका फल ज्ञात करो। फल केन्द्रीय कोष्ठक से आरम्भ कर क्रमश: (१) दंपती का नाश (२) सुख-सम्पत्ति (३) परिवार का नाश (४) वैधव्य (५) परिवार की वृद्धि (६) ऋण और रोग (७) स्त्री किसी के साथ मैत्री करे (८) धन-धान्य (९) हर प्रकार की सम्पदा हो। ये चक्र भगवान् शिव ने नन्दी के प्रति कहे हैं।

विवाह के समय इस चक्र का निम्नोक्त प्रकार से विचार करें—

(i)	सूर्य के नक्षत्र से प्रथम ३ नक्षत्र	दम्पती का नाश
(ii)	अगले ३ "	सुख-सम्पत्ति
(iii)	" ३ "	परिवार का नाश
(iv)	" ३ "	वैधव्य योग
(v)	" ३ "	परिवार वृद्धि
(vi)	" ३ "	ऋण व रोग
(vii)	" ३ "	स्त्री परगामिनी
(viii)	" ३ "	धन धान्य वृद्धि
(ix)	" ३ "	सब सम्पत्तियों का लाभ

इस खण्ड में बताए गए ये सब चक्र ग्रन्थकार श्री कालिदास के मतानुसार भगवान् शिव ने नन्दी को बताए थे।

॥ इति श्री कालिदास कृतौ उत्तरकालामृते प्रथमकाण्डः समाप्तः ॥

द्वितीय काण्ड

१. विवाह में गोत्र विचार, कन्या वर की सपिण्डता का ज्ञान।
२. किस लड़की से विवाह करें ?
३. ज्येष्ठ पुत्र पुत्री के विवाहादिकृत्य व ज्येष्ठ मास।
४. जुड़वाँ सन्तान : छोटे-बड़े का विचार।
५. गोद लेने की विधि।
६. श्राद्ध विचार। समुद्र में कब स्नान न करें ?
७. कर्मकाण्ड व धर्मशास्त्र का ज्योतिष से समन्वय।
८. एक घर में दो शालिग्राम की पूजा नहीं।
९. सब लग्नों के कारक मारक ग्रह।
१०. शनि की विशेष शक्ति तथा अन्य सम्बद्ध विषय।

कर्मकाण्ड खण्ड

विवाह का समय व कन्या का चुनाव—

लक्षण्यां स्त्रियमुद्वहेदवितथस्वब्रह्मचर्यो मनः
कान्तामन्यपरिग्रहत्वसवयःसापिण्ड्यरुग्दर्जिताम् ।
गोत्रादिप्रवरेषु साम्यरहितां कुण्ठाद्यमर्यादिनीं
गौरीत्वानधिकां मनोनयनयोरानन्दिनीं सुन्दरीम् ॥१॥

ब्रह्मचर्य आश्रम के उपरान्त परिश्रम से शास्त्रों का अध्ययन कर शुभ लक्षणों से युक्त, अविवाहित, अपनी आयु से कम आयु वाली, सपिण्डता से रहित, गोत्र व प्रवरों में भिन्नता वाली, कोढ़ आदि रोगों से रहित, दस वर्ष तक आयु वाली, मन व आँखों को आनन्द देने वाली सुन्दरी कन्या से विवाह करे।

प्राचीन काल में रजोदर्शन से पूर्व ही कन्या का विवाह करके कई वर्षों के बाद द्विरागमन किया जाता था। गौरी शब्द का अर्थ ही है—आठ वर्ष की आयु वाली। उस काल का यही लोकाचार था। आज के युग में यह बात अटपटी-सी लगती है। यथावसर समञ्जन पूर्वक ही शास्त्रों का अनुसरण करना चाहिए। अतः आधुनिक युग में यह आयु वाली शर्त कोई विशेष अर्थ नहीं रखती। प्राचीन काल में विवाह की आयु के विषय में अनेक अन्तर्विरोध हैं, यदि उन पर लिखें तो एक अलग ही पुस्तक तैयार हो जाए। अतः हमारे मत से गौरी शब्द का अर्थ गौरे रंग के रूप में ही लगाकर समन्वय कर लेना चाहिए। मतान्तर से गौरी शब्द का प्रयोग उस कन्या के लिए भी किया जाता था जिसे अभी रजोदर्शन न हुआ हो। मनु के वचनानुसार पितृगृह में कन्या यदि रजस्वला हो जाती है तो पिता व बड़ा भाई दोनों ही पाप के भागी होकर नरकगामी होते हैं। अतः रजोदर्शन से पूर्व ही विवाह का विधान था।

आजकल यह प्रथा नहीं है। प्रथा, परम्परा, लोकाचार, शास्त्र से भी बड़ा है—

'शास्त्रसिद्धमपि लोकविरुद्धं नाचरणीयम्'।

एक बात और विचारणीय है। गोत्र शब्द का आशय तो आप समझते ही हैं। जो जिस ऋषि के वंशज हों, उसी ऋषि के गोत्र की सन्तान उन्हें माना जाता है। तब प्रवर क्या है? यह बात आज के युग में विशेषत: उत्तर भारत में कम लोगों को ही ज्ञात है। माना भारद्वाज ऋषि का गोत्र है, तब उनके इसके गोत्र के प्रवर्तक के रूप में कुछ अन्य ऋषियों का नाम भी शामिल है। अर्थात् वे उपऋषि जो भारद्वाज ऋषि के वंशजों के सम्बन्धों में पड़े और उन्हें बाद में भारद्वाजादि के गोत्र का प्रवर्तक मान लिया गया। इन सब प्रवरों का उल्लेख अर्थात् सूची गोत्रावली में दी गई होती है। कोषग्रन्थों में कहा गया है—

प्रबर: गोत्रप्रवर्तको मुनिव्यावतको मुनिगण:।

उदाहरणार्थ यमदग्नि के प्रवर—यमदग्नि, और्व, वशिष्ठ। भारद्वाज गोत्र के प्रवर—भारद्वाज, आंगिरस, बार्हस्पत्य। इसी प्रकार सभी गोत्रों के प्रवर होते हैं।

कन्या का गोत्र व प्रवर लड़के के गोत्र व प्रवर से भिन्न होना चाहिए। कहीं-कहीं पर गोत्र भेद में प्रवर साम्य होने पर भी विवाह हो जाता है।

सपिण्डता क्या है? 'जो लोग किसी अपने पूर्वज को पिण्ड दान देने में अधिकारी हों, जिन्हें सूतक व पातक लगता हो, जो जलांजलि देने में अधिकृत हों।' सरल शब्दों में इन्हें बन्धु-बान्धव कहा जा सकता है। पिता की सात पीढ़ियों में व माता की पाँच पीढ़ियों में जो लोग कुटुम्बी पड़ते हों वे सब परस्पर सपिण्ड कहलाते हैं। अत: आज भी द्विजों में पिता की सात पीढ़ियों व माता की पाँच पीढ़ियों को देखा जाता है कि कहीं लड़की का गोत्र इनमें तो नहीं पड़ता? यदि ऐसा हो तो विवाह नहीं हो पाता है। देखिए—

सप्तमीं पितृपक्षाच्च मातृपक्षाच्च पंचमीम्।
उद्वहेत् द्विजो भार्यां न्यायेन विधिना नृप॥ (विष्णु पुराण)

यही बात अगले श्लोक में बताई जा रही है।

लेपादाश्च चतुर्थतो ह्यु परि पित्राद्यस्तु पिण्डादिनः
आत्मा सप्तम इत्युदीरितमिदं सापिण्ड्यमेकं कुले।
सन्तानो यदि भिद्यते यत इतः कन्यावरोद्देशत
स्तत्पित्रोरधिगण्यमन्यकुलजं त्वासप्तमात्पञ्चमात् ॥२॥

अपने अर्थात् वर के पिता से सात पीढ़ी ऊपर, स्वयं से रहित ६ पीढ़ी तक सपिण्डता होती है। पिता (जीवित) से ऊपर पितामह, प्रपितामह, प्रप्रपितामह, तत्पिता, तत्पितामह, तत्प्रपितामह, इनके वंशज बन्धु सपिण्ड हुए। इसी प्रकार माता से पाँच ऊपर मातामह (नाना) प्रमातामह (पड़नाना), प्रप्रमातामह व इनके पिता व पितामह इनके वंशजों को छोड़ना है। यदि कन्या इनमें से किसी एक के खानदान में से हो तो विवाह नहीं होगा।

पुंसो वा यदि सन्ततेश्च युवतेर्वध्वा वरस्याथवा
सापिण्ड्यं विगणय्य यज्जनकतस्स्वासप्तमात्तं त्यजेत्।
प्रस्वाश्चेदथ पञ्चमोपरि विदध्यादेकतो निर्वृ तं
स्यादन्यत्र निवृत्तिरेवमुभयोस्तद्बन्धुतायां विधिः ॥३॥

यदि एक पक्ष के लिए सपिण्ड गणना किसी स्थिति में समाप्त होती है तो दूसरे पक्ष के लिए भी उसे समाप्त हुआ समझना चाहिए। ऐसा विवाह सम्बन्ध स्थापित करने का नियम है।

अर्थात् पिता की सात पीढ़ियों से व माता की पाँच पीढ़ियों से ऊपर तो स्वयं ही सपिण्डता समाप्त हो जाती है। यदि उससे पूर्व भी किसी कारण से किसी एक पक्ष की सपिण्डता खत्म हो जाती है तो दूसरे पक्ष की भी सपिण्डता को स्वतः समाप्त समझा जाएगा।

उक्त नियम का अपवाद—

चातुर्थीमपवादमाह भगिनीमात्रात्मजाख्यास्त्यजेत्
षष्ठीपञ्चमपञ्चमी परिणयं कुर्यान्न चेत्सा स्वसा।
तार्तीया विधिरुत्कलद्रविडयोः कार्यो न सार्वत्रिकः
वध्वा वा वरषष्ठममिति स्यान्निवृ तिस्तद्द्वयोः ॥४॥

कुछ आचार्यों की सम्मति है कि तीन पीढ़ियाँ माता के पक्ष की छोड़नी चाहिएँ। बहिन, माता तथा पुत्री से सम्बन्ध न होना चाहिए। एक ओर छठी, दूसरी ओर पाँचवीं पीढ़ी हो, अथवा दोनों ओर पाँचवीं हो और स्त्री बहिन न निकलती हो तो भी सम्बन्ध ठीक है। केवल उत्कल तथा द्रविड़ देश में तीसरी पीढ़ी में सम्बन्ध हो सकता है। यदि वधू वर की छठी अथवा आठवीं पीढ़ी में पड़ती हो तो किसी प्रकार का निषेध नहीं।

कूटस्थाद्विषयत्वमुक्तविधिना सापिण्डचकालानिति-
क्रामः कुल्यनुरोधभञ्जनमतद्देशानुकूल्यं क्रमात्।
सम्बन्धप्रतिबन्धुवर्गमुत सापिण्ड्यं तु षाट्कौशिकः
पिण्डो देह इहास्य साम्यमगुरु स्याद्गुर्ववित्तांशकः ॥५॥

गणना दोनों पक्षों के साझे पूर्व पिताओं से होनी चाहिए। सपिण्ड नियम तथा कुलधर्म का उल्लंघन नहीं होना चाहिए। ६ पीढ़ियाँ इसलिए कही हैं कि वर के तीन, कोष, हड्डी मांसपेशि और मज्जा पिता से तथा त्वचा, मांस और रक्त माता से प्राप्त होते हैं। यदि यह पीढ़ी गणना गौण हो अथवा यदि उत्तराधिकार का प्रश्न उपस्थित न होता हो तो विवाह हो सकता है।

सगे भाइयों का विवाह एक कुल में नहीं (अपवाद)

एकस्येत्यपवादमाह पुरतस्तूढा गता चेत्परं
तस्या एव सहोदरीमुपयमेत्पुत्राद्यपेक्षाऽथवा।
सोदर्यौ च सहोदरीयुगयुजौ स्यातामुतैवं यमौ
स्यातां वा युगपद्विधेरथ विरोधाभावतो वा क्रमात् ॥ ६ ॥

यदि स्त्री छोड़ जाए तो पति उसकी बहिन से विवाह कर ले। यह उस नियम का अपवाद है कि एक ही कुल में लड़कियाँ न विवाहित हों। अथवा लड़कियाँ एक ही दम्पती के पुत्रों से न विवाहित हों। इसी प्रकार युग्म लड़कियों का विवाह युग्म उत्पन्न हुए लड़कों से हो सकता है।

सौतेले माता-पिता व सपिण्डता —

सन्तानं यदि विन्दते स्वजनकात्सापत्न्यमाता तदा
सापिण्ड्यं भवति त्रिपूरुषमथो नो सन्ततिश्चेत्तदा।

तस्यास्तातसहोदरस्य तनया नैव प्रसूसंज्ञिका
तत्स्वस्रात्मभवानसूनवरजा तां तां न सोऽप्युद्वहेत् ॥७॥

यदि कोई व्यक्ति अपनी दूसरी स्त्री से सन्तान प्राप्त करता है तो उसकी पहली स्त्री के लड़कों की सौतेले भाइयों से तीन पीढ़ी तक सपिण्डता रहेगी। यदि दूसरी स्त्री को कोई सन्तान न हो तो पहली स्त्री का लड़का दूसरी स्त्री के चाचा ताऊ की लड़की से विवाह कर सकता है (वह उसकी बहन नहीं होगी)।

इसी प्रकार सौतेली माता के बहनों के बच्चों से भी (सन्तानहीन होने पर) विवाह हो सकता है।

अर्थात् निःसन्तान सौतेली माता की चचेरी बहन या ताऊ की लड़की से अथवा इसी सौतेली माता की बहन की लड़की से विवाह हो सकता है।

सपिण्ड लड़की से विवाह करने पर शूद्रत्व —

यो मातुश्च पितुश्च पञ्चमतया स्यात्सप्तमत्वांत्स्वसा
तां कन्यामुपयच्छते त इह जन्मन्येव शूद्राः स्मृताः।
किञ्चामी पतिता न चेत्स्वमितरे हीना जनन्यादितो
हीनां तां परिणीय नैव पतति स्वानर्थता भावतः ॥८॥

पिता की सातवीं तथा माता की पाँचवीं पीढ़ी से उत्पन्न लड़की से विवाह करने वाला शूद्रत्व को प्राप्त होता है। इस कर्म से वह तथा उनके माता-पिता पतित हो जाते हैं।

देशभेद से सपिण्डता विचार —

सा पिण्ड्यस्य निवृत्यनन्तरमयं पुत्रस्सवित्रोस्वसा
सोद्वाह्या यदि पुत्रिका व चनतो देशेऽनिषिद्धां विदुः।
सङ्कोच्यापि सपिण्डतामकथयस्तन्नर्मदादक्षिणे
तीरे पञ्च पितुश्च मातुरुत चेद्गोत्रत्रयाभ्यन्तरे ॥९॥

सपिण्डता से आगे यदि कोई लड़की लड़के की माता की बहिन निकलती है अथवा इस रीति से पुत्री निकलती है तो विवाह हो सकता है। यह नर्मदा के दक्षिण में प्रचलित है। सपिण्डता यदि छुपी भी हो तो

उपरोक्त देशों में, पिता तथा माता की क्रमशः पाँचवीं तथा तीसरी पीढ़ी में विवाह की आज्ञा है।

मामा की लड़की से विवाह निषेध—

धर्मोच्छित्तिरियं द्विजस्य दशमादङ्गस्य चासप्तमात्
पिण्डस्यापि तृतीयतो यदि भवेत्सब्रह्महैवाथवा।
गोत्रस्येव हिता हि मातुलसुता चार्णक्रयस्त्रीसभा-
पंक्ति पर्युषितं च मातुलसुतोद्वाहं पितृष्वस्त्रियाम् ॥१०॥

ब्राह्मणों में पिता-माता की क्रमशः सातवीं तथा पाँचवीं पीढ़ी में विवाह होना धर्म विरुद्ध है। तीन पीढ़ियों में होना तो ब्रह्महत्या के पाप के समान है। अपने मामा की लड़की के साथ विवाह करना मना है।

इसी प्रकार अपनी बुआ की लड़की या लड़के से भी विवाह वर्जित है। ये परस्पर भाई-बहन ही होते हैं। भ्रम है कि दक्षिण भारत में प्रायः मामा की लड़की से विवाह हो जाता है। यहाँ यह विषय स्पष्ट कर भ्रम का निराकरण किया गया है। शूद्रों में ही यह प्रथा है न कि द्विजातियों में।

ममेरी फुफेरी बहन से विवाह होने पर प्रायश्चित्त—

ऊढ्वा मातुलकन्यकां स्वजननीगोत्रां समानर्षजां
स्वस्त्रीयां प्रसवः पितृष्वसृसुतां त्यक्त्वैव चान्द्रायणम्।
कुर्याद्दक्षिणदेशजैः स्वजननीसोदर्यजो दूष्यते
मत्स्यादाः कति जारगा युवतयः क्वासीधुपानाः क्व च ॥११॥

यदि किसी का अपने मामा की लड़की से, अथवा अपनी माता के गोत्र अथवा प्रवर वाली से, अथवा बहिन की पुत्री से, अथवा पिता की बहिन की पुत्री से विवाह हो जाए तो उसके प्रायश्चित्त रूप में चांद्रायण व्रत करना चाहिए और विवाह रद्द कर देना चाहिए। दक्षिण में लोग अपने मामा की लड़कियों से विवाह कर लेते हैं; परन्तु ऐसा प्रचलन मछली पकड़ने वाले मांसाहारी मद्य पीने वाले तथा चरित्रहीन लोगों में होता है।

उक्त व्यक्ति की पंक्ति भ्रष्टता —

स्पृश्यत्वो युवती क्व मातुलसुतोद्वाहो वृषल्याः पतिः
न श्राद्धे विहितौ तथा शतपथी (दी) श्रौतो विधिर्दृश्यते ।
तृप्तामित्यृतवह्निलोष्णसविष्वप्रत्ययो वा परं
दृष्टान्तो न विधिर्न वा जनमतं तद्दक्षिणेऽदक्षिणम् ॥१२॥

रजोधर्म से निवृत्त स्त्री को तो श्राद्ध खिलाया जाए, परन्तु एक ऐसे पुरुष को नहीं जिसने अपने मामा की लड़की से विवाह किया हो अथवा जिस ब्राह्मण ने शूद्रा से विवाह किया हो। आवारा स्त्री को श्राद्ध न देने का वैदिक विधान है। श्राद्ध में "मैं तृप्त हुई" ऐसा कहना होता है।

दृष्टान्त से समझिए, कोई भी व्यक्ति ऐसा कैसे कह सकता है कि मैं सत्य, सूर्य व अग्नि में विश्वास नहीं रखता हूँ। अर्थात् सभी को यह कहना पड़ता है कि मैं उक्त विषयों में विश्वास रखकर कहता हूँ। यह केवल एक उदाहरण है, ऐसा नियम या प्रथा दक्षिण भारत में नहीं है।

सापिण्ड्यं भवति त्रिपूरुषमिह सावर्ण्यमात्रोद्भवा
ये केचित्कुलभिन्नमातृजनिता सर्वेऽपि ते भ्रातरः।
सर्वा मातर एव तातवनिता तद्भ्रातरो मातुला,
दत्तस्य स्वकुलेषु सप्त पुरुषा गोप्तुस्तु संङ्कोचताः ॥१३॥

किसी लड़की की माता यदि पिता के वर्ण की ही हो तो तीन पीढ़ी तक सपिण्डता है। उससे ऊपर विवाह हो सकता है।

यदि किसी की माता का वर्ण पिता के वर्ण से भिन्न हो तो उनके समस्त बच्चे परस्पर भाई-बहन हैं, वे स्त्रियाँ माताएँ हैं और उनके सभी भाई मामा हैं। अतः विवाह नहीं हो सकता।

अपने ही कुल में यदि लड़का गोद गया हो तो उसकी सपिण्डता सात पीढ़ी तक चलेगी। परन्तु क्षत्रियों के लिए यह समय कम होता है।

इनसे विवाह नहीं करना चाहिए

नोद्वाह्या स्वपितृव्यपत्निसहजा सापत्न्यमातृष्वसा
तत्पुत्र्यौ च सहोदरस्य गृहिणी सोदर्यपि स्वात्मसूः।
स्वोपाध्यायतनूभवा सुतसुता नोद्वाहयोग्या भवेत्
पैत्र्यस्यैव विचिन्तयेत्प्रवरभिन्नत्वं न मातुर्भवेत् ॥१४॥

इन सम्बन्धों में विवाह नहीं करना चाहिए—

(i) अपनी चाची की बहन अर्थात् चाचा की साली।

(ii) अपनी सौतेली माँ की बहन अर्थात् सौतेली मौसी।

(iii) चाची की बहिन की बेटी या बेटा।

(iv) सौतेली मौसी की बेटी या बेटा।

(v) भाई की पत्नी अर्थात् सगी भाभी की बहन अर्थात् भाई की साली।

(यहाँ एक ही घर में दो सगे भाइयों व सगी बहनों का परस्पर विवाह गलत बताया गया है यही शास्त्रसिद्ध भी है)

(vi) अपनी माता की बहन अर्थात् सगी मौसी।

(vii) अपने गुरु की लड़की या लड़का।

(viii) प्रवरों में भेद पिता की कुल परम्परा के अनुसार समझना चाहिए। माता के सम्बन्ध में यह विषय विचारणीय नहीं है।

लड़की के घर पर नहीं खाना चाहिए

आदौ मित्रमुखावलोकनमुदो न प्राशयेदात्मजा-
गेहे कोकुद आदिविष्णुरिति नो जामातरं कोपयेत्।
नार्च्यं लिंगयुगं सुदर्शनयुगं नो भास्करद्वन्द्वकं
सालिग्रामयुगं च नैव शुभदं शक्तित्रयं शाङ्करे ॥१५॥

सम्बन्धियों के दर्शन की प्रसन्नता के कारण अपनी लड़की के घर, उसकी शादी के बाद नहीं खाना चाहिए। जामाता को भगवान् विष्णु का रूप समझकर अपने घर में कभी भी उसका निरादर न करे। एक ही घर में भगवान शिव के दो लिङ्ग, भगवान विष्णु के दो चक्र, दो सूर्य की मूर्तियाँ, दो शालिग्राम, सुब्रह्मण्यक की तीन शक्तियों की पूजा न करे क्योंकि ऐसा करना शुभ नहीं है।

एक घर में दो सालिग्रामों की पूजा अशुभ—

सालिग्रामयुजि द्वयं न विहितं चैकं विना युज्यते
प्राच्यं भिन्नमपि स्वचक्रसहितं लिङ्गं पुनः शोधयेत्।
लिंगोच्छ्रायसमोऽप्यमस्तकवृतस्त्रैगुण्यवद्वृत्तता
तद्वत्पीठमपि प्रणालमपि तत्तत्पञ्चसूत्रीक्रमः ॥१६॥

जिस घर में दो शालिग्राम हों, एक की पूजा करे। यदि शालिग्राम टूटा भी हो तो पूजनीय है, किन्तु उसका चक्र ठीक हो। शिवलिंग को पूर्ण करके तथा शोधित करके ही पूजा करें। शिवलिंग एक जैसी ऊँचाई के हों। उनका ऊपरी भाग ढका हुआ न हो। लिंग की ऊँचाई से उसकी परिधि तीन गुना होनी चाहिए, और पीठ की ऊँचाई से पाँच गुना होनी चाहिए।

पितश्राद्ध के साथ मामा का श्राद्ध आवश्यक —

यः कुर्यात्पितृपार्वणं सुदिवसे कार्यं समातामहं
नो चेद्यः पितृहा विहाय विहितप्रत्याब्दिकाद्यादिकम्।
पत्नीभिः सह तत्पृथक्त्वमुदितं वृद्धौ गयायाष्टके
धर्मो दैवविधिष्वथोऽर्हति गृहे पत्न्यन्वथा दास्यति ॥१७॥

जो व्यक्ति किसी शुभ दिन अपने पिता का श्राद्ध करे उसी दिन मामा का भी करे। ऐसा न करने से पितृहत्या का पाप लगता है। वार्षिक श्राद्ध कर्म पितृ वर्ग की माताओं का पृथक्-पृथक् करना चाहिए। तीन प्रकार के श्राद्ध वृद्धि, गया और अष्टक तथा अन्य देव कर्म मनुष्य का धार्मिक कर्तव्य है। यदि श्राद्ध कर्म गृह में किया जाए तो स्त्री पति के हाथ में पिण्ड दे।

ज्येष्ठ सन्तान का विवाह ज्येष्ठ में नहीं—

जन्मज्यैष्ठ्यमथोदरे निपतनं रेतोनिषेकक्रमा-
द्यद्वक्त्रं प्रथमं तु पश्यति पिता स ज्येष्ठ इत्युच्यते।
त्रिज्यैष्ठ्यं परिवर्जनीयमथ तज्ज्येष्ठं द्वयं मंगलं
रुग्मिण्यार्तवशोधनं त्वितरयोः स्पृश्यावगाहैः कृते ॥१८॥

यमल जातक हों तो उनमें बड़ा वह है जिसका बीज पहले पड़ा है, परन्तु इस बात का निर्णय इस प्रकार है कि जिसको पिता ने पहले देखा हो वह ज्येष्ठ है। त्रिज्येष्ठ से बचना चाहिए अर्थात् ज्येष्ठा नक्षत्र में उत्पन्न ज्येष्ठ पुत्र अथवा पुत्री का विवाह ज्येष्ठ के महीने में नहीं करना चाहिए। यह नियम उपनयन संस्कार के लिए भी है। इसी प्रकार 'ज्येष्ठ द्वय' को भी छोड़ना चाहिए अर्थात् सबसे बड़े पुत्र का विवाह अथवा अन्य शुभ संस्कार ज्येष्ठ के महीने में नहीं करना चाहिए। भाई-बहिन

के लिए किए गए दो शुभ कृत्यों में न्यून से न्यून दो मास का अन्तर होना चाहिए। अन्य कृत्य अस्पृश्यता न होने की दशा में स्थानान्तर किए जा सकते हैं।

बारह प्रकार के पुत्र—

स्वौदर्यो (स) दुहितुस्सुतस्स्ववनिताक्षेत्रोद्भवः क्षेत्रजः
कानोनश्च पुनर्भुवोऽपि तनयो दत्तः क्रयात्कृत्रिमः।
दत्तात्मापि सहोढगूढतनयौ तत्रापविद्धः क्रमात्
पुत्रा द्वादश तत्र दत्तजनितावन्ये निषिद्धाः कलौ ॥१६॥

बारह प्रकार के पुत्र होते हैं—(१) अपना पुत्र (२) लड़की का पुत्र (३) अपनी स्त्री से दूसरे पुरुष द्वारा उत्पन्न (४) अविवाहित कन्या से उत्पन्न (५) पुर्नविवाहित स्त्री से उत्पन्न (६) दूसरे को गोद दिया हुआ।(७) माता-पिता से खरीदा हुआ (८) शुभ गुणों के कारण बनाया गया (९) अनाथ होने अथवा त्यक्त होने के कारण बना हुआ (१०) विवाह समय में गर्भवती स्त्री का (११) अपनो स्त्रो से ऐसे पुरुष द्वारा उत्पन्न किया गया पुत्र जिसका पता न लगाया जा सके (१२) माँ अथवा बाप से त्यक्त जो दूसरों से पाला गया हो। इस युग में केवल (१) अपने पुत्र तथा (६) दत्तक पुत्र को ठीक माना गया है।

पुत्र गोद लेने की विधि—

पुत्रार्थं समुपोष्य कुण्डलयुगं वस्त्रद्वयाद्यं ददद्-
यो यज्ञेन वितीर्य पुत्रमथ देवस्येति गृह्णन्मुदा।
हुत्वा व्याहृतिभिः स्वगृह्यविधिना प्रातर्भगाद्यैरथो
सम्भोज्य द्विजसन्तति चरुहुति यस्त्वाहृदेत्वावदेत् ॥२०॥

दत्तक पुत्र लेने के लिए यज्ञ वेदी पर बालक को कानों के भूषण, वस्त्र तथा अन्य वस्तुएँ देकर और उसको ईश्वर प्रदत्त समझ कर सहर्ष ग्रहण करना चाहिए। यज्ञाग्नि में चरु की आहुति डालनी चाहिए। 'प्रातः भर्ग' तथा 'यस्त्वाहृदे' आदि वेदमन्त्रों का उच्चारण गृह्यसूत्रों के अनुसार कर, ब्राह्मणों को भोजन करवाना चाहिए।

दत्तक पुत्र होने के अधिकारी—

भ्रात्रादेस्तनयस्त्रिवर्गमधुरो ग्राह्यो न वैषम्यदो
न ज्येष्ठो विधवा न दातुमुचिता नादातुमप्यक्रमात् ।
हीनोऽपि प्रवरे स्वभर्त्रनलवद्धोमश्च बोद्धयादित-
स्त्वाचूडादुपनायितेऽतिविहितो दासो न शूद्रस्य वा ॥२१॥

गोद लिए जाने वाला भाई अथवा भाई-सम सम्बन्धी का बेटा होना चाहिए। मधुर सद्भावना वाला, वाणी तथा कर्म से मधुर हो, बहुत बड़ा अथवा उपद्रवी न हो। विधवा पुत्र गोद देने अथवा लेने का अधिकार नहीं रखती। लड़का प्रवर में छोटा भी हो तो भी गोद ले सकते हैं। यज्ञ गोद लेने वाले पिता की कुल परम्परानुसार होना चाहिए। मन्त्रारम्भ 'वोद्धि' से हो, चूड़ाकर्म से पहले-पहल यह कार्य हो, उपनयन के अनन्तर नहीं। दास अथवा शूद्र का पुत्र गोद न लिया जाए।

गोद लेने का कर्मकाण्ड तद्विषयक ग्रन्थों में देख लेना चाहिए। ये मन्त्र वहाँ पूर्ण रूप में मिल जाएंगे। संक्षिप्त विधि के लिए 'कर्मठगुरु' का अवलोकन करें।

ब्राह्मण शूद्र का विवेक—

शूद्रा दत्तधना द्विजा यदि मदीयाज्ञा त्वया तन्यते
ते शूद्राः स तु तत्फलं च लभते शूद्रस्य पाराशरः ।
विप्रद्वारिकृते च हावनविधौ तत्सिद्धिरित्युक्तवान्
दत्तोऽसौ जनकस्य कर्तृविरहे श्राद्धं च कुर्यात्स्वयम् ॥२२॥

शूद्र स्त्रियों से धन लेने वाले और उनकी दासवत् सेवा करने वाले ब्राह्मण भी शूद्रत्व का फल पाते हैं। ऐसा पाराशर कहते हैं। ब्राह्मण के घर शूद्र द्वारा करवाया हुआ यज्ञ शूद्र को फलदायी होगा। जिसने गोद लिया है यदि उसका श्राद्ध करने वाला अन्य कोई न हो तो गोद लिया पुत्र श्राद्ध करे।

गोद लिए पुत्र के गोत्र प्रवरादि का ज्ञान—

दत्तक्रीतमुखाः सगोत्रविहिता गोत्रं प्रयान्त्येव नो
साविण्डयं तु वसिष्ठवाक्यमुत दत्तोऽप्यन्यशाखोद्भवः ।
पुत्रश्चेदुपनायितः स्वविधिना स्वस्यैव शाखादिभा-
गंशादी च सपिंडतश्च न तदा शौचं स्वकं नान्यथा ॥२३॥

दत्तक तथा क्रीत पुत्र गोद में आने के अनन्तर दूसरे कुल का गोत्र तो ग्रहण कर सकते हैं, परन्तु सपिण्डता नहीं, यह वशिष्ठ जी का मत है। पुत्र को गोद लेने वाले पिता की वैदिक शाखा मिल जाती है। अपने पिता की सम्पत्ति में उसका अधिकार है, यह अधिकार सपिण्डता पर निर्भर नहीं करता। शौच (सूतक) आदि भी उसे गोद लेने वाले पिता की तरह लगता है।

गोत्रं रिक्थमुत त्यजत्यपि पितुर्दत्तस्तु गोप्तुंभजे-
त्पिण्डोऽस्मात्तदपैति यत्तदनुगस्वाहा तथा च स्वधा।
द्वयामुष्यायणता न चेदथ सुता पुत्रार्थिना दीयते
तत्पुत्रोऽपि निजौरसेन सदृशो नित्यात्र सा पुत्रता ॥२४॥

गोद लिया गया पुत्र अपने पिता की सम्पत्ति, गोत्र तथा पिण्डदान के अधिकार खोकर गोद लेने वाले के ग्रहण करता है। गोद लिए जाने के बाद वह जन्म देने वाले पिता को पिण्ड नहीं दे सकता। जब लड़की का लड़का गोद लिया जाए जो दौहित्र पुत्रवत् है। यह संबन्ध पक्का है।

विवाह व श्राद्ध का विशेष नियम—

उद्वोढा स्वसहोदरीसहभुवो जायानुजामुद्वहेत्
योऽनग्निर्यदि दूरदार उत तत्पित्राब्दिके भ्रातृभिः।
श्राद्धं कारयितव्यमग्निसहितैर्नो भागभाजो यदि
सन्धायाग्निमथाहुतीर्विहितत‌न्नित्यश्चरस्तं त्यजेत् ॥२५॥

बहनोई की छोटी बहिन से अथवा बड़े भाई की स्त्री की छोटी बहिन से विवाह हो सकता है। जो विधुर हो या जिसकी स्त्री दूर हो वह अपने पिता का श्राद्ध अपने भाइयों द्वारा जो गार्हपत्य अग्नि रखते हों तथा जिनकी पत्नी साथ हो, करवाए। जो भोग के अधिकारी हों वे भी न करें। दैनिक अग्नि से वार्षिक श्राद्ध न करें, क्योंकि इसे प्रज्वलित कर तथा पिण्ड देकर छोड़ना होता है।

श्राद्ध के अधिकारी लोग—

पाणौ होमविधिर्न साम्प्रतमयं साहस्यको बह्वृचां
स्यालो वा यदि भावुको यदुभयोः स्यातां च जाये उभौ।
एकोद्भूतसहोदरीसहभुवौ पुत्रो च पुत्रस्तदा
न स्याताममिति षष्ठको भृगुमतं क्वातेऽवयं सिद्धयति ॥२६॥

श्राद्ध का होम उन ब्राह्मणों द्वारा नहीं होना चाहिए जिनको भोजन कराया गया हो। यह भृगु के अनुसार ऋग्वेदानुयायी मत वालों का अशुद्ध कार्य है। अपनी स्त्री का भाई तथा अपनी बहिन का पति (यदि उनकी स्त्रियाँ जीवित हों) अपनी बहिन, भाई, लड़की तथा लड़का ये ६ श्राद्ध न करें क्योंकि ऐसा करना वास्तविक श्राद्ध न होगा।

श्राद्ध में योगी व तत्ववेत्ता के निमन्त्रण का फल—

भिक्षुर्योगपरश्च तत्वपथगस्त्वेते ह्यलभ्या भुवि
श्राद्धे तान्विदधीत लुप्तवितथस्फूर्त्यैकपूर्तिप्रदान्।
शूद्रेणार्पितमभ्यनाद्यमवनीदेवस्य भक्तं तथा
तस्यान्नं च निमन्त्रितं द्विजनुषा श्राद्धे विभक्तीर्विना ॥२७॥

किसी भिक्षु, योगी अथवा तत्ववेत्ता का श्राद्ध खाने के लिए उपलब्ध होना दुर्लभ है। ऐसे पुरुष की सम्पूर्ण तुष्टि करनी चाहिए। शूद्र के श्राद्ध का अन्न ब्राह्मण न खाए। श्राद्ध में देवार्पित खाद्य भी ब्राह्मण, शूद्र को नियम के विरुद्ध न दे।

भूमि व गृह के दान का नियम—

यद्गेहस्य फलं तदेव धरणीदेवस्य भूस्पर्शने
सस्त्रीबालसुतस्य तत्फलमभूद्गण्यं न शेषाहिना।
भूदेवोऽन्यकुलीनकर्मकरणे भ्रश्यत्यमुष्मात्सुखा-
च्छूद्रो न द्विजकर्मणोर्जितफलो नान्यत्र पाराशरात् ॥२८॥

ब्राह्मण को दान में दिया हुआ मकान तभी फलकारी है जब उस के साथ कुछ भूमि भी दी जाए। पुत्रों तथा पत्नी सहित ब्राह्मण को दान देने के फल का माहात्म्य का तो आदि शेष भी वर्णन नहीं कर सकता। अन्यों के धर्म को अपनाने वाला ब्राह्मण परलोक में सुख न पाएगा। इसी प्रकार ब्राह्मण का कर्म करके शूद्र भी पद अथवा पुण्य न पाएगा। परन्तु पाराशर मुनि का मत इसके विरुद्ध है।

समुद्र स्नान का निषिद्ध समय—

मन्दांगारकशुक्रवासरदिने नाब्धौ सुतार्थी जनः
स्नायाद्राहुविलोकनात्पुरमुतो विद्धे च पर्वण्यपि।
अभ्यांगऽव्यवगाहमैथुनमृतिक्षौरेष्वथावारणे
ग्राह्या सर्वमतैर्बुधैरपि तिथिर्विद्धाऽपि तात्कालिकी ॥२९॥

सन्तानेच्छुक व्यक्ति सागर में रविवार, मंगलवार, शुक्रवार राहु काल में या उस लग्न में जिस पर राहु की दृष्टि हो, पर्वों पर (जैसे पूर्णिमा, अमावस्या, संक्रान्ति आदि) जो विद्ध हो, स्नान न करे। तिथि विद्धा भी हो तो भी विद्वानों के अनुसार तेल लगाकर, मैथुन के अनन्तर, मृत्यु के उपरान्त, क्षौर कर्म के उपरान्त, सूतक के उपरान्त स्नान किया जा सकता है।

दान, विधवा भोजन व भिक्षु के कुछ विशेष आचरण—

सूर्योद्धानघटीतिथिर्वितरणस्नानादितो गृह्यते
भिक्षोर्भक्षणमन्तिमेऽपि दिवसस्याप्यष्टमेशे विधिः।
नो रात्रौ विधवाऽपि तादृशविधिर्ग्राह्या निशीथाशने
यास्ता पर्वसु नाप्यपो यदि फलान्यश्नीत नान्नं निशि ॥३०॥

दान देने, यज्ञ करने व स्नानादि के कार्य में सूर्योदय व्यापिनी तिथि ही लेनी चाहिए।

भिक्षु को दिन के आठवें भाग में केवल एक बार खाना चाहिए। रात में कभी न खाए।

विधवा भी दिन में एक बार भक्षण करे व रात्रि में कदापि न करे। पर्व दिनों में विधवा को जल भी नहीं लेना चाहिए।

पर्व की रात्रि में वह केवल फल खा सकती है, अन्न नहीं।

दत्तक पुत्र व दौहित्र (धेवता) के पिण्डदानादि अधिकार—

दत्तो नित्य उताप्यनित्य उदितोद् द्व्यामुष्यभावो नये-
त्पिण्डं द्वावधिकृत्य कृत्यविधिषु स्यादेव पुत्रासुतः।
वासिष्ठोक्तिरुभौ न साम्प्रत भावित्याह कात्यायनो
नप्तस्तुल्यमसौ प्रसूजनयितुः कार्येति कार्ष्णाजिनिः ॥३१॥

नित्य तथा अनित्य उदित दो प्रकार के दत्तक पुत्र हैं। लड़की के पुत्र को दोहरा पुत्रत्व प्राप्त है। वह दोनों कुलों के श्राद्ध तथा तर्पण कर सकता है। ऐसा वशिष्ठ जी का मत है। परन्तु कात्यायन ऋषि कहते हैं कि ऐसा उचित नहीं। व्यास जी का कहना है वह नाना का श्राद्ध कर सकता है।

दौहित्र के अधिकार (अन्य मत)—

एवं प्राह महांश्च वृद्धहरितो हेमाद्रिरप्याह त
दृत्ताद्या जनकस्य तत्तनयिनी यो दातृपित्रा समम्।
नप्तुस्तस्य सपिण्डनं च कलयेद्वित्ते द्वयोस्तद्द्वयो
र्गोत्रं श्राद्धविधौ तु गोप्तुरुभयोर्ग्राह्यं विवाहे सुता-
पुत्रस्यैतदनिष्टमात्मजननी मातामही सम्मिता ॥३२॥

इसी प्रकार ऋषि हरित तथा हेमाद्रि का मत है कि वह दोनों का श्राद्ध कर सकता है। वह दोनों प्रकार के सपिण्डियों के साथ मिलकर कार्य कर सकता है। दोनों की सम्पत्ति में उसका अधिकार रहता है। श्राद्ध के विषय में उसका गोत्र वही होना चाहिए जो कि गोद लेने वाले पिता का है। अपने विवाह के समय वह दोनों कुलों के गोत्र का प्रयोग कर सकता है। मातृपक्ष से विवाह-सम्बन्ध उसके लिए उचित नहीं। क्योंकि उसकी माता तथा नानी एक ही स्तरपर हैं।

उपनयन संस्कार के विशेष नियम—

नान्दीकर्मणि निर्वृते भवति चेदुल्काग्निवृष्ट्यादिकं
चाशौचं विदधीत नोपनयनं मातू रजोदर्शने।
ऊर्ध्वं चेद्वटुभोजनान्न हि परित्याज्यं न कन्योद्वहे
दद्यादेव पिता वटोर्न यदि सा माता न दोषो गुरोः ॥३३॥

नान्दीकर्म निवृत्त हो जाने पर भी उल्कापात, अग्निवृष्टि, माता का रजोदर्शन यदि हो जाए तो उपनयन संस्कार स्थगित कर दे। ब्रह्म-चारी भोजन के बाद ये घटनायें हों तो उपनयन कर लेना चाहिए। यही नियम अपनी पुत्री के विवाह के समय बरते। यदि माता की मृत्यु हो चुकी हो, तब पिता उपनयन करवा सकता है। हाँ, सूतक आदि नहीं होना चाहिए।

उपनयन व विवाह के बाद भोजन के नियम—

माता साकमिहैव भोजनमथो मौहूर्तिकात्कर्मणो
वध्वा चैव वरस्य चौलविधिना कार्याः शिखास्त्वान्वयात्।
गृह्याग्नेरुपनायनाग्निरधमो लौक्याग्निरन्यानले
संसज्येत तदाहवीत विबुधैः पाह्यत्र नाज्ञातिभिः ॥३४॥

जब नान्दीकर्म हो जाए तो ब्रह्मचारी माता के साथ भोजन करे, अकेला नहीं। विवाह-उपरान्त वर भी वधू के साथ खाना खाए। कुल-रीति के अनुसार शौच करवाये। उपनयन-समय उद्दीप्त अग्नि गृह्य-अग्नि से घटिया है। यदि यज्ञाग्नि साधारण अग्नि से मिल जावे तो विद्वान् उसकी 'पाहि' मन्त्र से पूजा करे। परन्तु जो जाति के न हों वह पूजा में सम्मिलित न हों।

स्मार्तो यद्यनुगच्छतेऽग्निरथ शंनोदेवृचा चोक्ष्य
तद्भस्माथो जुहुयात्स पाहिविधिना यत्राप्यनाज्ञातिभिः।
गृह्याग्न्योश्च विमेलन यदि पुरश्चोपासनारम्भक-
स्थालीपाकमथ प्रधानकलनात्कृत्वा प्रवेशाहुतीः ॥३५॥

स्मार्त अग्नि यदि साधारण अग्नि के पीछे हो तो इसकी राख को "शन्नो देवी" के मन्त्र से बिखेरे। यदि गार्हपत्य अथवा यज्ञ-अग्नि की पूजा से पहले गृह्य अग्नि तथा साधारण अग्नि मिल जाये तो जो प्रधान अग्नि हो उसको आहुति देनी चाहिए।

पश्चाच्चेत्स विभज्य पाकविधिना पूर्णाहुतीनं स्रुवे-
णाज्यं वा जुहुयात्तदा विविचयेत्वाधीयते पुंमतैः।
नाशे तत्समिधोरधस्तनिशेन्नाग्निर्हुवेदाहुतीः
सोमस्याऽपि तदीयमाहुतिगणं कुर्यान्न वा संस्मरेत् ॥३६॥

यज्ञ आरम्भ होने के बाद यदि अग्नियों का मिश्रण हुआ हो तो अग्नि दो भागों में विभक्त करके एक भाग में स्थालीपाक सम्पूर्ण करके अन्तिम आहुति देनी चाहिए। परन्तु घी को स्रुवा से नहीं डालना चाहिए। यदि स्रुवा की समिधा नष्ट हो जाए तो स्रुवा रख दो। यदि स्रुवा लाना भूल गई हो तो सोम को आहुति देनी चाहिए।

पुर्नविवाह का नियम—

उद्वाहो यदि वत्सरे तु विषमे भद्रः समे नो शुभः
पूर्वोढामृतवत्सराद्यदि सुता चोद्वाहपूर्वं रजः।
उत्सृज्यात्पितरौ च सोदरजनाः सर्वे महापापिनो
नत्वीयादथ पूर्वमेव सुदतीं गच्छेत्पतिः पातकी ॥३७॥

जब स्त्री का देहान्त हो जाए तो पुनर्विवाह प्रथम विवाह के वर्ष से विषम वर्षों में करे। सम वर्षों में की गई शादी अशुभ होती है। यदि लड़की विवाह से पूर्व रजस्वला हो तो उसके पिता, माता, भाई-बन्धुओं को पाप लगता है। पति को स्त्री से तब तक सम्भोग नहीं करना चाहिए जब तक वह उपयुक्त आयु को प्राप्त न हो।

नववर्षारम्भ व रामनवमी का विचार --

वर्षादिप्रतिपन्नवेधसहिता ग्राह्या रघूणां पते:
मध्याह्ने नवमीतिथौ भगवती जन्माभवत्सा तिथि:।
साक्षान्मोक्षविधायिनी व्रतवृतां श्रीरामपूजायुजां
त्याज्या पूर्वदिनान्त्यवेधसहिता ह्यादित्यभेनोत्तमा ॥३८॥

चैत्र शुक्ल प्रतिपदा अमावस्या से "विद्धा" न होनी चाहिए। यदि हो तो त्याज्य है। रघुकुलपति श्री राम जी का जन्म नवमी तिथि को मध्याह्न में हुआ था। यह तिथि मोक्षदायिनी है। रामनवमी का व्रत रखने वालों के लिए वह नवमी जो अष्टमी से "विद्ध", हो त्याज्य है। परन्तु यदि उसी दिन पुनर्वसु नक्षत्र भी हो तो वह दिन भगवान् राम की पूजा के लिए बहुत शुभ है।

परशुराम जयन्ती आदि का विवेक—

त्रेतादिर्भृगुरामजन्मदिवसो वैशाखमासे शुभ:
तार्तीया च तिथिर्न पूर्वनिहिता मध्याह्नगा गृह्यताम्।
श्राद्धादौ च परैव सा नरहरेरिष्टा जयन्ती शुभा
सायं व्यापिनिनी व्रतप्रिमतमा नानाङ्ग्युक्ता शुभा ॥३९॥

त्रेता के आदि में भगवान् परशुराम का जन्म हुआ। वैशाख मास की तृतीया अक्षय तिथि थी। तृतीया उस दिन मध्याह्न को होनी चाहिए और द्वितीया से विद्धा नहीं होनी चाहिए। श्राद्ध के लिए वही तिथि मध्याह्नान्तर तक होनी चाहिए। श्री नृसिंह का उत्सव उस तिथि को, जो सायंकाल तक हो, मानना चाहिए। परन्तु यदि यह उस दिन हो जिस दिन स्वाति नक्षत्र हो तो शुभ नहीं।

श्रावणी में उपनयन के नियम

श्रावण्यां कथितं नवस्य हि वटोर्गाह्यै रुपाकर्म तत्
सङ्क्रान्तिग्रहणे भृगोश्च धिषणस्यास्ते न कार्यं द्विजैः।
पर्वण्येव यजुर्विदः श्रवणभे कुर्युर्व्रतं वह्वृचा
हस्तर्क्षेऽपि च सामिनो भगवतो जन्माष्टमी वक्ष्यते ।।४०।।

गृह्य सूत्रों में लिखा है कि ब्रह्मचारी का उपनयन श्रावण मास में करना चाहिए। परन्तु ब्राह्मणों को नहीं करना चाहिए यदि उस दिन संक्रान्ति हो अथवा गुरु व शुक्र अस्त हों। यजुर्वेदानुयायी इसको पूर्णिमा पर करते हैं। ऋग्वेदीय जिस दिन श्रवण नक्षत्र हो उस दिन करते हैं। परन्तु सामवेदी हस्त नक्षत्र वाले दिन भी कर लेते हैं।

अब मैं श्रीकृष्ण जन्माष्टमी की पुण्य तिथि के सम्बन्ध में कहूंगा।

श्रीकृष्ण जन्माष्टमी विचार

श्रावण्यामधमाष्टमी भगवतः कृष्णस्य सा जन्मभू
रोहिण्या यदि संयुताऽतिफलदा ज्ञस्यापि वारेण च।
यस्यामर्धनिशीथगा यदि तिथिर्ग्राह्योभयत्रैवमि-
त्यन्या यत्र न चेतरैव न तु तत्पूर्वेण विद्धा शुभा ।।४१।।

श्रावणी पूर्णिमा के बाद आने वाली अष्टमी भगवान् कृष्ण का अवतार लेने का दिन है। यदि उस तिथि को रोहिणी नक्षत्र और बुधवार भी हो तो वह शुभकारी है। अष्टमी अर्द्धरात्रि तक होनी चाहिए और सप्तमी से विद्ध नहीं होनी चाहिए।

जन्माष्टमी व्रतपारणा का नियम—

या यामत्रितयोर्ध्वमप्यथ पुनः प्रातश्चरेत्पारणां
भान्ते वा च तिथेरुतान्त इति सा श्रीशैवरात्र्या समा।
भाद्रेमासि सिते गणेश्वरतिथिः सा स्याच्चतुर्थी शुभा
सा स्यात्संगवसंगता परयुता श्लाघ्या जयाख्या न तु ।।४२।।

यदि अष्टमी रात्रि में ६ घण्टों से अधिक हो तो व्रत की पारणा अगले दिन प्रातःकाल अथवा नक्षत्र के अन्त में करे, क्योंकि यह शिव-रात्रि की भाँति पुण्यदायक है। भादों के शुक्ल पक्ष की चतुर्थी श्री गणेश

पूजा के लिए उत्तम है। यदि यह पंचमी को भी छू जाये अथवा उस दिन चित्रा नक्षत्र हो तो शुभकर है। परन्तु यदि तृतीया को छू जाये तब नहीं।

ऋषि पंचमी, अनन्त चतुर्दशी व नरक चतुर्दशी —

मुख्या स्यादृषिपञ्चमी गणयुता नो षष्ठियुता शुभा
मध्याह्ने यदि सा चतुर्दशदिनेऽनन्तं तदा पूजयेत्।
पूर्णा योगवशेन पूर्णफलदा चन्द्रोदये नारकी
तैलाभ्यंगविधौ विशेषफलदा सा चाश्वयुक्कृष्णयुक् ॥४३॥

ऋषि पंचमी भी यदि छटी से छू जाए तो शुभ और चतुर्थी से छुए तो अशुभ है। यदि चतुर्दशी तिथि भादों के शुक्ल पक्ष में मध्याह्न में हो तो अनन्त भगवान् की पूजा करनी चाहिए। पूर्णिमा से युक्त होने के कारण यह शुभ फलदायिनी है। आश्विन मास कृष्ण चतुर्दशी जिसे 'नरक चतुर्दशी' कहते हैं, उन लोगों के लिए शुभप्रद है जो चन्द्रोदय के समय तेल से स्नान करें।

इसे उत्तर भारत में छोटी दीवाली के नाम से जाना जाता है व भाद्रपद शुक्ल पंचमी को ऋषि पंचमी माना जाता है।

महाशिवरात्रि आदि अन्य पर्व —

माघे मासि सिते चतुर्थदिवसे प्रातः फणीन्द्रप्रियं
स्नानं तद्रथसप्तमी रविमनोहारिण्यनुराधपे।
स्नानं कोटिरविग्रहैश्च सदृशं यद्वाद (रै) रोदर्किभिः
तस्मिन्नयच्छिवरात्रिरीश्वरसयुक्त्वार्धप्रदा चेन्निशि ॥४४॥

माघ मास के शुक्लपक्ष की चतुर्थी तिथि को प्रातःकाल का किया हुआ स्नान 'आदिशेष' को प्रिय है। इसी प्रकार का स्नान रथसप्तमीं को अनुराधा नक्षत्र वाले दिन सूर्य भगवान् को इष्ट है। इसका फल करोड़ों सूर्यग्रहणों पर अथवा बारह रात्रियों के उदयकाल पर किए गए स्नान के बराबर है। मध्य रात्रि में पड़ने वाला शिवरात्रि का पर्व (फाल्गुन कृष्ण पक्ष मास में) ईश्वर के साथ जोड़ने वाला शुभ है।

माघ शुक्ल चतुर्थी से अगले दिन हो वसन्त पंचमी होती है। इस चतुर्थी को कुन्द चतुर्थी, वरद चतुर्थी या तिल चतुर्थी कहते हैं। इससे

तीन दिन बाद सप्तमी (माघ शु० ७) को रथसप्तमी कहते हैं। इसी को आरोग्य सप्तमी भी कहते हैं। इस दिन अरुणोदय के समय स्नान करना चाहिए।

माघ्ये वाथ चतुर्दशी शिवतिथिः सा मासि मासि प्रिया
पूज्यस्तत्र शिवापतिः शिवकरः प्रीत्या प्रदोषेऽनिशम्।
सोऽपि स्यात् त्रिमुहूर्तगः सवितरि प्राप्तेऽस्तशैलं ततः
सैवोक्ता हि महानिशा निशि भवेन्मध्ये घटीयुग्मकम् ॥४५॥

माघ कृष्ण चतुर्दशी शिव तिथि है जो कि भगवान् शिव को प्रिय है। इसे महाशिव रात्रि भी कहते हैं। प्रत्येक मास की चतुर्दशी भगवान् शिव को प्रिय है। अत: सायं भगवान् शिव एवं पार्वती का अर्चन पूजन करना चाहिए। इसी प्रकार प्रत्येक दिन सायंकाल का तीन मुहूर्त (२ घण्टे २४ मिनट) का समय भगवान् शिव को प्रिय है। उस समय उनकी पूजा करनी चाहिए। महाशिव रात्रि वाले दिन मध्यरात्रि को २ घटिका का समय 'महानिशा' कहलाता है।

दक्षिण भारत में शुक्लादि मास होने के कारण वहाँ पर उत्तर भारतीय फाल्गुन कृष्ण की गणना माघ मास में ही की जाती है अतः पाठक भ्रम में न पड़ें। उत्तर भारत में महाशिवरात्रि फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशी को होती है।

एकादशी व्रत के नियम –

एकादश्युभयत्र चेन्न परतो यद् द्वादशी तां चरेत्
पूर्वा स्याद्यदि तत्परां च यतिराट् कुर्वीत वैधव्यभाक्।
युग्मं चापि परत्र नास्ति यदि साप्येकादशीद्वादशी
पूर्वैव प्रभवेत्तदा यदि भवेत्सा द्वादशी सम्मता ॥४६॥

पंचांगों में एकादशी दो प्रकार से लिखी जाती है। एक अर्थात् पहली स्मार्त व दूसरी वैष्णव। यदि निशीथव्यापिनी एकादशी (पहली) उसी दिन समाप्त हो और अगले दिन सूर्योदय के समय वह न रहे अर्थात् सूर्योदयव्यापिनी न हो तो भी अगले दिन द्वादशी में ही विधवाओं व यतियों को एकादशी का व्रत करना चाहिए। यदि दोनों दिन एकादशी रहे तो अगली एकादशी अर्थात् सूर्योदयव्यापिनी में ही यति व विधवाएँ

व्रत करें। यदि तिथि का क्षय हो तो भी अगली तिथि को सम्मिलित नाम से जैसे एकादशी, द्वादशी पुकारा जाएगा। पहली तिथि अर्थात् एकादशी की ही उस दिन प्रधानता होगी। यदि शुद्ध द्वादशी हो तो सर्वोत्तम होती है।

विद्धा चेद्विषवमुद्विमुच्य परतो नैकादशी यद्यपि
द्वादश्यां समुपोष्य कर्तुमुचितं तस्मात्परं पारणाम्।
एतद्वैष्णवसम्मतं यदि दशम्यावेधहीनां परं
द्वादश्याः परतोऽपि सा यदि तदा सा साधनीया बुधैः ।।४७।।

यदि एकादशी 'विद्धा' हो तो उसका विषवत् त्याग करना योग्य है। और अग्रिम दिन व्रत करना चाहिए, यद्यपि उस दिन एकादशी न भी हो। तदनन्तर व्रत तोड़ना चाहिए, यह वैष्णव मत है। उनके मतानुसार एकादशी में द्वादशी का किसी प्रकार का संयोग नहीं होना चाहिए और द्वादशी समाप्त होने पर भी द्वादशी में व्रत पारणा उचित है।

सूर्यग्रहण में श्राद्ध का निषेध —

ग्रस्ते भानुमति प्रयाति हि तदा प्रत्याब्दिकं तद्दिने
चन्द्रे चास्तमुपैति राहुगिलिते तत्राब्दिकं तद्भवेत्।
रात्रौ तद्ग्रहणोदितं हि विहितं श्राद्धं ततोऽन्यद्दिवा
शास्त्रं संशयितादिकं बहु तपो रूढं न गच्छेत्पुमान् ।।४८।।

यदि वार्षिक श्राद्ध वाले दिन सूर्यग्रहण हो तो उस दिन श्राद्ध न करे। यदि उस दिन चन्द्रग्रहण हो तो श्राद्ध किया जा सकता है क्योंकि चन्द्रग्रहण तथा उससे सम्बन्धित कृत्य रात को होंगे और श्राद्ध तो दिन को होता है, यदि किसी विषय में विद्वानों का मतभेद हो तो परम्परा का अनुसरण करना चाहिए और वह भी बहुमत की परम्परा का।

विवाह व श्राद्ध में सूतक होने पर—

वैवाहोत्सवयज्ञकर्मसु तदा नान्दी च दीक्षाविधि-
र्नाशौचस्य भवेत्तदा नियमिते सीमा द्विजन्मात्मनाम्।
श्राद्धे पाकपरिक्रिया यदि भवेन्मन्त्रोक्षणं ब्राह्मण-
स्यासीद्दैक्षविधिः परं तु वरयेत्सर्वत्र मान्त्रो विधिः ।।४९।।

विवाहोत्सव सम्बन्धी नान्दीकर्म तथा यज्ञ सम्बन्धी दीक्षा विधि यदि हो चुकी हो और उसके उपरान्त यदि सूतक लगे तो उसका दोष ब्राह्मणों को नहीं लगता। श्राद्धकर्म में यदि 'पाक-कर्म' हो जाए अथवा यज्ञकर्म में यदि 'दीक्षाविधि' हो जाए तो सूतक का दोष नहीं लगता। यज्ञ-विशेष तो बाद में वेद मन्त्रों द्वारा प्रारम्भ होता है।

अधिक मास के कर्म —

भानोः सङ्क्रमवर्जितो मल इति त्वाख्याधिमासश्च तं
चाहासौ श्रुतिरप्यतो न विहितं पित्र्या च दैवी क्रिया।
नित्यैवात्र विवेकिना हि विहिता षष्टिर्दिनानां हि स-
त्येको मास इहोक्तमासिकविधिर्नैवाब्दिकं दैविकम् ॥५०॥

जिस मास सूर्य संक्रान्ति न हो अर्थात् सूर्य एक राशि से दूसरी राशि में संक्रमण न करे तो उसे मलमास या अधिमास कहा जाता है। इस मास में दैवी या पितृ-सम्बन्धी क्रियाएँ (यज्ञ यागादि व वार्षिक श्राद्ध) नहीं किए जाने चाहिए ऐसी शास्त्रों की आज्ञा है। इसमें केवल नित्यकर्म सन्ध्यावन्दनादि व मासिक कृत्य किए जाते हैं। यह मास ६० दिनों का होता है।

संक्रान्तियों की शुभ घड़ियां —

प्रागूर्ध्वा दश पूर्वतः षडवनिस्तद्वत्पराः पूर्वत-
स्त्रिंशत् षोडश पूर्वतोऽथ परतः पूर्वाः पराः स्युर्दश।
पूर्वा षोडश चोत्तरा ऋतुभवः पश्चात्द्ववेदाः पुनः
पूर्वा षोडश चोत्तराः पुनरथो पुण्यास्तु मेषादितः ॥५१॥

मेष मास में संक्रान्ति काल से १० घड़ी पहले और दस पीछे का समय पुण्य माना गया है। वृषभ में १६ घड़ी पूर्व, मिथुन में १६ घड़ी संक्रान्ति के अनन्तर, कर्क में संक्रान्ति से ३० घड़ी पूर्व, सिंह में ६ घड़ी पूर्व, कन्या में १६ घड़ी बाद में, तुला में संक्रान्ति से १० घड़ी पूर्व और उपरान्त, वृश्चिक में १६ घड़ी पूर्व, धनु में १६ घड़ी उपरान्त, मकर में ४० घड़ी उपरान्त, कुम्भ में १६ घड़ी पूर्व, मीन में १६ घड़ी उपरान्त पुण्यकाल होता है।

सूर्य के एक राशि को छोड़कर दूसरी राशि में प्रवेश करने को

संक्रान्ति कहते हैं। संक्रान्ति के क्षण से पूर्व की कुछ घड़ियाँ और उपरान्त आने वाली घड़ियाँ शुभ मानी गई हैं। इन घड़ियों की शुभता मन्त्र, जाप आदि की दृष्टि से कही गई हैं। यही कारण है कि उत्तरायण काल, नव वर्ष प्रवेश, संक्रान्ति काल शुभ संज्ञक हैं।

श्राद्ध में नमस्कार का नियम—

> एकैकं विबुधेषु चर्षिसु तथा द्वौ द्वौ कृतावञ्जली
> त्रिस्त्रीश्चेत्पितृणां स्त्रिया अपि परं त्वेकैकमेवं विधिः।
> मात्रादिस्त्रय एव सर्ववनिता सामान्यमेतत्क्रमं
> श्राद्धे पूर्वमतोऽन्यपाकविधिना तद्वैश्वदेवं परम् ॥५२॥

देवताओं को एक बार, ऋषियों को दो बार और पितरों को तीन बार नमस्कार करना चाहिए। नियमानुसार स्त्री को एक बार परन्तु माता तथा माता-तुल्य सम्बन्धियों को तीन बार नमस्कार करना चाहिए। श्राद्ध में ऐसा साधारण नियम है। वैश्वदेव यज्ञ के लिए पाक की दूसरी विधि है।

जलाञ्जलि दान का विशेष नियम—

> भूमौ लोहमहेद्धकांस्यकलिते पात्रे न तोयाञ्जलीन्
> कुर्यात्तर्जं निमङ्गुलिप्रथमया योगे पितृव्याहृति।
> सर्वाङ्गुल्यपरेश्च मावरसया भक्तस्य सेद्भूस्पृशे-
> श्चित्रादिश्च न स्वयं यदि परेणोद्धृत्य भुञ्ज्यादथ ॥५३॥

श्रद्धाञ्जलि (जल) भूमि पर, लोहे अथवा काँसी के बर्तन पर नहीं छोड़नी चाहिए। अँगूठे और तर्जनी को मिलाना पितरों के आह्वान की मुद्रा है। शेष अंगुलियों से श्रद्धापूर्वक चावल अथवा अन्न पृथ्वी पर अर्पित किया जा सकता है। यह चित्राअन्न मनुष्य न स्वयं खाए न किसी दूसरे व्यक्ति को खिलाए।

भोजन के समय का नियम व मुद्राएँ

> साङ्गुष्ठं सह मध्यतर्जनिसमध्यानामिकं तत्कनि-
> ष्ठानामी च कनिष्ठतर्जनियुतं सर्वाङ्गुलीभिर्हुवेत्।
> प्राणादीन् प्रथमे न सार्धमुत तन्मौनित्वराश्नीत वै
> कन्यादानविधौ वरोऽपि तदगो चोपावितो चेन्निशि ॥५४॥

भोजन करने से पूर्व प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान इन पाँच वायुओं के अभिमानी देवों को भोजन अर्पित करते समय, अन्न को क्रमशः (१) प्राण-आहुति के लिए अँगूठे, मध्यमा और तर्जनी से (२) अँगूठे, मध्यमा और कनिष्ठा से अपान आहुति (३) अँगूठे, मध्यमा तथा अनामिका से अपान आहुति (४) अँगूठे, कनिष्ठा तथा तर्जनी से उदान आहुति (५) समान आहुति में सारी अंगुलियों से अन्न को उठाना चाहिए। भोजन मौन होकर खाना चाहिए। विवाह के दिन वर-वधू दोनों रात्रि को व्रत रखें।

श्लोक में आए हुए 'वरोऽपि तरुणी चोपोषितौ चेन्निशि' विशेष विचारणीय हैं। इन शब्दों का अर्थ है कि विवाह वाले दिन वर और वधू दोंनों उपवास करें क्योंकि 'विवाह' भी एक संस्कार है जिसका अभिप्राय नर-नारी को सुसंस्कृत (Cultured) बनाना है न कि विलासप्रिय बनाना।

पिता जीवित होने पर नान्दी श्राद्ध का विशेष नियम—

नास्मद्वृद्धपदं न रूपसहितं ना गोत्रनामातिलं
नान्दीश्राद्धमुत प्रदक्षिणविधिर्जीवत्पितासौ चरेत्।
तेभ्यो वा स्वयमाचरेत्पितृपितृभ्योऽसौ न तस्मिन् कृते-
ऽप्युद्वाहाद्धत आचरेद्वृतशुभे माता रजोगा यदि ॥५५॥

जिसका पिता जीवित हो, नान्दी श्राद्ध करते समय अपने पूर्व पितरों का नाम आदि न ले और 'तिल' का प्रयोग भी न करे। केवल गोत्रोच्चारण करे। अथवा वह स्वयं अपने पितामह आदि के लिए नान्दीकर्म करे। यदि माता 'रजोधर्म' के कारण विवाहोत्सव में सम्मिलित न हो तो नान्दीकार्य हो चुकने पर भी विवाहोत्सव के कार्य को आगे न किया जाये।

श्राद्ध में स्थालीपाक का नियम—

रात्रिं त्र्यंशमयीं विधाय चरमौ त्यक्त्वादिमेशे चरेत्
स्थालीपाकमुपासनाहुतिमपि श्राद्धं यदा शेषतः।
दर्शो वा न भवेत्सतुयदि भवेत्कन्या न सन्तानिनी
दर्शश्चेज्जुहुयादमामनुमतः साङ्क्रन्दनं सङ्क्रमे ॥५६॥

श्राद्ध में स्थाली पाक होम इस प्रकार करें :—रात्रिमान को ३० बराबर भागों में बांटो। अन्तिम दो भागों को छोड़ दो। उपरोक्त होम को उस समय में जो कि त्यक्त दो भागों का पूर्ववर्ती है करे, परन्तु उस रात्रि को अमावस्या नहीं होनी चाहिए। यदि दिन में अमावस्या हो और यदि स्त्री अभी सन्तानहीन हो तो दर्श होम करे और यज्ञ संक्राति के संक्रमण पर भी किया जा सकता है।

पत्नी के गर्भ समय में निषिद्ध कार्य—

सूनोश्चौलमुतात्मनः क्षुरकृतिस्तम्भालयारम्भणे
वार्धिस्तानमदूरवासमपि नो कुर्वीत गुर्विण्यथ।
वृद्धो दर्शमहालये क्षयदिने चादौ चतुर्थान्तिमे
चातुर्विद्यविधानमेव कलयेत्स्वं वैश्वदेवं सुधीः ॥ ५७ ॥

जिसकी स्त्री गर्भवती है वह अपने पुत्र का चौल संस्कार न करे। न अपना क्षौर कर्म और न ही स्तम्भ स्थापन, आल्य आरम्भ, आधार शिला रखना आदि कार्य करे। गर्भवती स्त्री समुद्र स्नान अथवा दीर्घ यात्रा न करे। सन्तान-उत्पत्ति पर, अमावस्या पर महालय के अवसर पर, घर में किसी की मृत्यु होने पर, पहले तथा चतुर्थ दिन तथा मास के अन्तिम दिन बुद्धिमान् मनुष्य वैश्वदेव यज्ञ करे जैसा कि वेद-पारङ्गतों ने कहा है।

तीर्थस्थानों पर विशेष आचार—

दर्शे प्राक्च तिलोदकं महालये पश्चान्मृताहे परे
सापिण्ड्यं यदि दार्शगं यदि पितुः पक्षं मुखाब्दे चरेत्।
तीर्थेऽर्घ्याङ्गुलिवेदतृप्तिविकिरं चावाहनं वर्जयेत्
पिण्डाग्रो करणे च सप्त सुधियो वर्ज्यानि साङ्कल्पिते॥ ५८ ॥

अमावस्या में तिलोदक का मुख्य महत्त्व है, तदनन्तर महालय में। इसके अनन्तर मृत्यु के दिन यह दिया जाये। यदि सपिण्डीकरण किया जा चुका हो तो अमावस्या तथा पितृ पक्ष का तिलोदक मृत्यु के पहले

वर्ष में ही दे दे। तीर्थ अथवा देव स्थानों पर यह सात बातें बुद्धिमानों को नहीं करनी चाहिए—

(१) अर्घ्य देना, (२) भोजन करने में अंगुली प्रयोग के नियम (३) वैदिक शाखाओं का भेद, (४) पितर तृप्ति प्रश्न, (५) अज्ञात मृतकों को अन्न दान, (६) मृत आत्माओं का आह्वान, (७) श्राद्ध की अग्नि में आहुति। यही नियम संकल्प श्राद्ध के सम्बन्ध में भी हैं।

पति द्वारा असवर्ण पत्नी का श्राद्ध निषिद्ध—

तातस्येव च तत्कलत्रविगमे दारेषु च स्वस्य च
भ्रातुश्चाग्रजने: पितृव्यसमिते मातामहानामपि।
श्राद्धं कार्यमुपासनानलहुतिस्त्वन्यस्य लौक्यानले
सापत्न्योऽपि सुत: सुतो न तु पति: कर्ता हि वर्णान्तरे ॥ ५९ ॥

पिता की भाँति, पिता की पत्नियों का श्राद्ध भी करना चाहिए। ऐसा ही अपनी पत्नियों, अग्रज, चाचे, ताऊ, पिता की स्त्रियों के पिता का भी श्राद्ध करें। औपासनाग्नि को आहुति दी जाये। गृह्य अग्नि और श्राद्ध की साधारण अग्नि को भी। सौतेली माँ से उत्पन्न बालक भी पिता का पुत्र ही है। उसे अन्य वर्ण की पत्नी का श्राद्ध करने का अधिकार है। अत: पति श्राद्ध न करे।

नि:सन्तान पुरुष का श्राद्ध कौन करे—

यद्येक: सुतवान् स योनिजनुषां सर्वेऽपि ते पुत्रिण:
पुत्रभ्रातृपितृन्विना यदि तदा भर्त्रा सती स्यान्मिथ:।
विश्वस्ता न च पुत्रिणी धवयुता नोर्ध्वं सपिण्डीकृते:
कार्यं स्यादनयो: परे पितृभुजो हन्ता परे ह्याब्दिकम् ॥ ६० ॥

जहाँ तक श्राद्ध कर्म का सम्बन्ध है यदि सगे भाइयों में से एक के यहाँ भी पुत्र है तो उससे सब भाई पुत्र वाले समझे जायेंगे। इसी प्रकार यदि भाइयों में से केवल एक ही विवाहित हो तो उसकी स्त्री का श्राद्ध दूसरे अविवाहित भाई कर सकते हैं। किन्तु स्त्री के बच्चों, भाइयों अथवा पिता का नहीं। यदि कोई स्त्री जिसका पति जीवित नहीं है तो

उसे पितरों से मिलाने की क्रिया सपिण्डीकरण क्रिया के बाद करनी चाहिए।

प्रत्यब्दादिषु पिण्डमातृजनतश्चाज्यौ तु संस्पर्शने
श्राद्धं पूर्ववदाचरेद्यदि पितुः पिण्डोऽपि भिन्नः पुनः।
उच्छिष्टे न परित्यजेच्छुतिसुवासंप्रोक्षितं नान्यद-
प्यश्नीयान्निखनेद् द्विवर्षमथ तद्दाहोद्विवर्षात्परम् ॥ ६१ ॥

वार्षिक श्राद्ध आदि में, माता के लिए श्राद्ध करते समय जब माता के लिए पिण्ड पर घी का लेप किया जा रहा हो, पिता का पिण्ड खण्डित हो जाये तो श्राद्ध को नये सिरे से करना चाहिए। जो खाद्य पदार्थ बच जायें या जिस आचार्य ने भी पानी छिड़का हो उन्हें त्यागा न जाये बल्कि या तो खा लिये जायें या उन्हें दो वर्ष दबाकर पुनः जला दिया जाये।

ऋतुस्नाता स्त्री के लिए विशेष—

सान्निध्येऽप्यृतुलालसां तु कमितां यां नोपसंगच्छति
भ्रूणं हन्ति स एव यात्यृतुमति कान्तं च नो विन्दते।
माता योनिषु सूकरश्ववृकसार्गालीषु भूयो भवो-
त्तारं कामसुखं सुपुत्रफलदं यस्मात्ततस्यौ मिथः ॥ ६२ ॥

जो विवाहित व्यक्ति स्नाता तथा कामपूर्ण स्त्री के सानिध्य में होता हुआ भी स्त्री से संभोग नहीं करता वह अपने सिर पर भ्रूण हत्या का पाप लेता है। इसके विपरीत यदि स्नाता स्त्री अपने प्रेम करने वाले पति से संभोग नहीं करती, तो उसको बार-बार सूकरी, कूकरी, भेड़िया अथवा गीदड़ी योनि में जाना पड़ता है। अतः दम्पती को वह संभोग-आनन्द अवश्य लेना चाहिए जिसके फलस्वरूप उनको उस पुत्र की प्राप्ति हो, जो उनको भवसागार से पार उतारने वाला हो।

रागाद्रोगवशादनेहस उत द्रव्याच्चतुर्धा रजः
स्त्रीणां कालज एव दोषविषये पञ्चाशदब्दावधि ।
आ वर्षाशमाष्टमहृत्त्रयमभुष्या मासि मासिच्युतं
प्रागष्टादशवासरार्धादि पुनर्दृष्टं न दोषावहम् ॥ ६३ ॥

स्त्रियों के रजस्वला होने के चार कारण हैं। (१) राग से, (२) रोग से, (३) अवस्था से, (४) भोजन अथवा औषधि से। इनमें से आयु पर आधारित सबसे मुख्य है। ५० वर्ष की आयु तक स्त्री रजस्वला होती रहती है। प्रायः रजोदर्शन १८ की आयु में होता है और प्रति मास तीन दिन रहता है। यदि एक मास में १८ दिन से पहले-पहले रजोदर्शन दूसरी बार हो जावे तो कोई दुष्ट परिणाम अथवा दोष नहीं।

केचित्पञ्चदशाहतः परमधस्त्वैकोनविंशाद्द्वयहं
पूर्वस्मिन्दिवसेऽन्त्यजेव दिवसेऽन्यस्मिन्द्विजद्रोहिणी ।
तार्तीये रजकी चतुर्थदिवसे शुद्धा स्वयं कर्मसु
स्वातन्त्र्येण तु पञ्चमे शुचिमती रोगादि नो दोषकृत् ॥६४॥

कुछ एक की सम्मति में १५ दिन के भीतर दूसरी बार रजोदर्शन दोषयुक्त नहीं होता। यदि २१ दिन से पूर्व पुनः दर्शन हो तो दो दिन तक देखना चाहिए। स्त्री रजोदर्शन के प्रथम दिन चाण्डाली के समान अस्पृश्य है, दूसरे दिन ब्राह्मणों को द्वेष करने वालों की भाँति अस्पृश्य है, तीसरे दिन धोबन को भाँति अस्पृश्य है, चतुर्थ दिन वह शुद्ध मानी गई है। पञ्चम दिन वह बिलकुल शुद्ध और उसको गृहस्थ धर्म का पूर्ण अधिकार है। परन्तु उसका रोगहीन होना आवश्यक है।

पर्व दिनों में स्त्री संगम निषेध —

पुंसो नैव सु हृदृग्दिवा उपरतस्तद्योगपद्ये क्रमात्
पुत्रौ वाप्यथवा तु जन्मदिवसे श्राद्धे च पर्वस्वपि ।

**सङ्गच्छेदवगाहनं सवसनं कार्यं तिलैर्वर्जयेत्
प्रेतप्रेक्षणमप्यपूर्वनगतीर्थामर्त्यसेवामपि ॥ ६५ ॥**

यदि कोई पुरुष किसी सुन्दरी से नव विवाहित हो, किन्तु उसे यज्ञ करना हों, उसका जन्म दिन हो, श्राद्ध अथवा अमावस्या संक्रांति आदि पर्व हो तो इन दिनों वह स्त्री के पास न जाये। यदि वह जाता है तो उसे प्रायश्चित्त रूप से वस्त्रों समेत स्नान करना चाहिए और शरीर शुद्धि के लिए तिलों का प्रयोग करना चाहिए। इन दिनों मृतक शरीर देखना, बड़े पहाड़ों पर चढ़ना, पुण्य नदियों पर जाना, तथा देव पूजा से भी अलग रहना चाहिए।

उपनयन के बाद त्याज्य कर्म —

**आषण्मासमथोद्वहोपनयकं कर्म त्यजेत्तन्मुहु-
जीर्णं भाण्डमतो गृहाच्छदिकृतिः सम्मार्जनालये।
स्वस्यास्यापि च मुण्डनं मृतिदिने पिण्डप्रदानं कृपा-
श्राद्धेनापि समर्चयेन्नतु गयापित्रादिके दोषकृत् ॥ ६६ ॥**

एक उपनयन के बाद, दूसरा ६ महीने से पहले नहीं करना चाहिए। उसे उपनयन के बाद पुराने तथा टूटे बर्तनों का त्याग, छत का बनाना अथवा उसकी मरम्मत, घर की सफाई और कर्म, अपने तथा ब्रह्मचारिणी के लिए त्यागने होंगे। किन्तु मृत्यु होने पर जहाँ पिण्डदान किया हो, वह श्राद्ध कर सकता है। वह दरिद्रों के लिए 'कृपा श्राद्ध' भी कर सकता है। किन्तु पितृ श्राद्ध के लिए गया न जाये। यदि जाये तो पाप का भागी बनेगा।

जिस व्यक्ति के पुत्र का उपनयन संस्कार हुआ हो, उसी व्यक्ति के लिए ये कार्य वर्जित किये गए हैं।

लघुशंका (मूत्र त्याग) आदि के बाद शुद्धि विधान—

मूत्रं दक्षिणकर्णलग्नमितरे यज्ञोपवीतं द्विजः
कुर्यादह्व्युदगाशयान्तकततल्लिङ्गार्द्रया चेन्निशि।
दक्षो दक्षिण एव लिङ्गमृदियं त्वेका त्रयं तत्करे
द्वन्द्वं चोभयतस्त्वपानशरयुक्तद्युग्ममन्यत्रिणि॥ ६७॥

द्विज लघुशंका जाते समय यज्ञोपवीत को दाहिने कान पर लगाए। दिन को तालाब अथवा नदी के किनारे जाकर मूत्रेन्द्रिय को धोये। परन्तु रात्रि को उसे केवल गीला करे। मूत्रेन्द्रिय तथा दाहिना हाथ मिट्टी से शुद्ध करे, और बायें को दायें से तीन गुणा मिट्टी से। पुनः दोनों को दुगुनी मिट्टी से साफ करे। गुदा को पाँच गुणा मिट्टी से। अन्य तीन अंगों को पुनः दुगुनी मिट्टी से शुद्ध करे।

मैथुन के बाद शुद्धि—

त्रिर्लिङ्गे षडपानके दश दश स्युर्हस्तयोस्तद्गुदे।
चैकं तत्करपृष्ठतः करमुखे चोरुद्वये पादयोः।
मूले तद्द्विगुणं त्रयं च मिथुने शुक्ले तु पूर्वद्वयं
यत्स्यादह्नि तदर्द्धमर्द्धनिशि चेत्तस्यार्द्धमस्येत्पथि॥ ६८॥

संभोग अथवा मूत्रविसर्जन के अनन्तर इस प्रकार शुद्धि करे—

मूत्रेन्द्रिय को ३ बार और गुदा को ६ बार, प्रत्येक हाथ को दस बार पुनः एक बार गुदा, दो-तीन बार हाथ, (जाँघें व पैरों को भी) धोए। यदि केवल वीर्यपात हुआ हो, तो दो बार शुद्ध करे। यह नियम दिन काल के हैं। रात्रि में इनकी संख्या आधी कही है। यदि यात्रा हो तो चौथाई भाग करे।

गार्ह्याद्ब्रह्मयुजो भवेद्द्विगुणमप्येतद्वनावासिनः
कार्यं तत्त्रिगुणे चतुर्गुणमिदं शौचं यतेरीर्यते।
स्त्रीशूद्राव्रतबालपामरधियां स्याद्गन्धलेपक्षयः
स्नात्वा न प्रविवर्जयेदथ तनुं स्युस्तीर्थकोट्यो यतः॥ ६९॥

शुद्धि का विधान गृहस्थ की अपेक्षा ब्रह्मचारी के लिए दुगना है। और वानप्रस्थी के लिए तीन गुना, और संन्यासी के लिए चार गुना। पुण्यस्नान में तेल, तिलक आदि को स्त्री, शूद्र, व्रती, ब्रह्मचारी, बच्चे, गंवार हटायें। शरीर को पानी में न छोड़े, क्योंकि शरीर में ही करोड़ों तीर्थ अथवा नदियाँ हैं।

देवा मूर्ध्नि पिबन्त्यथो च पितरो वक्त्रेऽथ मध्यादपि
यक्षास्तन्वधराश्च जन्तव इदं मध्येन तुल्यं त्वधः।
वामे रक्तसमं तु दक्षिणत इदं गङ्गासमं मंगलं
केशाद्ये निपतन्ति बिन्दव इमे स्नानं निरर्थं पुनः॥ ७०॥

देवता सिर से, पितर मुख से, यक्ष पेट से, जिन जीवों के होंठ बहुत छोटे हैं, पेट द्वारा पीते हैं। बायीं ओर से अपित जल रक्त समान होता है। दायीं ओर से अर्पित जल गङ्गा-जल के समान होता है। केवल पानी की बूंदों से सिर धोना व्यर्थ है। अर्थात् यह स्नान नहीं कहा जा सकता।

भोजनोपरान्त मुखशुद्धि—

भुक्तौ मूत्रपुरीषयोश्च पुरुषो वीर्येऽष्टयुक्सिन्धुभिः
षष्ट्या चापि विशोधयेन्निजमुखं तोयेन गाण्डूषिणा।
सिंहे कर्कटके यमे च सकला नद्यो रजस्विन्य इ-
त्याशु स्नानविवर्जितं नदिपतेरासङ्गमाच्छुध्यति॥ ७१॥

भोजन के उपरान्त, मूत्रत्याग के उपरान्त मलत्याग के उपरान्त, तथा वीर्यत्याग के उपरान्त मुख को १०८ वार धोना चाहिए। आषाढ़, श्रावण तथा भादों के मासों में सब नदियाँ रजस्वला (गंदली) समझी जाती हैं तब इनमें स्नान करना युक्त नहीं। यदि उस समय इनमें स्नान कर ले तो समुद्र स्नान से शुद्धि होती है।

एक अन्य मत से वर्षा ऋतु (कर्क सिंह सक्रांति) में समुद्र पर्यन्त बहने वाली नदियों में स्नान किया जा सकता है। जो समुद्र तक नहीं

जातीं वे इस अवधि में अशुद्ध समझो जाती हैं।

'सिंह कर्कटयोर्मध्ये सर्वाः नद्यः रजस्वलाः।
तासु स्नानं न कुर्वीत वर्जयित्वा समुद्रगाः॥'

पवित्री धारण के नियम—

दार्भ्यं ताम्रमुतापि राजतसुवर्णाद्यं पवित्रं करे
हैमं धार्यमनामिकामधि तथा रौप्यं च तर्जन्यधि।
स्वाङ्गं तच्च कनीयसि प्रियतमं दैवे न पित्र्ये नरः
ताते भ्रातरि नैव धार्यमिदमप्यार्ये कनिष्ठे न तु॥ ७२॥

देव कृत्यों के समय दर्भ ग्रास से, ताम्बे से अथवा सोने-चाँदी से बनी हुई पवित्र अँगूठी पहननी चाहिए। यदि सोने की बनी हो तो अनामिका अंगुली में पहननी चाहिए। यह विधान देवपूजा के लिए ही है, पितृ-श्राद्ध के लिए नहीं। यह किसी व्यक्ति को तब तक न पहननी चाहिए, जब तक उसका पिता अथवा भाई जीवित हैं।

श्राद्ध में गायत्री जप का नियम—

गायत्री दशसंख्यया पितृदिने जप्या प्रदोषेऽपि चा-
ऽनध्याये वसुविंशतिः सुदिवसे साहस्रसंख्याथवा।
जप्या पञ्चशतं त्रिशत्यथ सविंशत्यष्टयुक्तं शतं
संक्रान्त्यादिषु तर्पणं पुर उत श्राद्धं ततस्त्वाब्दिकम्॥ ७३॥

श्राद्ध के दिन सायंकाल कम-से-कम दस बार गायत्री मन्त्र का जाप करे। ऐसा ही पाक्षिक तथा अन्य अवकाश के दिनों में २८ बार करे। पर्व के अवसरों पर ५००, ३००, १२८ बार जाप करे। संक्रान्ति पर यदि श्राद्ध हो तो पहले पितृ तर्पण अंजलि-अर्पण और तदनन्तर वार्षिक श्राद्ध करे।

श्राद्धे तीर्थगयाम हालयसमासंज्ञे तिलैस्तर्पणं
कुर्यादेव परेऽह्नि वृध्यनुकृतौ तच्चेदनूमासिके ।
प्रेताख्ये च धरत्पिता स्वजननीश्राद्धे तु नो तर्पणं
प्रातः स्नातशुचिः प्रतर्प्य विधिकृत्सन्ध्यादि पश्चाच्चरेत् ।।७४।।

हर प्रकार के श्राद्ध जैसे तीर्थ श्राद्ध, गया श्राद्ध, महालय अथवा अष्टक आदि तथा वार्षिक श्राद्ध पिण्ड तर्पण तिलों से उस मध्याह्नोत्तर करे जिस दिन तिथि अधिक लम्बी हो । यह नियम मासिक श्राद्ध के दिन भी लागू है । यदि घर में कोई सन्तान-उत्पत्ति न हो तो भी तिलों से तर्पण करना चाहिए । जिसका पिता जीवित हो, और वह माता का श्राद्ध कर्म कर रहा हो उसे आहुति अथवा तर्पण नहीं देना चाहिए । प्रायः प्रातः स्नान के उपरान्त शुद्ध होकर पहले तर्पण करे और पश्चात् दैनिक सन्ध्या-पूजा आदि कर्म करे ।

प्रत्यब्दे कृतनित्यतर्पणविधिस्तद्वैश्वदेवं चर-
न्नन्येनान्यचरूदितेन विहितब्रह्माख्ययज्ञे द्विजः ।
उद्वाहे व्रतचौलयोर्न विदधीताब्दं तदर्द्धं तिलैः
प्रेतत्वे च गयाविधौ तमसि चेतौ पुष्पवन्तौ विधिः ।। ७५ ।।

वार्षिक श्राद्ध के उपरान्त, ब्राह्मण, दैनिक तर्पण करे, पूर्व की भाँति विश्व देव होम, पके चावलों से करे । तब दैनिक ब्राह्म यज्ञ करे । विवाह, उपनयन तथा चौल के अवसर पर तिलों से वार्षिक श्राद्ध न करे । प्रेत श्राद्ध तथा गया श्राद्ध पर यदि कोई ग्रहण हो तो समझना चाहिए कि दोनों ग्रह उपस्थित हैं और विधि सफल हुई ।

पिण्डदान के निषिद्ध दिन—

सप्तम्यां रविसारे जनुषु तौ कुर्यात्तिलैस्तर्पणं
गेहे भानुभृगुप्रभासु सुतनन्दारौ मघायामपि ।
याम्याग्नाश्वभयोर्मृगादिषु तथा द्वौ द्वेऽयने नो मृदा
स्नानं पिण्डविधिं तिलाञ्जलिकृतिं श्रेयोर्थनी नाचरेत् ।। ७६ ।।

जब रविवार को सप्तमी तिथि हो और जन्म दिन भी, उस दिन सूर्य तथा चन्द्र को घर में आहुति देनी चाहिए। सुख चाहने वाले को मृत्तिका स्नान व पिण्ड दान निम्नलिखित अवसरों पर नहीं करना चाहिए—

(१) रवि, शुक्र अथवा मंगलवार को जबकि मघा नक्षत्र हो अथवा पञ्चमी, नवमी, प्रतिपदा, षष्ठी, एकादशी तिथि हो अथवा अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, मृगशिरा नक्षत्र हो, अथवा दो अयनों का प्रारम्भ हो।

द्वादश भावों का फल कथन—

श्रीवार्णीं प्रणवे विलिख्य दश चोर्ध्वं तत्र तिर्यक्समं
रेखा द्वादश राशयो युगमुखेमे षादयो लक्षिताः।
पूर्वैस्तेषु विशिष्टसत्फलयुतान्पुण्यात्मभिः कीर्तितान्
भावान्देहमुखान् बुधैः फलविदे ब्रूमश्च संज्ञां पुनः॥ ७७॥

पवित्र ॐकार के नीचे सरस्वती की मूर्ति लिखे। दस सीधी और दस ऊपर से नीचे रेखायें खींचे। बड़े चतुष्कोण के बाहरी चार लाइनों से द्वितीय कोष्ठों से ऊपर बायीं ओर से मीन मेष आदि राशि एक-एक कोष्ठ छोड़कर लिखे तो बारह राशियाँ होंगी। अब बारह भावों के नामों व फल को मैं विद्वानों के विनोदार्थ कहता हूँ।

भावों के नाम व ग्रहों की दृष्टि—

देहः स्वं सहजः सुखं सुतरिपू जाया तथायुः पिता
कर्मायो व्यय इत्यमी पटुतया ज्ञेया ग्रहाः सप्तमम्।
पश्यन्त्यत्र तु सप्तमं शनिगुरुक्ष्माजास्तु पूर्ण सदा
तार्तीयीकदशत्रिकोणचतुरष्टावार्किजीवारकाः ॥ ७८॥

(१) देह, (२) धन, (३) सहज, (४) सुख, (५) सुत, (६) रिपु, (७) जाया, (८) आयु, (९) पिता, (१०) कर्म, (११) आय, (१२) व्यय। प्रत्येक ग्रह की अपने स्थान से सप्तम स्थान पर पूर्ण दृष्टि होती है,

परन्तु इसके अतिरिक्त शनि, गुरु तथा मङ्गल को विशेष दृष्टि भी है। शनि अपने स्थान से तृतीय तथा दशम को पूर्ण दृष्टि से, गुरु अपने स्थान से पञ्चम तथा नवम को पूर्ण दृष्टि से देखता है।

त्रिकोणेश सदा शुभ व केन्द्रेश अशुभ—

सर्वे क्षेमकरास्त्रिकोणपतयस्त्र्यर्थाय हस्ते शुभाः
सौम्यः केन्द्रपतिः शुभं न दिशति क्रूरोऽशुभं चोत्तरम्।
लग्नाद् द्वादशरिक्थपौ सहचरावन्यस्य च स्थानतो
दद्यातां फलमष्टमेशशुभदो भाग्यं व्ययाधीश्वरः ॥ ७९ ॥

सब ग्रह चाहे वे नैसर्गिक शुभ हों अथवा नैसर्गिक पापी, जब त्रिकोण भावों के स्वामी हों तो शुभ फल देने वाले होते हैं। इसी प्रकार शुभ ग्रह तृतीय, द्वितीय, एकादश तथा केन्द्र भाव में स्थित हों तो शुभ फल करते हैं। नैसर्गिक शुभ ग्रह यदि केन्द्र के स्वामी हों तो शुभ नहीं करते, इसी प्रकार नैसर्गिक पापी ग्रह केन्द्र के स्वामी हों तो अशुभ नहीं करते। लग्न के अष्टमेश तथा द्वादशेश यदि एक-दूसरे से युक्त हों और अष्टम अथवा द्वादश स्थान में स्थित भी हों तो इस रीति से फल करते हैं कि अष्टमेश तो शुभ फलदाता तथा द्वादशेश भाग्यदाता हो जाता है।

इस श्लोक के अन्तिम भाग का आशय यह है कि द्वादशेश तथा अष्टमेश दोनों अनिष्ट स्थानों में हों और शुभ प्रभाव से रहित हों तो द्वादश तथा अष्टम भाव प्रदिष्ट अनिष्ट के नाश के फलस्वरूप धन ऐश्वर्य की प्राप्ति होगी।

सोऽयं चेत्तनुपः शभो गुरुसितौ केन्द्राधिपौ चाशुभौ
स्थाने मारकसंज्ञिते यदि गतौ स्यातामुभौ मारकौ।
ज्ञस्तादृक् च तथा विधुश्च जनको रन्ध्राधिपो चेच्छुभौ
भूजारस्य पतत्रिकोणपतिताभावत्वे शुभो नैकतः ॥ ८० ॥

यदि उपरोक्त द्वादशेश तथा अष्टमेश के साथ ही लग्नेश भी हो

जावे, (जैसा कि कुम्भ तथा मेष लग्न वालों के होते हैं) तो शुभ फल करेंगे। (क्योंकि लग्नेश होने से ग्रह में इतनी शुभता तथा राजयोग शक्ति आ जाती है कि उसके द्वादश भाव पति अथवा अष्टम भाव पति होने का दोष शुभता से बहुत कम होता है।)

गुरु और शुक्र यदि केन्द्राधिपति हों (तो नैसर्गिक शुभता खो बैठने के कारण) अशुभ फल दाता हो जाते हैं और उस स्थिति में यह ग्रह यदि द्वितीय तथा द्वादश—मारक भावों में स्थित हों तो मारक अर्थात् अपनी दशा-भुक्ति में मृत्यु देने वाले हो जाते हैं। बुध भी उसी तरह केन्द्रों का स्वामी होता हुआ और मारक स्थानों में स्थित होकर मारक सिद्ध होता है। परन्तु सूर्य तथा चन्द्र यदि अष्टम भाव के स्वामी हों तो मारक नहीं होते। मंगल जिसको "आर" कहते हैं जब चतुर्थ, नवम, पञ्चम तथा दशम भावों का स्वामी हो तो शुभ होगा, किन्तु यदि दो में से केवल एक भाव का स्वामी हो तो नहीं।

राहु केतु का विशेष फल—

यद्यद्दुर्भगतौ यदीशसहितावेतौ तमःखेचरौ
स्यातां तत्फलदायिनौ बलयुतौ केन्द्रत्रिकोणेश्वराः।
क्षेमं ते ददति प्रसक्तरहिताश्चेदन्यथा ते युताः
तौ दुष्टावपि योगतः शुभकरौ सम्बन्धमात्रेण तौ॥ ८१॥

राहु और केतु यह दोनों छाया ग्रह यदि बलवान् हों तो उस ग्रह की भाँति फल देते हैं जो कि अशुभ भाव का स्वामी हो, अथवा उन सदृश फल करते हैं जिन भावों के स्वामियों के साथ हों। अथवा उस ग्रह फल-सदृश जिसकी राशि में स्थित हों, केन्द्रत्रिकोण के स्वामी ग्रह यदि राहु-केतु से युक्त न हों तो शुभ फल करते हैं। यद्यपि ये ग्रह नैसर्गिक पापी हैं तथापि शुभ फल करते हैं यदि ये योग कारक होकर सम्बन्धों के अनुसार बलवान् हों। पराशर के मतानुसार त्रिकोणेश का सम्बन्धी (सम्बन्ध सहस्थितिमात्र) राहु यदि त्रिकोण में हो तो योग कारक होता है। किन्तु उत्तरकालामृतकार ने साफ कहा है कि

केन्द्रत्रिकोणेश के साथ राहु केतु की स्थिति सदा कल्याणकारी नहीं होती है। विद्वान् पाठक दोनों मतों की शक्ति का परीक्षण करें। कब शुभ फल होगा, आगे बताया जा रहा है—

तौ धर्मे यदि कर्मणि स्थितियुजौ व्यत्यासतो वा स्थितौ
योगं तौ कुरुयस्त्रिकोणपतिना योगोऽपि सौख्यप्रदः।
सौख्यं योगकृतोर्दशास्वपि भवेच्चैतद्युजां श्रेयसां
सम्बन्धादथ योगिनोऽशुभकृतां भुक्ताशुभं योगजम् ॥ ८२ ॥

यदि राहु अथवा केतु नवम स्थान में हों और दशमेश से युक्त हों, या राहु अथवा केतु दशम स्थान में हों और नवमेश से युक्त हों अथवा नवम भाव में राहु अथवा केतु हो और नवमेश दशम भाव में हो तथा दशमेश नवम भाव में हों, अथवा राहु और केतु दशम भाव में हो, और दशमेश नवम में तथा नवमेश दशम भाव में हो तो इस योग से जातक को बहुत सुख होगा। यदि पूर्ण सम्बन्ध न भी हो किन्तु यदि राहु केतु का योग त्रिकोण के स्वामी से हो तो भी शुभ फल होता है। ऐसी स्थिति में राहु-केतु की तथा उनसे युक्त ग्रहों की दशा अन्तर्दशा में सुख मिलता है। यदि अशुभ किन्तु योगकारक ग्रह का सम्बन्ध राहु अथवा केतु से हो जाये तो योगकारक का भी अशुभ फल मिलता है।

युज्येतां तु तमोग्रहौ शुभफलौ केन्द्रत्रिकोणेऽथवा
तन्नाथेन युतौ त्रिकोणपतिना केन्द्राधिनाथेन वा।
धर्मेट्कर्मपती न रन्ध्रशिवपौ तन्नाथयोगेन वा।
योगो नैव नरस्य चाष्टममिति स्थानं तदेवायुषः ॥ ८३ ॥

यदि राहु अथवा केतु त्रिकोण में स्थित होकर केन्द्र पति युक्त हों अथवा केन्द्र में स्थित होकर त्रिकोण पति से युक्त हों तो योगफल अर्थात् बहुत शुभ फल करते हैं, किन्तु यदि इन छाया ग्रहों से युति करने वाला नवमेश यदि अष्टमेश भी हो अथवा द्वादशेश भी हो अथवा नवमेश तया दशमेश यदि अष्टमेश तथा द्वादशेश से भी युक्त हों तो

योग का शुभ फल नष्ट हो जाता है। अष्टम भाव को आयु भाव कहते हैं।

तस्मादष्टममप्यभूज्जनिभृतामायुः प्रदं कीर्तितं
शास्त्रज्ञैरसकृद्व्ययस्तु च तयोः स्यान्मारकस्थानकः।
आद्यादुत्तरमुत्तरं तदधिपात्तत्रत्यपापः स्मृतः
तत्संयुक्तदशावशादभिभवः साक्षाद्व्ययेशस्य वा ॥ ८४ ॥

अष्टम स्थान से अष्टम स्थान अर्थात् तृतीय भाव भी आयु का भाव है और इन दोनों का 'व्यय' स्थान अर्थात् सप्तम तथा द्वितीय भाव 'मारक' भाव कहलाते हैं। भाव के स्वामी से द्वितीय भाव में स्थित ग्रह "पापी" (स्वास्थ्य सम्बन्धी अनिष्ट करने वाला) होता है। इस प्रकार के अशुभ ग्रह की दशा में अथवा द्वादशेश की दशा में अपमान आदि कष्ट होते हैं।

शनि का विशेष फल—

सम्बन्धाद्व्ययनायकस्य शुभकृद्भुक्तौ च रन्ध्रेशितुः
पापानां तु दशासु मारकयुतौ मन्दो विहायेतरान्।
हन्ता सर्वखगाः स्वभुक्तिषु नृणां दद्युः फलं तादृश
ये वा येन सधर्मिणश्च सहिता दद्युः स्वभुक्तौ फलम् ॥ ८५ ॥

शनि ही को केवल यह सामर्थ्य है कि वह अपनी दशा तथा शुभ ग्रह की भुक्ति में अथवा किसी पापी ग्रह की दशा और निज भुक्ति में मनुष्य को मृत्यु देता है यदि वह अष्टमेश अथवा द्वादशेश से युक्त हो अथवा 'मारक' ग्रह से युक्त हो। प्रत्येक ग्रह अपनी दशा और अपनी ही भुक्ति में अपनी प्रकृति के अनुसार फल देते हैं अथवा उन सधर्मी ग्रहों के अनुकूल फल देते हैं जिनके साथ वह युक्त हों।

केन्द्रेश की दशा भी अशुभ—

अन्येषां तु दशाधिनाथविमतानामानुगुण्येन तत्
कार्यं चौह्यममुष्य भुक्तिषु दशा कोणेश्वरस्यापि या।
तस्यां केन्द्रपतेः शुभं न हि शुभं सम्बन्धमात्रे शुभे
भुंक्तौ मारकखेचरस्य यदि तद्योगस्य चारम्भतः ॥ ८६ ॥

अन्य ग्रह जो दशा नाथ के शत्रु हों अपनी भुक्ति में निज-निज प्रकृति के अनुसार फल देंगे। यदि त्रिकोण भाव के स्वामी की दशा में केन्द्रेश की ही भुक्ति क्यों न हो वह भुक्ति शुभ फलदायी तभो होगी जबकि वह केन्द्रेश शुभ ग्रह से सम्बन्धित हो। मारक ग्रह की भुक्ति का फल उन ग्रहों जैसा होगा जिनसे वह युत है।

पाप ग्रह की दशा भी शुभ—

भुक्तिः पापखगस्य तत्प्रथयति प्राचां च सम्बन्धतः
श्रेयस्तुल्यतया युजामपि नकिं योगेश्वराः स्वायुजः।
भुक्तौ योगफलप्रदाः शुभफलौ स्यातां तमःखेटिनौ
सद्भावोपगतौ तदीशितृशुभैः सम्बन्धभाजौ परम् ॥ ८७ ॥

पापी ग्रह की भुक्ति भी अच्छा फल करती है यदि उसका सम्बन्ध योग कारक ग्रह से हो। योग कारक ग्रहों की शुभता के कारण इनसे युक्त ग्रह भी अपनी दशा-भुक्ति में शुभ फल देते हैं। एक योग कारक ग्रह अपनी दशा में तथा ऐसे शुभ ग्रह की भुक्ति में जिसका इससे सम्बन्ध न भी हो, शुभ फल करते हैं यदि वे छायाग्रह शुभ ग्रहों से सम्बन्धित हों।

राहु केतु की दशा में महान् सुख—

आरूढौ च शुभेन केन सहितावप्यन्तरे पापिनोः—

पापानां तदसंयुजां शुभफलं तद्भुक्तयो भुक्तिदाः ।

मिश्रं योककृतं फलं तद्युजोऽप्यत्यन्तपापं फलं

हन्ता हन्ति शुभान्वयेन तु निहन्त्येवान्यभुक्तौ मिथः ॥ ८८॥

यदि राहु और केतु शुभ स्थान में हों और किसी शुभ ग्रह के साथ भी हों तो फिर चाहे वह पाप ग्रहों के मध्यत्व में भी हों किन्तु पाप ग्रहों से युक्त न हों तो अपनो दशा तथा भुक्ति में शुभ फल करते हैं। यदि यह छाया ग्रह किसी योग कारक ग्रह के साथ हों तो उस योग-कारक का फल (योगफल न होकर) मिश्रित फल हो जाता है। अन्य पापी ग्रह इनकी दशा अन्तर्दशा में इनसे युक्त न होकर भी अत्यन्त अशुभ फल करते हैं। यदि यह छाया ग्रह मारक हों तो इनकी भुक्ति शुभ ग्रह की दशा में मृत्युदायक होती है और पापी ग्रह की दशा में तो मृत्युकारक होती ही है।

शनि मंगल की दशान्तर्दशा का विशेष नियम—

भुक्तौ सूर्यजपार्थिवो प्रदर्शितो व्यत्यासतः स्वं फलं

राश्यङ्गाधिपती मिश्रः श्रयगतौ तद्राजयोगप्रदौ ।

धर्मकर्मपती मिथःस्थितयुजौ तदाजयोगप्रदौ

लग्ने लग्नमुदीक्ष्य तद्ग्रहफलं वक्ष्येऽथ जिज्ञासितः ॥ ८९॥

शनि दशा शनि भुक्ति में मंगल का फल होता है। शनि की दशा में मंगल की भुक्ति हो तो शनि का फल होता है। मङ्गल की दशा तथा मङ्गल की भुक्ति में शनि का फल होता है। यदि लग्नेश और चन्द्राधिष्ठित राशि के स्वामी परस्पर स्थान-परिवर्तन कर लें तो व्यक्ति को राजयोग का शुभ फल मिलता है। नवम तथा दशम भावों के स्वामी यदि एक-दूसरे की राशि में हों अथवा एकत्र हों तो भी राजयोग का फल मिलता है। जिज्ञासुओं के लाभार्थ अब मैं विविध लग्नों तथा उनसे

विविध ग्रहों के सम्बन्ध को कहूँगा ।

लग्नों के कारक मारक ग्रह—

पापो ज्ञोऽर्कगुरू शुभौ च शुभकृद्योगः शनीज्यौ परात्
पापत्वं च गुरोः कविर्मृतिफलं दद्यान्न मन्दादयः ।
हन्तारो यदि पापिनः फलमिदं ज्ञेयं हि मेषोद्भवे
जीवो भागवशीतगू अशुभदा मन्दो रविस्तौ शुभौ ॥६०॥

मेष लग्न वालों के लिए बुध अशुभ होता है । जब गुरु तथा शनि एकत्र हों तो शुभ फल करते हैं । गुरु की अन्य ग्रहों से युति अशुभ है । शुक्र मारक होता है, शनि तथा अन्य ग्रह मारक नहीं होते, यदि पापी भी हों वृषभ लग्न वालों के लिए गुरु, चन्द्र और शुक्र अशुभ होते हैं उनके लिए सूर्य और शनि शुभ ग्रह माने जाते हैं ।

टिप्पणी—मेष लग्न वालों के लिए गु और शनि के एकत्र होने से जो शुभता कही है उसमें यह कारण नहीं समझना चाहिए कि क्योंकि शनि दशम केन्द्र का और गुरु नवम त्रिकोण का स्वामी है, अतः केन्द्र और त्रिकोण के स्वामियों की युति शुभतादायक है क्योंकि यद्यपि गुरु द्वादशाधिपति होने से "स्थानान्तरानुगुण्येन भवेयुः फलदायकौ" के पाराशरीय नियम के अनुसार नवम भाव का फल करता है अतः शुभ है, परन्तु शनि केन्द्राधिपति होने से अपने नैसर्गिक पापत्व को छोड़ता हुआ पुनः एकादशेश होने से पापी ही रहता है । अतः पापी शनि को शुभ गुरु का सहवास पापत्व ही बढ़ा सकता है शुभत्व नहीं । तथापि इस शनि गुरु के योग में शुभत्व है ऐसा मानना होगा । उस शुभत्व में कारण यह है कि शनि लाभेश होने से धन लाभ करवाता है और गुरु को उससे युति एक शुभ ग्रह के नाते और "धनकारक" होने के नाते उस लाभ में और वृद्धि करती है । अतः यह शुभत्व अर्थ सम्बन्धी शुभत्व है । और यह जो कहा है कि गुरु की अन्य ग्रहों से युति अशुभ है यह इसलिए कि सूर्य के साथ गुरु होगा तो गुरु के नवमेश होने के कारण भाग्य अस्त हो जायेगा । यदि बुध के साथ होगा तो बुध जो कि तृतीयेश

षष्ठेश होने से अशुभ है, उसकी अशुभता बढ़ेगी । यदि शुक्र के साथ होगा तो शुक्र द्वितोयेश होने के कारण स्थानान्तर अर्थात् सप्तम भाव का फल करेगा। और शुक्र एक नैसर्गिक ग्रह का केन्द्राधिपति होना उसे शुभता से हीन कर देगा। ऐसे शुभताहीन शत्रु ग्रह को गुरु अपनी युति से लाभदायक न बना सकेगा। मंगल के साथ गुरु की युति हमारे विचार में शुभ फलकारी होगी यद्यपि मंगल अष्टमेश है। कारण यह है कि मंगल लग्नेश होने से अन्ततोगत्वा शुभ ग्रह ही है। शेष रहा चन्द्र, उसमें अशुभता संभवतया उसके केन्द्राधिपत्य दोष से कही हो जो दोष चन्द्र का उसके नैसर्गिक शुभत्व से होन करता है किन्तु हमारा विचार है कि चन्द्र और गुरु की युति कुछ शुभ फलदायक ही रहतो है क्योंकि चन्द्र लग्नवत् होता है ।

मिथुन व कर्क लग्न के कारक मारक ग्रह—

मन्दः राशिसुखप्रदः खलु न चैकेऽप्येव जीवादयो
घ्नन्ति स्यु यदि मारका वृषभुवां भौमाङ्गिरोऽर्का द्विषः।
योगः पूर्ववदेव तस्य शशभृन्नालं निहन्तु परे
एवं द्वन्द्वभवस्य भार्गवबुधौ पापौ कुजेज्यौ शुभौ ॥६१॥

शनि विशेष सुखदायक होता है। गुरु तथा अन्य ग्रह यदि अकेले हों तो मारक नहीं होते। मिथुन लग्न वालों के लिए मंगल, गुरु तथा सूर्य अशुभ ग्रह हैं। उनकी युति अशुभ है। चन्द्र अकेला मारक नहीं होता किन्तु दूसरे ग्रह अकेले मारक हो सकते हैं। कर्क लग्न वालों के लिए शुक्र और बुध अशुभ हैं। गुरु और मगल शुभ हैं ।

सिंह लग्न के कारक मारक ग्रह—

योगं भूमिसूतो रविर्न हननोत्यन्ये निहन्युस्तथा
कौलीरे बुधभार्गवौ च शुभदावारोऽङ्गिरास्तौ शुभौ।
योगो नैव शुभः सुरेज्यसितयोघ्नन्त्येव सौम्यादयः
एवं सिंहभुवः कुजेज्यशशिनः पापाः शुभो भार्गवः ॥६२॥

कर्क लग्न वालों के लिए अकेला मंगल योगकारक है। सूर्य (द्वितीयेश होता हुआ भी) मारक नहीं होता। अन्य ग्रह यदि मारक हों तो मृत्यु देते हैं।

बुध तथा शुक्र भी शुभ ग्रह हैं। सिंह लग्न वालों के लिए मंगल तथा गुरु भी शुभ हैं।। गुरु तथा शुक्र की युति शुभ नहीं। बुध तथा अन्य ग्रह मृत्यु देते हैं। कन्या लग्न के लिए मंगल, गुरु और चन्द्र अशुभ ग्रह हैं। केवल शुक्र शुभ है।

टिप्पणी—ऐसा लगता है कि मूल पुस्तक में "बुधमार्ग वौ च शुभदो" यह पाठ अशुद्ध छप गया है। शुद्ध पाठ "बुधभार्गवावशुभदौ" होना चाहिए। कारण कि शक्र को सिंह लग्न के लिए शुभ मानना ज्योतिष के मौलिक सिद्धात के विरुद्ध है। सिंह लग्न के लिए शुक्र दशम तथा तृतीय का स्वामी होता है। दशम केन्द्र का स्वामी होने से शुक्र अपनी नैसर्गिक शुभता को खोकर 'तटस्थ' बन जाता है और पुनः तृतीय भाव के आधिपत्य को प्राप्त करके 'पापी' बन जाता है। इसी प्रकार बुध सिंह लग्न की कुण्डलियों में द्वितीयेश तथा एकादशेश होता है। द्वितीयेश सदा "स्थानान्तरानुगुण्येन भवेयुः फलदायकौ" के सिद्धान्तानुसार अन्य ग्रह अर्थात् एकादशेश का फल करेगा, और एकादशेश पापी होता ही है—यह पाराशर पढ़ने वाले सब लोग जानते हैं। यदि बुध शुक्र भी शुभ फल देते हैं और मंगल गुरु भी, तो सिंह लग्न वालों के लिए बुध शुक्र अशुभ हैं ऐसा अर्थ करना चाहिए। यद्यपि हम मानते हैं कि धन के सम्बन्ध में बुध कुछ अच्छा फल करेगा परन्तु स्वास्थ्य के लिए कदापि अच्छा नहीं।

कन्या व तुला लग्न के कारक मारक ग्रह—

भृग्विन्दू भवतश्च योगफलदौ हन्ता सितो नेतरे
एव स्त्रीजनुषो गुरुस्त्वनकुजौ पापाः शनिज्ञौ शुभौ।
चन्द्रः स्वेन तनूभवेन सहितो राजन्ययोगप्रदो
भौमो हन्ति न जीवभानुयुगलं हन्ता तुलाजन्मनः ॥६३॥

कन्या लग्न वालों के लिए शुक्र तथा चन्द्र योगकारक ग्रह हैं विशेषतया उनको युति। शुक्र मारक है अन्य ग्रह नहीं। तुला लग्न वालों के लिए गुरु, सूर्य ओर मंगल अशुभ हैं। शनि और बुध शुभ हैं। चन्द्र तथा बुध का याग राजयोग देता है, मंगल मारक सिद्ध होता है। गुरु तथा सूर्य मारक नहीं होते।

वृश्चिक लग्न के कारक मारक ग्रह—

> ज्ञो भौमश्च सितस्त्रयोऽशुभफलाश्चन्द्रस्तथैकः शुभः
> सूर्याचन्द्रमसौ विशेषफलदौ जीवौ न हन्ता स्वयम्।
> सौम्याद्याः खलु मारका यदि भवेयुर्वृश्चिके जन्मनः
> शुक्रोऽप्येवमितोऽशुभः शुभकरौ भौमांशुमन्तौ परम् ॥९४॥

वृश्चिक लग्न वालों के लिए बुध, मंगल तथा शुक्र अशुभ हैं। केवल चन्द्र ही योगकारी है। सूर्य और चन्द्र अच्छा फल देते हैं विशेषतया अपनी युति द्वारा। गुरु अकेला मारक नहीं होता परन्तु बुध तथा अन्य ग्रह यदि मारक हों तो मृत्यु देते हैं।

धनु व मकर लग्न के कारक मारक ग्रह—

> योगो भास्करसौम्ययोर्निधनकृद् ज्ञो नैव भृग्वादयः
> एवं चापभुवः कुजाङ्गिरसभासाः सौख्यदा भार्गवः।
> ज्ञश्चैतौ शुभदौ स्वयं न निधनं मन्दः करोत्यारतो
> मुख्या मृत्युफलाः सितस्तु मृगभूयोगंकरोऽस्य स्मृतः ॥९५॥

धनु लग्न वालों के लिए सूर्य तथा बुध की युति अच्छा योग देती है। बुध मारक होता है। शुक्र तथा अन्य ग्रह मारक नहीं। मकर लग्न वालों के लिए मंगल गुरु और चन्द्र अशुभ हैं। शुक्र तथा बुध शुभ हैं। शनि स्वयं नहीं मारता। मंगल तथा अन्य ग्रह मार सकते हैं। शुक्र योग कारक है।

कुम्भ व मीन लग्न के कारक मारक ग्रह—

जीवश्चन्द्रकुजा शुभेतरफलाः शुक्रः शुभो भूसुतो
योगज्ञो न गुर्रुर्निहन्ति कुजसूर्मुख्यास्तु मारा घटे।
मन्दः शुक्रकविः शुभौ कुजविधू पातौ महीजो गुरुः
योगो ज्ञो न कुजो निहन्ति शनिमुख्या ध्नन्ति तल्लक्षणाः ॥९६॥

कुम्भ लग्न वालों के लिए गुरु, चन्द्र और मंगल अशुभ हैं। शुक्र शुभ है। मंगल तथा बुध की युति योग देती है। गुरु मारक नहीं होता। मंगल, सूर्य तथा अन्य ग्रह मारक हो सकते हैं। मीन लग्न के लिए शनि और शुक्र शुभ हैं। मंगल तथा चन्द्र अशुभ हैं। गुरु मंगल को युति योग देती है। बुध मारता है परन्तु मंगल नहीं। शनि तथा अन्य ग्रह यदि मारक हों तो मृत्यु देते हैं।

एवं मीनभुवः फलानि शुभपापात्मत्वनिर्दिष्टया
खेटानां सहचर्यतः स्थिरवशादूह्यं फलं योगजम्।
पुत्रान्यरपितृस्वलाभमुखतो दिव्यान् शुभान् खेचरा
दद्युः स्वासु दशासु भुक्तिषु नृणां स्वस्यापि चान्यस्य च ॥९७॥

ग्रहों के शुभाशभ फल, उनके कारकत्व स्थिति तथा उनसे युक्त भावों व ग्रहों के निरीक्षण के अनन्तर कहने चाहिए जब ग्रह शुभ फल करते हैं तो जातक को स्त्री, पिता आदि से सुख, धन, धान्य आदि फल ग्रह की भुक्ति अथवा दशा में होता है। इसी प्रकार ग्रह अपने सम्बन्धी ग्रहों के भी दशा काल में फल प्रदान करता है।

शास्त्रं सम्यगधीत्य चापि सुधियो बुध्वा वदन्त्युत्तमाः
को जानाति न चैव कोऽपि यदि चेज्जानापि चैकः स्वयम्।
योगेष्वेव खरादयश्च शुनकाद्याश्चापि जायन्त इ-
त्यावेदेति परं त्वदृष्टनिहता योगा दशास्वेव ते ॥९८॥

इस शास्त्र को सम्यक् प्रकार से पढ़कर भी और जानकर भी उत्तम बुद्धिमान् कहते हैं कि इस विज्ञान को कौन जानता है? कोई नहीं

जानता। यदि जानता है तो एक वह जानता है। गधे और घोड़े आदि भी इन ही योगों में उत्पन्न होते हैं और उनपर भी यही योग-कारक दशाएं आतो हैं। और फिर यह योग दूसरी शक्तियों से भी प्रभावित होते हैं।

फलादेश के कतिपय विशष सत्र—

पापानां यदि चेन्महोच्चगतयः किं मारकानां यथा
लग्नस्थो यदि मन्द इत्थसिघटीचापेषु लक्ष्मीप्रदः।
केन्द्रे नो यदि सप्तमे गुरुयुते ज्ञेनान्विते वेक्षिते
राजासौ यदि सप्तमेश्वरदशाभुक्तौ मृतिं निर्दिशेत् ॥९९।

यदि पापी ग्रह उच्च होकर मारक हों तो बहुत अनिष्ट होता है। लग्न में शनि, मोन, तुला, धनु राशि का हो तो धन-दायक होता है। शनि यदि केन्द्र में अथवा सप्तम भाव में (यहां शनि को विशेष बल मिलता है) यदि गुरु युन अथवा बुध युत तथा दृष्ट हो तो राजा होता है। परन्तु सप्तमेश की भुक्ति में मृत्यु कहनी चाहिए।

लग्नात्सप्तमगे गुरौ भृगुसुते तत्सप्तमे स्यान्मृतिः
आयुर्नाथवशाष्टमे यदि युते पापद्वय्यये त्रिंशकः।
भाग्येशाद्यदि चाष्टमे रविसुते चोजांशयुक्ते च्युतिः
भाग्यस्येति वदेच्च केरलमतं वाहादगते वाहनम् ॥१००॥

यदि लग्न से सप्तम स्थान में गुरु हो और गुरु से सप्तम स्थान में शुक्र, अथवा यदि गुरु अष्टमेश से अष्टम भाव में तथा पापी ग्रह से द्वादश में स्थित हो तो मनुष्य केवल ३० वर्ष तक जीवित रहता है। नवमेश से अष्टम स्थान में यदि शनि हो और वहां विषम नवांश में स्थित हो तो जातक का भाग्य स्थिर नहीं रहता। इसी प्रकार शनि यदि चतुर्थेश से अष्टम स्थान में, विषम नवांश में स्थित हो तो वह वाहन-हीन होता है।

चन्द्रे शुक्रसमन्विते तदधिपे केन्द्रत्रिकोणेऽथवा
वाहानामभिवृद्धिमादिशति सुस्थैर्यान्वितां श्रीमतः।
भ्रातुश्चाष्टमनायके त्रिषडगायादिस्थिते तच्च्युति
रन्ध्रे नीचयुतेऽष्टमं नसहितं जीवेन चेद्द्राङ्मृतिः ॥१०१॥

यदि चन्द्र तथा शुक्र इकट्ठे हों और उनसे अधिष्ठित राशि का स्वामी केन्द्र अथवा कोण में हो तो जातक को जन्म भर वाहनों का तथा अन्य सुख रहेगा। यदि तृतीय भाव से अष्टमेश, तृतीय, षष्ठ, सप्तम लग्न अथवा एकादश भाव में हो तो भाइयों का नाश कहे। यदि अष्टम भाव में कोई ग्रह नीच राशि का होकर पड़ा हो और यदि इस पर गुरु की युति आदि का प्रभाव न हो तो उसकी शीघ्र मृत्यु हो जाती है।

चन्द्रेणापि निरीक्षितेऽरिमूचितभाग्यादथाष्टेश्वरे
शुक्रे राहुयुते च केतुमुखतो भाग्यव्ययं निर्दिशेत्।
शुक्रे षष्ठमथाष्टमं च गतवत्युल्कादिना संयुते
आयुर्ह्रस्वमुतादिशन्ति चरराट् स्वस्मिन् स्थिते द्वन्द्वतः १०२॥

यदि नवम भाव से अष्टमेश पर चन्द्र की दृष्टि हो तो जातक की अल्पायु होगी। यदि शुक्र के साथ राहु हो तो केतु की दशा से जातक के भाग्य का नाश कहे। यदि गुरु छठे अथवा आठवें भाव में उल्का आदि से युक्त हो तो आयु को अल्प करता है। जब द्विस्वभाव राशि का स्वामी अपनी शक्ति में चर वश जाता है तब यह फल होता है।

द्वन्द्वेशे स्थिरयुग्मनागमस्थैर्यौभयादौ क्रमाद्
दीर्घं मध्यममल्पमित्युपदिशेदायुर्नराणां सुधीः।
एषं चास्थिरयुग्मकस्थिरगृहं ज्ञेयं तयोर्यातयोः
शुक्रक्षेत्रकुजेऽथवा कुजगृहे शुक्रे च जारिण्युत ॥१०३॥

यदि लग्नेश तथा अष्टमेश एक स्थिर में दूसरा द्विस्वभाव में हो तो दीर्घ आयु, एक चर में हो दूसरा स्थिर में हो तो मध्यम आयु और यदि एक चर में दूसरा द्विस्वभाव में हो तो अल्पायु होती है। इसी प्रकार यदि लग्नेश और अष्टमेश दोनों चर राशि में हों तो धंदी

द्विस्वभाव में हो तो मध्यम और स्थिर में हो तो अल्पायु होती है।

यहां जैमिनीय मत के आधार पर आयु के खण्ड का निर्णय करने की विधि बताई गई है। लग्नेश व अष्टमेश के अतिरिक्त, होरा लग्न शनि व चन्द्रमा से भो उक्तवत् विचार किया जाता है। इस विषय में सम्बन्धित प्रामाणिक पुस्तकों का अवलोकन करें।[1]

परजात योग—

भानोर्भू सुतमन्दयोर्द्वि तिथियुक्स्युर्द्वादशीसप्तमी
चित्तदन्यगतेषु भेषु च पुरीवारेषु चान्योदभवः[2] ॥१०४॥

यदि किसी का जन्म रवि, मंगल अथवा शनिवार को द्वितीया, द्वादशी, सप्तमी तिथि में और चित्रा को छोड़कर अन्य किसी नक्षत्र में हो तो उसका जन्म उसको माता के अन्य पुरुष के साथ सम्भोग से होता है।

अर्थात् उक्त योग में उत्पन्न बालक दूसरे पुरुष से उत्पन्न समझना चाहिए। इस विषय में जातक पारिजात के मतों को देखिए। इन योगों में मनुष्य जार या पर पुरुष से पैदा होता है—

(i) लग्नेश चतुर्थ में व चतुर्थेश लग्न में हो।

(ii) लग्नेश या चतुर्थेश राहु-केतु से युक्त हो।

(iii) लग्न या चन्द्रमा गुरु के वर्ग में न हो, गुरु से लग्न चन्द्र अदृष्ट हों, गुरु से दोनों अयुक्त हों।

(iv) रविवार, द्वितोया वा स्वाति नक्षत्र हो या बुधवार सप्तमी व रेवती नक्षत्र हो या रविवार द्वादशी व धनिष्ठा नक्षत्र हो।

(v) द्वितीया, सप्तमी या द्वादशी में पुनर्वसु, विशाखा या उत्तरा-भाद्रपद तथा रवि, मंगल, शनिवार हो।

(vi) चन्द्र बृहस्पति की राशि में हो या किसी राशि में ये दोनों साथ हों, या चन्द्र गुरु के नवांश या द्रेष्काण में हो।

(जा० पा० वियोनि जन्म श्लो० ५४-५६)

इन सब योगों के अतिरिक्त जातक ग्रन्थों में अन्य जारज योग भी कहे गए हैं। इन सब योगों के ४४ अपवाद भी होते हैं। उनके ज्ञानार्थ

१. आयु जानने के सभी प्रकार सोदाहरण जानिए—आयुर्निणय।

२. यह श्लोक अपूर्ण ही प्राप्त होता है।

पराशरादिकृत ग्रन्थों का अध्ययन करना चाहिए। अतः झटके से किसी निर्णय पर न पहुंचें। ज्योतिषियों में प्रचलित एक अन्य योग भी है—

'चौथ चतुर्दशी नवमी जानो
रवि शनि मंगल पहचानो।
जो तीनों में उत्तरा रहे,
निश्चय बिन्दु पराया कहे॥'

वह्नि निपात योग—

सिताच्चतुर्थाष्टमगैश्च पापैः पापान्तरे सप्तमनाथशुक्रे।
अदृष्टियुक्ते शुभखेचरैर्वा वधूवरौ वह्निनिपातयोगजौ ॥१०५॥

यदि शुक्र से चतुर्थ अथवा अष्टम स्थान में अथवा सप्तमेश से चतुर्थ अथवा अष्टम स्थान में पापी ग्रह स्थित हों अथवा यदि शुक्र पापी ग्रहों के मध्य में हो और उस पर कोई शुभ दृष्टि न हो और यह योग पति-पत्नी दोनों की कुण्डली में हो तो इस योग का नाम वह्निनिपात है। अर्थात् इस योग के कारण पति तथा पत्नी को अग्नि की लपेट में आ जाने की अथवा गिर जाने की सम्भावना रहती है।

यह श्लोक इन्द्रवज्रा छन्द में है जबकि पहले के सभी श्लोक शार्दूलविक्रीडित छन्द में हैं। इसी अटपटेपन के कारण अंग्रेजी टीकाकार ने इसके प्रक्षिप्त होने की शंका की है। अस्तु, वास्तव में यह श्लोक यहां छन्द भेद के कारण अटपटा-सा ही है। यदि यह श्लोक ग्रन्थ समाप्ति सूचक होता तो अवश्य ही उचित प्रतीत होता।

॥ इति श्रीकालिदासकृतौ उत्तरकालामृते द्वितीयकाण्डः समाप्तः ॥

॥ समाप्तोऽयं ग्रन्थः ॥

॥ शुभं भूयात् ॥

अष्टकवर्ग महानिबन्ध

(SECRETS OF ASTAKAVARGA)

संस्कृत हिन्दी भाष्य सहित

ग्रन्थकार : आचार्य मुकुन्द दैवज्ञ 'पर्वतीय'

हिन्दी टीका : डॉ० सुरेशचन्द्र मिश्र

ज्योतिष शास्त्र को वैदिक ज्ञान का नेत्र कहा गया है। इस कथन की प्रामाणिकता फलादेश की सत्यता एवं सटीकता पर आधारित है। एक तरफ जहां समस्त भारत के ज्योतिर्विदों ने अष्टकवर्ग की इस अद्‌भुत, वैज्ञानिक एवं सटीक फल–कथन प्रणाली को ललक के साथ अपनाया हुआ है, वहीं दूसरी तरफ पाश्चात्य ज्योतिषी भी इससे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके हैं।

इस चमत्कारिक विषय को पराशरादि महर्षियों, वराह आदि आचार्यों एवं वैद्यनाथ जैसे संग्राहक विद्वानों ने अपने ग्रन्थों में भी दुर्लभ कहा है। विशेषतया हिन्दी–भाषी पाठक तो इस विषय के ज्ञान से वंचित ही रहे हैं। प्रस्तुत गौरवशाली ग्रन्थ निश्चय ही इस अभाव की पूर्ति करते हुए आपकी तमाम जिज्ञासाओं की पूर्ति करेगा।

हिन्दी में प्रथम बार प्रकाशित इस ग्रन्थ रत्न में आप पाएँगे –

* विषय की सम्पूर्ण जानकारी। * गूढ़ विषय का विद्वत्तापूर्ण, शास्त्रीय किन्तु सरल विवेचन। * फलादेश की शक्ति को धारदार बनाने का अद्वितीय ढ़ंग। * समग्रता, सरलता एवं विषय की उच्चता के साथ व्यावहारिकता का समावेश। * चमत्कारिक फल कहकर यश एवं धन की प्राप्ति। * फलादेश का सूक्ष्मतम अनुसन्धानपूर्ण कार्य। * प्रथम श्रेणी के मौलिक ग्रन्थों की श्रृखंला में एक अमूल्य रत्न। * ज्योतिष के फलित विभाग में मेरूदण्ड के समान।

ग्रहों के फल का सटीक व समयबद्ध अनूठा विवेचन

मूल्य **300** रुपये

श्रीराम दैवज्ञ विरचित

मुहूर्त चिन्तामणिः

व्याख्या : डॉ० सुरेशचन्द्र मिश्र, ज्योतिषाचार्य

भविष्य के प्रति सचेत रहना व भावी अनिष्ट का बचाव करना, ये दो ही तत्व आजकल मानव समाज को ज्योतिष जगत से जोड़ने के मूल तत्व हैं। मौसम व जलवायु की अनुकूलता को विचार कर बोया गया बीज पूरा फल देता है। उसी तरह शुभ घड़ी, बेला में किया गया कार्य पूर्ण फलीभूत होता है। इसी मन्तव्य पर ज्योतिष की मुहूर्त शाखा टिकी है।

प्रामाणिक, गुणात्मकता से युक्त, विस्तृत हिन्दी व्याख्या व साथ ही संस्कृत टीका से भी युक्त 'मुहूर्तचिन्तामणि' का यह संस्करण एक निश्चित दिशा देता है।

इस विशिष्ट ग्रन्थ में जो आपको मिलेगा –

* सभी कार्यों के क्रमबद्ध मुहूर्तों की सुनिर्णित श्रृंखला।
* **वास्तु का व्यावहारिक ज्ञान देने वाला पृथक प्रकरण।**
* कुण्डली मिलान पर विस्तृत व सुबोध प्रचलित सामग्री।
* नामकरण, विवाह, यात्रा, गृहप्रवेश आदि का मुहूर्त स्वयं भी निकाला जा सके।
* वैदिक भारतीय संस्कृति के लुप्त प्रायः कर्मो की सुमुहूर्त प्रस्तुति।
* सभी आवश्यक संस्कारों का प्रामाणिक विवेचन तथा उनके शुभ मुहूर्त।
* **रामदैवज्ञ** द्वारा स्वंय लिखी गई **संस्कृत टीका 'प्रमिताक्षर'।**
* नये पाठकों तथा विद्वानों के लिए आवश्यक संग्रहणीय ग्रंथ।

सार-संक्षेप

ग्रन्थ श्रेष्ठता, उच्चता, सरलता तथा विस्तृत हिन्दी व्याख्या से पूर्ण।

प्रामाणिक एवं प्राचीन संग्रहणीय ग्रंथ

रंजन पब्लिकेशन्स

16 अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110002

email:ranjanpublications@rediffmail.com